(मानवधर्मशास्त्र मनुसंहिता) मनुस्मृति १८१४

अथ
मनुस्मृति

मनुस्मृतिः

(मानवधर्म्मशास्त्रमनुसंहिता)

अन्वयाङ्कभाषाटीकासहिता ।

प्रकाशक-

गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण

अध्यक्ष-लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय

मुरादाबाद.

द्वितीयावृत्ति, सन् १९१४

Printed by Lakshmi Narayan
at the Lakshmi Narayan Press,
MORADABAD.

॥ श्रीः ॥

अथ मनुस्मृतिस्थविषयानुक्रमणिका

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

विषय — पृष्ठ — श्लो०

अथ अष्टमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

इति मनुस्मृतिस्य विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तकें मिलने का ठिकाना-

गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण

अध्यक्ष-"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय

मुरादाबाद.

॥ श्रीहरिः ॥

मनुस्मृतिः

(मानवधर्मशास्त्र-मनुसंहिता)

(सम्पूर्ण १२ अध्याय)

मूल, अन्वयाङ्क और मेधातिथि-सर्वज्ञनारायण-कुल्लूक-राघवानन्द-नन्दन और रामचन्द्रकृत संस्कृत-व्याख्याओंके अनुसार

मुरादाबादनिवासी
श्रीयुत पण्डित भोलानाथात्मज—

ऋ० कु० पण्डित रामस्वरूप शर्मा कृत

भाषाटीकासहित

जिसको

गणेशीलाल, लक्ष्मीनारायणने

अपने "लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय

मुरादाबादमें छपाकर प्रकाशित की.

द्वितीयावृत्ति, सम्वत् १९९७

भूमिका

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

मानव-धर्मशास्त्रके रचयिता मनुजीको कोई अग्निरूप कहते हैं, कोई प्रजापतिरूप कहते हैं, कोई इन्द्ररूप कहते हैं, कोई प्राणरूप कहते हैं और कोई शाश्वत ब्रह्मरूप कहते हैं । 'तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः' । अर्थात् भगवान् मनुजी स्वयं कहते हैं कि-तिस विराट् पुरुषने बहुत काल पर्यन्त तपस्याकरके जिसको रचा था मैं वह ही इस सकल जगत्का रचने वाला प्रजापतिरूप मनु हूँ । 'अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥' मैंने प्रजाओंको रचनेकी इच्छासे बहुतकाल पर्यन्त तपस्याकरके सृजनमें समर्थ मरीचि आदि दश प्रजापतियोंको रचा था; उन्होंने ही देव-दानव-यक्ष-राक्षस-गन्धर्व-पिशाचादिको रचा था । ऋक्-यजुः-साम और अथर्व इन सब वेदोंमें भी मनुका माहात्म्य वर्णित है 'यत्किञ्चन मनुरवदत् तद्वै भेषजम्' मनुजीने जो कुछ कहा है वह औषधरूप है, ऐसा स्वयं वेद कहता है । बृहस्पतिजीने भी कहा है कि-'वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते ॥' मनुजीकी स्मृति ही प्रधान है क्योंकि इसमें वेदका अर्थ वर्णित है, मनुके साथ जिसका विरोध है वह स्मृति प्रशस्त नहीं है । और भी कहा है 'तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च । धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते' तर्क व्याकरणादि सकल शास्त्र तबतक ही शोभाको प्राप्त होते हैं जबतक धर्म-अर्थ और मोक्षका उपदेश करनेवाला मनु देखनेमें नहीं आता है । महाभारतमें भी लिखा है-'पुराणं मानवोधर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः' ॥ पुराण, मानव-धर्मशास्त्र, षडङ्ग, वेद यह चारों आज्ञासिद्ध हैं प्रतिकूल तर्कसे इनको अन्यथा नहीं करना चाहिये । मनुजी स्वयं ही कहते हैं-'इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् । पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोर्हति ॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्द्धनम् । इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥' जो ब्राह्मण नियमसे इस मनुसंहिताका अध्ययन करता है वह प्रतिदिन मानसिक, वाचिक और दैहिक कर्मोंके दोषोंसे लिप्त नहीं होता है, पंक्तिको पवित्र करता है और पिता आदि सात पूर्वपुरुष तथा पुत्रादि सात अग्रिम पुरुषोंको पवित्र करता है और वह ऐसा पवित्र होजाता है कि-अकेला ही इस सकल पृथ्वीका दानपात्र होता है इस मनुशास्त्र का अध्ययन परमकल्याणकारक, बुद्धिका बढ़ानेवाला, यशका फैलानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला और मोक्षको देनेवाला है । वेदमें, रामायणमें, महाभारतमें, स्मृति, पुराण और तन्त्रादि सकल शास्त्रोंमें इसीप्रकार मनुका माहात्म्य वर्णित है, मनु साक्षात् वेद है, मनुका अध्ययन सकल पापोंको दूर करनेवाला है, ऐसा सब ही महात्माओंका कथन है ।

मनुसंहिताकी समान माननीय भारतवर्षमें और दूसरा ग्रन्थ नहीं है, आज पर्यन्त अनेकों स्थानोंमें इस ग्रन्थका पूजन होता है, सात पीढ़ी पर्यन्त मनुका अध्ययन न होनेपर ब्राह्मण पतित होजाता है, इस ग्रन्थमें सम्पूर्ण धर्म कहे गये हैं, विहित और निषिद्ध सम्पूर्ण कर्मोंका वर्णन है, चारों वर्णोंका परम्परागत आचार व्यवहारका वर्णन है, इसमें जगत्की उत्पत्तिका क्रम, जातकर्मादि सकल संस्कारोंका अनुष्ठान, ब्रह्मचारीका कर्तव्य,गुरु आदिको अभिवादन की रीति, गुरुकुलसे लौटे हुए ब्रह्मचारीका गृहस्थाश्रमको स्वीकार करना, चारों वर्णोंका विवाह, वैश्वदेवादि पञ्चमहायज्ञ और नित्यकर्त्तव्य श्राद्धादिका वर्णन है। कौन२ वर्ण किस २ उपायसे जीविका करै, गृहस्थीका क्या२कर्तव्य है,कौन वस्तु भक्ष्य है,कौन अभक्ष्य है, शौचाशौच और शुद्धि अशुद्धि आदि सकल विषयोंका इसमें वर्णन है। स्त्रियोंके धर्म, वानप्रस्थधर्म, संन्यासधर्म, राजधर्म, ऋणदान, दायभाग, द्यूतविधान, साक्षी और दण्डविधान, तथा मोक्षधर्मादि जो कुछ संसारकी स्थिति का कारण है सो सब विधान इसमें वर्णित है, वास्तव में मनुसंहिता के बिना जाने सनातन वैदिकधर्मका तत्त्व जाननेमें पूर्ण त्रुटि रहती है, सनातन वैदिकधर्म ही वास्तविकधर्म है, यह विषय मनुसंहिताको जाननेसे ठीक २ बुद्धिस्थ होजाता है, परन्तु दुःखका विषय है कि-हमारे द्विजसमाज (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) में इस ग्रन्थका पठनपाठन अत्यन्तही अल्प रहगया। पूर्वकाल में इस भारतवर्षके द्विजसमाजकी जो सर्वोपरि गणना थी वह इस परमोपकारी ग्रन्थके पठन पाठन और अनुकूल वर्त्ताव करने ही से थी, जैसे२ इस ग्रन्थमें वर्णन करीहुई प्राचीन प्रथा न्यून होतीगई वैसेही वैसे भारतवर्षका द्विजसमाज अधोगतिको प्राप्त हुआ है, और जबतक भारतवासी इसीप्रकार निद्रित रहेंगे बराबर अधोगति होती चलीजायगी। प्रियवर! एक बार तौ नेत्र खोलकर देखो, एक बार तौ भीष्म-द्रोण-युधिष्ठिरादि अपने पूर्वजोंकी विद्या-बुद्धि-बल-उत्साह और धार्मिकताका स्मरणकरके मनूक्त आचार व्यवहारको स्वीकार करो, आशा है कि-धार्मिक पुरुष अवश्यही ध्यान देकर मनुसंहिताके पठन पाठनकी प्रथाको पुनरुज्जीवित करेंगे, यद्यपि आजतक बहुतसे मनुसंहिताके पुस्तक छपे परन्तु कोई निरे मूलमात्र थे और कोई संस्कृत-टीकासहित थे जिनसे केवल संस्कृत जाननेवाले धनवान् पुरुषोंको लाभ पहुँचा, इसके सिवाय जो पुस्तक भाषाटीकासहित भी छपे उनमें भाषा अधिक सरल न हुई जिससे सर्वसाधारण समझसक्के, तथा कीमत भी आजतक छपीहुई मनुसंहिताकी पुस्तकोंकी छः, चार, तीन और दो रुपये से कम नहीं हुई जिससे निःस्व पुरुष खरीदनेको समर्थ नहीं हुए, इन सब अभावोंको दूर करनेके लिये यह पुस्तक सरल भाषाटीका अन्वयाङ्क और शङ्काओंके समाधानरूप टिप्पणीसहित छापागया है और कीमत भी सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये बहुतही कम रक्खीगई है, आशा है कि-धर्मतत्त्वजिज्ञासु पुरुष इस अमूल्यरत्नका अवश्य सङ्ग्रह करेंगे। और समर्थ धनी धर्मात्मा इस पुस्तककी अधिक प्रतियें खरीद निर्धन द्विजोंमें वितरणकरके इसका प्रचार कर इस लोक और परलोकमें यश तथा पुण्यकेभागी होंगे ॥

निवेदक—

ऋ०कु०प० रामस्वरूप शर्मा, मुरादाबाद.

श्रीगणेशाय नमः ॥

मनुस्मृतिः

(मानवधर्मशास्त्र-मनुसंहिता)

प्रथमोऽध्यायः ।

"वेदान्तवेद्यतत्त्वाय जगत्त्रितयहेतवे । प्रध्वस्ताशेषदोषाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥"

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः । प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

भगवान् मनु, एकाग्रचित्त होकर आसनपर बैठेहुए थे, ऐसे समयमें धर्मके तत्त्वको जाननेकी इच्छा करनेवाले महर्षि उनके समीप आये और शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार पूजन प्रणामादि करके यह वचन बोले ॥ १ ॥

भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ अन्तरप्रभवाणाञ्च धर्मान् नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥ अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित् प्रभो ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! ब्राह्मणादि सकल वर्णोंके और अम्बष्ठ-करण आदि अनुलोम-प्रतिलोमजात[1] सङ्करजातियोंके सम्पूर्ण धर्मोंको क्रम से यथावत् हमारे अर्थ वर्णन करिये, क्योंकि- हे प्रभो ! जो वेद बहुतसी शाखाओंमें विभक्त होनेके कारण अनन्तरूप प्रतीत होता है और मीमांसा न्याय आदि शास्त्रोंकी सहायताके विना जिसका तत्त्व यथावत् जाननेमें नहीं आता तिस अपौरुषेय और अप्रमेय सम्पूर्ण वेद शास्त्रके यज्ञादि कर्म, ब्रह्मतत्त्व और अर्थ को जाननेमें आप अद्वितीय हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥ प्रत्युवाचार्च्य तान् सर्वान् महर्षीन् श्रूयतामिति ॥ ४ ॥

वेदशास्त्रादिके तत्त्वको वर्णन करनेकी अनन्त है शक्ति जिनको ऐसे वह भगवान् मनु तिन महात्माओंके इसप्रकार प्रश्न करनेपर, उनका सत्कारकरके, 'श्रवण करो' ऐसा कहकर तिन सम्पूर्ण महर्षियोंके प्रश्नका उत्तर देनेलगे ४

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

यह दृश्यमान संसार एकसमय इसप्रकार प्रकृतिमें लीन था—न किसीप्रकार प्रत्यक्ष होता था, न किसी लक्षणसे अनुमान कियाजाता था, उस समय यह तर्क और ज्ञानका अविषय होकर सब प्रकारसे मानो गाढनिद्रामें शयन कर रहा था ॥ ५ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥ महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः ॥ ६ ॥

तिस महारात्रिके अनन्तर ध्यान—योगाभ्यास आदि रहित प्राणियोंको दृष्टिगोचर न होनेवाले, स्वतन्त्रतासे सृष्टि रचनेकी है सामर्थ्य

[1] उच्चवर्णके पुरुषसे नीचवर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न हुई सन्तान को अनुलोमजात और नीचवर्णके पुरुषसे उच्चवर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न हुई सन्तानको प्रतिलोमजात कहते हैं ।

जिनमें ऐसे प्रकृतिके प्रेरक भगवान् अपनी इच्छासे शरीर धारण करके, यह आकाशादि पञ्चमहाभूत और महत्तत्वादि जो प्रलयकाल में सूक्ष्मरूपसे अव्यक्त अवस्थामें थे तिन सब को स्थूलरूपसे प्रकाश करते हुए स्वयं भी प्रकाशित हुए ॥ ६ ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः॥ सर्व्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥

जो सम्पूर्ण वेद-पुराण-इतिहास आदिमें प्रसिद्ध हैं, जिनका केवल मनसे ही ग्रहण होता है ऐसे परमसूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सब के अन्तर्यामी और अचिन्त्य वह (भगवान्) स्वयं ही पहिले शरीराकारसे प्रकट हुए ॥७॥

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

अपने शरीरसे नाना प्रकारकी प्रजाओंको रचनेकी इच्छा करनेवाले तिस परमात्माने प्रथम, 'जल उत्पन्न हों' इतने कथनमात्रसे जलोंको रचा और उसमें अपनी शक्तिरूप बीजको स्थापन करा ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ तस्मिन् जज्ञे स्वयंब्रह्मा सर्वलोकपितामहः

वह स्थापन कराहुआ बीज, सुवर्णके वर्ण कासा, सूर्यके समान कान्तियुक्त एक अण्ड (गोलाकार) रूप होगया, तिस अण्डमें तिन परमात्माने स्वयं ही सर्वलोकोंके पितामह ब्रह्मारूपसे जन्म ग्रहण करा ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥ ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

नर नामक परमेश्वरके शरीरसे जलोंकी उत्पत्ति हुई इसकारण उन जलोंको नारा कहते हैं और यह सम्पूर्ण जलही प्रलयकालमें परमात्माका अयन (स्थान) थे इसकारण परमात्मा को नारायण (नार-अयन) कहते हैं ॥ १० ॥

यत्तत् कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

जो परमात्मा रचित वस्तुमात्रका कारण है, जो इन्द्रियोंका अगोचर है, जिसका क्षय उदय नहीं होता है, जो सत् पदसे कहाजाता है और जो प्रत्यक्षका विषय न होनेके कारण असत् शब्दसे भी कहाजाता है तिस परम पुरुष परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ वह अण्डजात पुरुष संसारमें ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा॥

भगवान् ब्रह्माजी, तिस अण्डमें, ब्रह्ममानसे एकवर्षपर्यन्त निवास करके, अण्ड दो दो टुकडे होय, ऐसा अपने मनमें ध्यान करनेमात्रसे ही स्वयं तिस अण्डको दो भाग करते हुए ॥१२॥

ताभ्यां स शकलाभ्याञ्च दिवं भूमिञ्च निर्म्ममे ॥ मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानञ्च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

उन्होंने तिन दोनों खण्डोंमेंसे, ऊपरके खण्ड से स्वर्ग और नीचेके खण्डसे पृथ्वीको रचा। तथा मध्यमें आकाश, आठों दिशा और चिरस्थायी जलोंके स्थान (समुद्र) को रचा॥१३॥

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् । मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम्॥१४

ब्रह्माजीने परमात्मासे परमात्मस्वरूप होकर मनको रचा, जो मन एक २ समयपर एक २ प्रकारके ज्ञानका आधार होनेसे सत्स्वरूप और प्रत्यक्ष न होनेके कारण असत् स्वरूप कहाता है, मनको रचनेसे प्रथम अभिमानको उत्पन्न करनेवाले, अपने कार्यको साधनमें

समर्थ, अहम् अर्थात् 'मैं' के बोधक अहङ्कार तत्त्वको भी रचा ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च। विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च॥

ब्रह्माजीने; अहङ्कारतत्त्वके रचनेसे प्रथम परमेश्वरसे, महत्तत्त्वको रचा; जो महत्तत्त्व आत्मासे उत्पन्न होनेके कारण आत्मशब्दसे कहाजाता है, तथा सत्व रजःतमोगुणयुक्त सकल पदार्थोंको रचा, एवं शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इन विषयोंको ग्रहण करनेवाले, श्रोत्र-त्वचा-चक्षु-जिह्वा-नासिका इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंको और वाक्-पाद-हस्त-गुदा-उपस्थ (पुरुष वा स्त्रीका मूत्रस्थान) इन पाँच कर्मेन्द्रियोंको रचा॥

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥ संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

तिन ब्रह्माजीने, पूर्वोक्त रचित पदार्थोंमेंसे अनन्त कार्योंके रचनेमें समर्थ अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा इन छःके अत्यन्त सूक्ष्म अवयवों को, इनके विकार, इन्द्रिय और पञ्चभूतोंके साथ युक्तकरके देव-मनुष्य-पशु-पक्षी आदि सकल जीवोंको रचा ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥ तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

मूर्तिका गठन करनेवाले, तन्मात्र नामक पांच सूक्ष्म अवयव और अहङ्कार यह छः प्रकृति के सहित वर्त्तमान ब्रह्मके कार्यरूप शरीरका आश्रय करते हैं, क्योंकि तन्मात्रासे पञ्चमहाभूत और अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है इसकारण छःका आश्रय होनेसे इन्द्रियादि विशिष्ट ब्रह्मकी मूर्तिको शरीर कहते हैं १७ ॥

तदाऽविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥ मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

शब्दादि पञ्चतन्मात्र स्वरूप ब्रह्मसे आकाशादि पञ्चमहाभूत अपने २ कार्यके सहित उत्पन्न होते हैं, आकाशका कार्य स्थान देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका कार्य पिण्डरूप करदेना और पृथ्वीका कार्य धारण करना है, तथा अहङ्कारस्वरूप ब्रह्मसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका कारण अविनाशी मन उत्पन्न हुआ, जो मन शुभ-अशुभ सङ्कल्प और सुख-दुःखादि कार्यका सहकारी उत्पादक होताहै॥

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥ सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥ १९ ॥

महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चमहाभूत यह सात परमपुरुष परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं इस कारण इनको पुरुष कहते हैं, इनके, शरीर का गठन करनेवाले जो सूक्ष्म अवयव हैं उनसे इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले जगत्की उत्पत्ति होती है, जो जगत् जन्य (उत्पन्न होनेवाला) होने से नाशवान् है ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणंस्त्वेषामवाप्नोति परः परः ॥ यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

आकाशका गुण शब्द, वायुका स्पर्श, अग्निका रूप, जलका रस और पृथ्वीका गन्ध है, प्रथम आकाशको छोड़कर शेष वायु आदि सब अपने २ गुणके सिवाय पहले २ के गुण को ग्रहण करते हैं, जो जिस संख्या पर गिनाजाता है उसमें उतने ही गुण होते हैं, अर्थात् आकाशका गुण शब्द, वायुका शब्द और स्पर्श, अग्निका शब्द-स्पर्श और रूप, जलका शब्द-स्पर्श-रूप और रस, तथा पृथ्वीका शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध गुण है ॥ २० ॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च

पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥

उन हिरण्यगर्भरूपसे स्थित परमात्माने, सब के नाम अर्थात् मनुष्यजातिका मनुष्य, गोजातिका गौ इत्यादि, और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके वेदमें कहेहुए अध्ययन (वेद-पढना) आदि कर्म, तथा और जातियोंके लौकिककर्म अर्थात् कुम्हारका घड़े आदिबनाना, कोरीका वस्त्रबुनना इत्यादि, पहिले वेदशास्त्र से जानकर, पूर्व कल्पमें जिसका जो रूप था इस कल्पमें भी उसका वैसा ही रूप रचा २१

कर्मात्मनाञ्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनाम्प्रभुः॥ साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञञ्चैव सनातनम् ॥ २२ ॥

तिस परमात्माने प्राणधारी इन्द्रादि देवता, अप्राणी कर्महेतुक पाषाणमय देवता और साध्य नामक सूक्ष्म देवता तथा ज्योतिष्टोम आदि नित्ययज्ञ इन सबको रचा ॥ २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्॥ दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

तिस परमात्माने अग्नि, वायु और रवि को रचकर तथा उनको वेदका उपदेश करके यज्ञकार्यकी सिद्धिके निमित्त उनमेंसे ऋग्वेद, सामवेद और ऋग्वेदके अभिमानी सनातन तीन देवताओंको प्रकट करा ॥ २३ ॥

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥ सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥

ब्रह्माजीने सूर्यकी क्रियाओंका समूहरूप सामान्यकाल,और मास,ऋतु अयनवर्ष आदि विशेषकाल,कृत्तिका आदि नक्षत्र,आदित्य आदि नवग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत, समानस्थान और ऊँचे नीचे सकल विषम स्थानोंको भी रचा ॥

तपो वाचं रतिञ्चैव कामञ्च क्रोधमेव च ॥ सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

उन्होंने आगे कहीहुई नानाप्रकारकी प्रजाको रचनेकी अभिलाषासे पहिले प्राजापत्य आदि तप, वाक्य, चित्तका सन्तोष, अभिलाषा और नेत्रके लालपन आदिके कारण चित्तके विकार आदिको रचा ॥ २५ ॥

कर्म्मणाञ्च विवेकार्थं धर्म्माधर्म्मौ व्यवेचयत् ॥ द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥

उन्होंने करने योग्य और न करनेयोग्य कर्म के विभागके निमित्त धर्म और अधर्मको अलग करके विभागकरा तथा धर्मके फल सुख आदि और अधर्मके फल दुःख आदि इन सुख दुःखोंसे सकल प्रजाओंको युक्त करा ॥२६॥

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥ ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

पञ्चमहाभूतोंके जो सूक्ष्म अंश और स्थूल भाग कहे हैं,उनके साथ क्रमसे अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे स्थूलतर इसप्रकार यह सब जगत् उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥

यन्तु कर्म्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमम्प्रभुः॥स तदेव स्वयम्भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥

---

१ कर्माणि आत्मा येषां तेषामप्राणिनाञ्च ग्रावादीनां देवानाम् । काश्चिद्देवता यागादिकर्मण्येव स्वरूपत इतिहासे श्रूयन्ते यथेन्द्रो रुद्रो विष्णुरिति । अन्यासां तु याग एव देवतात्वं न स्वरूपतः । अक्षा ग्रावाणो रथांगानि । भारते यथा इन्द्रादीनां वृत्रादिभिरसुरैर्युद्धं श्रूयते नहि तथाक्षादीनां वर्ण्यते । अस्ति च सूक्तहविःसम्बन्धेन तेषामपि देवतात्वम्, अक्षाणां ग्रावेपामा इति, ग्राव्णां प्रेतेवदन्त्विति । अतोद्विविधा हि देवता प्राणवत्यस्तद्रहिताश्च । निरुक्तदर्शनेऽपि द्विविधा देवता अश्वमानो मित्र इति । शकुनिः कनिक्रददिति । गाव अगावोऽग्मन्निति । एताः प्राणवत्यः । इति मेधातिथ्यादीनामालोचना ।

२ अग्निं वायुं रविञ्च सृष्ट्वा तेभ्यः, ब्रह्म, वेदाभिमानिनी देवताम् । दुदोह प्रादुष्कृतवानिति नन्दनः ।

उन प्रजापति ब्रह्माजीने, सृष्टिके समय जिस जातिको जैसे कर्ममें अर्थात् सिंहादिको हरिणादिके मारना आदि कर्ममें लगाया वह वारम्वार रचित होकर भी अपने २ कर्मके अनुसार तिस२ कर्मका ही आचरण करनेलगा

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ॥ यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥

सिंह आदिका हिंसा, हरिण आदिका अहिंसा, ब्राह्मण आदिका दया, क्षत्रिय आदिका युद्ध आदि, ब्रह्मचारी आदिका गुरुसेवा आदि धर्म और मांस-मैथुन-सेवन आदि अधर्म सत्य और असत्य आदि, प्रजापतिने सृष्टि-कालमें जिसके निमित्त जो रचा, आगेको भी सब अदृष्टबलसे उसको ही प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्य्यये ॥ स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्म्माणि देहिनः

जैसे वसन्त आदि ऋतुओंमें एक ऋतुकी समाप्ति होनेपर दूसरी ऋतुके अधिकारके समय आमके मौल आदि चिह्न अपने आप होते हैं; तैसेही शरीरधारी पुरुष भी अपने २ कर्मोंको भोगते हैं ॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥ ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरने भूलोक आदि प्रजाकी वृद्धि करनेकी इच्छासे अपने मुख, बाहु, जङ्घा और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंको रचा ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर अपने शरीरके दो खण्ड करके आधे भागसे पुरुष और आधे भागसे स्त्री हुए, इन दोनोंके संयोगसे विराट्नामक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो-विराट् ॥ तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

हे श्रेष्ठद्विजो ! उन विराट् पुरुषने बहुतकाल तपस्याकरके जिसको उत्पन्न करा, मैं वही मनु हूँ, मुझे इस सबका सृष्टिकर्त्ता जानो ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥

फिर प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छा करतेहुए मैंने, बहुत काल तक अतिकठोर तपस्या करके, पहिले, प्रजाओंको रचनेमें समर्थ दश प्रजापतियोंको रचा ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम्। प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ॥३५

मैंने, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतसा, वसिष्ठ, भृगु, और नारद इन दश प्रजापतियोंको रचा ॥ ३५ ॥

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥ देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

---

१ अत्र 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इतिश्रुतिः प्रमाणभूता । 'यथाक्रमं मुखाद्ब्राह्मणं स्वमुखावयवेभ्यो दैव्या शक्त्या निर्मितवान् ।' इति मेधातिथिः ।

२ अत्र श्रुतिश्च—सवैनैव रमेत् तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छन् सहैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधा यातयन् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् । इति राघवनन्दः । एतदुच्यते प्रजापतिः स्वां दुहितरमगच्छत् । इति मेधातिथिः ।

३ 'ततोविराडजायत' इतिश्रुतिश्च ।

इन मरीचि आदि दश प्रजापतियोंने और महातेजस्वी सात मनुओंको रचा और जिन्हें पहिले ब्रह्माजीने नहीं रचाथा उन देवताओंको तथा देवताओंके निवासस्थान (स्वर्गादि वा विमान) और वामदेव आदि कितनेही महर्षियों को रचा ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥ नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणांश्च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

उन्होंने यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, गरुड आदि पक्षी और सोमपा आज्यपा आदि पितर इन सबोंके समूहोंको पृथक् २ रचा ॥ ३७ ॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥

उन्होंने ;विजली, वज्र, मेघ, टेढ़ा इन्द्रधनुष और सूधा इन्द्रधनुष, उल्का (आकाशमें से गिरने वाला रेखाके आकारका प्रकाश), निर्घात (भूमि और अन्तरिक्षमें होनेवाला, भयानक शब्द), केतु (शिखावाले तारे) और दूसरे भी ध्रुव, अगस्त्य आदि नाना प्रकारके छोटे बड़े तारोंको रचा ॥ ३८ ॥

किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान् ॥ पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥

किन्नर, वानर, मत्स्य, नानाप्रकारके पक्षी, गौ आदि पशु, नानाप्रकारके मृग, मनुष्य और (नीचे ऊपर दोनोंओर) दांतवाले घोड़े आदि तथा व्याल (सिंह आदि) और सकल हिंसक प्राणियोंको रचा ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥ सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

कृमि (छोटे कीड़े), कीट (बड़े कीड़े) पतङ्गे, जूँ, मक्खी, खटमल, डांस, मच्छर और वृक्ष-लता आदि स्थावरोंको भिन्न २ प्रकारका उत्पन्न करा ॥ ४० ॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ॥ यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

उन महात्माओंने मेरी आज्ञासे तपोबलके द्वारा, जिसका जैसा कर्म था उसके अनुसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि स्थावर, जङ्गम सबोंकी रचना करी ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥ तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥ ४२ ॥

हे महर्षियो ! पूर्वाचार्योंने जिस २ जातिका जैसा २ कर्म और जिस प्रकारसे जन्म कहा है, मैं भी उसीप्रकार कर्म और जन्म क्रमसे तुम्हें सुनाऊँगा ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ॥ रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

पशु, मृग, दोनोंओर दाँतवाले हिंसक जीव, पिशाच और मनुष्य यह सब ही जरायु नामक गर्भपर लिपटे हुए चर्म (झिल्ली) में से प्रकट होते हैं और उसमेंसे छूटकर भूमि पर स्थित होते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ॥ यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

पक्षी, सर्प, नाका, मत्स्य, कछुआ, इसी

प्रकारके और जो स्थलमें उत्पन्न होनेवाले घिरघट आदि वा जलमें उत्पन्न होनेवाले शङ्ख आदि हैं यह सब अण्डेमें उत्पन्न होकर उसमें से प्रकट होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्॥ ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्॥

डांस, मच्छर, जौंक, मक्खी, खटमल तथा इसीप्रकारके और भी जो जन्तु हैं वह गरमी के कारण, पसीनेसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिज्जास्स्थावरास्सर्व्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥ ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

जो बीज और भूमिको फोडकर निकलते हैं उनको उद्भिज्ज (वृक्ष) कहते हैं; वृक्ष दो प्रकारके हैं, कितने ही बीजसे उत्पन्न होते हैं, कितने ही रोपण करीहुई शाखाओंसे उत्पन्न होते हैं; जो नानाप्रकारके फल पुष्पोंसे शोभायमान होकर फलोंके पकनेपर नष्ट होजाते हैं उन (गेहूँ, जौ आदि) को ओषधि कहते हैं॥४६॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥ पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ ४७ ॥

जो बिना फूल आये ही फलयुक्त होजाते हैं उनको वनस्पति कहते हैं और जो फूलोंसे युक्त होकर फलवान् होते हैं उनको वृक्ष कहते हैं, ऐसे वृक्ष दोप्रकारके कहे हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मन्तु विविधन्तथैव तृणजातयः॥ बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥

जिनकी जड़ोंमेंसे छोटी २ बहुतसी लता उत्पन्न होती हैं उन (चमेली, बेला आदि) को गुच्छ कहते हैं; जिसकी एक जड़मेंसे अनेकों अंकुर उत्पन्न होते हैं उस (ईख, रामसर आदि) को गुल्म कहते हैं; कुश, दूब आदि तृणकी जाति हैं; जिनमेंसे तार निकलें ऐसी लता आदि (तुम्बी-रामतुरई आदि) को प्रतान कहते हैं और जो भूमिपरसे वृक्षों परको चढ़ती हैं उन (गिलोय आदि) को वल्ली कहते हैं; इनमेंसे कोई बीज बोने से और कोई शाखा लगादेनेसे उत्पन्न होते हैं॥४८॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥ अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः

यह अधर्मरूप कर्म जिसका हेतु है, और जिसके निमित्तसे अनेकों दुःखोंका अनुभव होता है ऐसे तमोगुणसे घिरेहुए हैं और केवल मानसिक ज्ञानवान् होते हैं परन्तु बुद्धिके अभावसे स्वयं बाहरी चेष्टा नहीं करसक्ते हैं, किसी२समय इनको सुख दुःखका विलक्षण अनुभव होता है ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि

इस जन्म मरणसे भरेहुए, अनित्य और अतिभयानक संसारमें ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सकल जीव जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं, सो आदिसे अन्त पर्यन्त वर्णन करा ॥५०॥

एवं सर्व्वं स सृष्ट्वेदं मांश्चाचिन्त्यपराक्रमः ॥ आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

वह अचिन्त्यपराक्रमी प्रजापति इस प्रकार स्थावर जङ्गम सकल जगत्को और मुझे रचकर प्रलयकालके द्वारा सृष्टिकालका नाश करतेहुए परमात्मामें ही अन्तर्धान हुए ॥ ५१ ॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते

जगत् ॥ यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ ५२ ॥

जिससमय वह परमपुरुष ब्रह्माजी जाग्रत् होते हैं अर्थात् सृष्टिकी स्थितिकी इच्छा करते हैं, उस समय यह जगत् निःश्वास प्रश्वास आदि चेष्टा करता है और जिससमय वह सृष्टिकी समाप्ति की इच्छाकरके निद्रा लेते हैं उस समय यह जगत् प्रलयको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्म्मात्मानः शरीरिणः ॥ स्वकर्मभ्यो निवर्त्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

प्रजापति जिससमय अपने देह और मनके व्यापारको रोककर, तथा सृष्टि स्थितिके विषय की इच्छाको त्याग देते हैं; उस समय अपने २ कर्मके अनुसार देहधारी जीव भी, देहधारण आदि कर्मसे निवृत्त होते हैं और मन भी वृत्ति-रहित होजाता है ॥ ५३ ॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥ तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥

जिससमय उन परमपुरुष परमात्मामें सकल प्राणी एकसाथ प्रलयको प्राप्त होजाते हैं, उस समय वह निश्चितरूपसे सुखपूर्वक शयन करते हैं ॥ ५४ ॥

तमोऽयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥ न च स्वं कुरुते कर्म्म तदोत्क्रामति मूर्त्तितः ॥ ५५ ॥

जीव, अज्ञानदशामें बहुतकालपर्यन्त इन्द्रियों के साथ रहकर जिससमय निःश्वास प्रश्वास आदि कोई कर्म नहीं करता है उससमय पहिले शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरको पाताहै ५५॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्त्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

सूक्ष्म पञ्चमहाभूत, ज्ञानेन्द्रियें और कर्मेन्द्रियें, मन, बुद्धि, वासना, कर्म, वायु और अज्ञान इनको पूर्यष्टक अर्थात् लिङ्ग शरीर कहते हैं; जिससमय जीव इस लिङ्गशरीरसे युक्त होकर स्थावर बीजमें प्रवेश करता है उससमय वृक्षादिरूपको धारण करता है, और जिस समय जङ्गमबीजमें प्रवेश करता है उस समय मनुष्य आदि शरीरको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्व्वं चराचरम् ॥ संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार यह अव्ययपुरुष ब्रह्मा अपनी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाके द्वारा इस स्थावर जङ्गमरूप जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं ५७

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८ ॥

हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीने, सृष्टिसे पहिले इस शास्त्रको रचकर विधिपूर्वक स्वयं मुझे ही पढ़ाया था, और मैंने मरीचि आदि मुनियोंको पढ़ाया है ॥ ५८ ॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥ एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्व्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

भृगुजी इस शास्त्रको आदिसे अन्ततक तुम्हें सुनावेंगे क्योंकि-उन्होंने मुझसे यह सम्पूर्ण शास्त्र भली प्रकार पढ़ा है ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ॥ तानब्रवीदृषीन्सर्व्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

तदनन्तर महर्षि भृगुजी, भगवान् मनुजी के इसप्रकार कहनेपर चित्तमें प्रसन्न होकर

'अच्छा सुनो' ऐसा कहकर उन सबोंसे कहनेलगे ॥ ६० ॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड् वंश्यामनवोऽपरे ॥ सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥ ६१ ॥

ब्रह्माजीके पौत्र (पोते) इन स्वायम्भुव मनु के वंशमें और महातेजस्वी महात्मा छः मनु हुए, उन्होंने अपने २ अधिकारके समयमें सकल प्रजाओंको उत्पन्न करा है ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ॥ चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

उनके नाम--१ स्वारोचिष, २ औत्तमि, ३ तामस, ४ रैवत, ५ चाक्षुप और परमतेजस्वी विवस्वत्के पुत्र (वैवस्वत) ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः स्वे स्वेन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥

परमतेजस्वी स्वायम्भुव आदि सात मनुओं ने, अपने२अधिकारके समय इस स्थावर जङ्गम सकल संसारको रचकर प्रतिपालन करा ६३

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ॥ त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥ ६४ ॥

अब मन्वन्तर आदिके कालका नियम कहते हैं--नेत्रके पलक लगानेको निमेष कहते हैं, अठारह निमेषकी एक काष्ठा, तीसकाष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तका एक दिनरात होता है ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥ रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामहः ॥

सूर्यके द्वारा मनुष्योंके और देवताओंके दिनरातका विभाग होता है, जीवोंकी निद्राके लिये रात्रि और कर्म करने को दिन है ।६५।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥ कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

मनुष्योंके एक मासमें पितृलोकका एक दिन रात होता है, तिसमें कर्म करनेके निमित्त कृष्णपक्षको पितरोंका दिन और निद्रा लेनेके निमित्त शुक्लपक्षको रात्रि कहते हैं ॥ ६६ ॥

दैवे राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥ अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

मनुष्योंके एक वर्षमें देवताओंका दिनरात होता है, और उनका विभाग उत्तरायण और दक्षिणायन है, उत्तरायण देवताओंका दिन और दक्षिणायन रात्रि है ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥ एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥

हे महर्षियो ! ब्रह्माजीके दिनरात्रि और सत्ययुग त्रेता आदि प्रत्येक युगका जो परिमाण है सो मैं क्रमकरके संक्षेपसे कहता हूँ उसको सुनो॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥

देवताओंके चार सहस्र वर्षका सत्ययुग होता है, उस युगके प्रथमके चारसौ वर्ष सन्ध्या और अन्तके चारसौ वर्ष सन्ध्यांश होता है ॥६९॥

इतरेषुससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥ एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥

त्रेता, द्वापर आदि युगोंका परिमाण क्रमसे सत्ययुगके परिमाणमें एक२सहस्र वर्ष कम करते जानेपर और त्रेता, द्वापर आदिकीसन्ध्या सन्ध्यांशका परिमाण सत्ययुगके सन्ध्या और सन्ध्यांशके परिमाणमें क्रमशः एक एकसौ वर्ष कम

करते जानेपर होता है, अर्थात् देवताओंके तीन सहस्र वर्षका त्रेता, तीनसौ वर्षकी उसकी सन्ध्या और तीनसौ वर्षका सन्ध्यांश होता है। देवताओंके दो सहस्र वर्षका द्वापरयुग, दोसौ वर्षकी उसकी सन्ध्या और दोसौ वर्षका सन्ध्यांश होता है। देवताओंके एक सहस्र वर्षका कलियुग, एकसौ वर्षकी उसकी सन्ध्या और एकसौ वर्षका सन्ध्यांश होता है ॥ ७० ॥

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ॥ एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ७१

इस श्लोकसे पहिले जो यह मनुष्योंके चारों युगोंकी संख्या कही है इसकी बारह सहस्र संख्याके परिमाणमें देवताओंका एक युग कहाता है ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगानान्तु सहस्रपरिसंख्यया॥ ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च७२

देवताओंके परिमाणसे सहस्रयुगोंकी संख्या करके ब्रह्माजीका एक दिन जानना और इतनेही परिमाणकी उनकी एक रात्रि जाननी ॥७२॥

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः॥ रात्रिं च तावतीमेव ते ऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३ ॥

देवताओंके एकसहस्र युग समाप्त होनेपर ब्रह्माजीका एक दिन होता है और इतनीही उन की एक रात्रि होती है, इस पवित्र दिनरात्रिके परिमाणको जो जानते हैं वही दिनरात्रिके जाननेवाले हैं ॥ ७३ ॥

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। प्रतिबुद्धश्च सृजति मनःसदसदात्मकम्॥७४

परमात्मा, पूर्व कहेहुए, अपने दिनरात्रिके अन्तमें सोकर जगते हैं और जगते ही भूलोक आदिकी रचना करनेके निमित्त मन (महत्तत्त्व) को रचते हैं अर्थात् नियुक्त करते हैं, ब्रह्माजीके इसप्रकारके नियोगका नाम मनःसृष्टि है ॥ ७४ ॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया॥ आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः

परमात्माके सृष्टि रचनेकी इच्छा करने पर, उस इच्छाकरके प्रेरणा कियेहुए महत्तत्त्वसे आकाश उत्पन्न होता है, तिसका गुण मनु आदिकोंने शब्द कहा है ॥ ७५ ॥

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥ बलवान् जायते वायुस्स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ ७६ ॥

विकारको प्राप्त होतेहुए आकाशसे सुगन्ध और दुर्गन्धोंको धारण करनेवाला, पवित्र करने वाला और प्रबल वायु उत्पन्न होता है, मनु आदिकोंने उस वायुका स्पर्शगुण माना है ॥७६॥

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥

विकारको प्राप्त होतेहुए वायुसे अन्धकार को दूर करनेवाला, सकल वस्तुओंका प्रकाशक, दीप्तिमान् तेज उत्पन्न होता है; उसका गुण रूप कहाता है ॥ ७७ ॥

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥

विकारको प्राप्त होतेहुए रसगुणवाले जल होते हैं ऐसा कहा है, जलोंसे गन्धगुणवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है, स्थूल ब्रह्माण्डकी सृष्टि से पहिले इस प्रकारकी सृष्टि होती है ॥७८॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम्॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते॥७९॥

१ मनःकारणत्वान्महत्तत्त्वमेव मनस्ततः प्रागुक्तं महान्निति पुराणे हि–मनो महान्मतिर्बुद्धिर्महत्तत्त्वञ्च कीर्त्यते । पर्यायवाचकैः शब्दैर्महतः परिकीर्तिताः । इति मेधातिथिः ॥

२ पन्थानश्च विशुध्यन्ति सोमसूर्यौ गुरुतरौ रित्युक्तेः ।

पहिले जो बारहसहस्र संख्याका गिनाहुआ देवतोंका युग कहा है, उसका इकहत्तरगुणा अर्थात् ८,५२,००० देवताओंके वर्षोंका यहाँ एक मन्वन्तर कहाता है ॥ ७९ ॥

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहारएव च ॥ क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ८० ॥

भगवान् प्रजापति, क्रीडा करतेहुएसे बार २ असंख्य मन्वन्तर और इस जगत्के सृष्टि संहार करते हैं ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रति वर्त्तते ॥ ८१ ॥

सत्ययुगमें धर्म अपने चारों चरण (भाग) से पूर्ण था, सबमें सत्य था, और मनुष्योंमें अधर्मके द्वारा विद्याका वा धनका प्राप्त करना नहीं था ॥ ८१ ॥

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ॥ चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥

त्रेता आदि युगोंमें अधर्मसे धन और विद्या की प्राप्तिके लिये धर्मका एक २ चरण हीन होनेलगा, अर्थात् त्रेतामें चोरी आदिरूप अधर्म से एक चरण हीन होनेसे त्रिपाद धर्म, द्वापर में मिथ्याभाषणरूप अधर्मसे दूसरा चरण हीन होनेसे द्विपादधर्म, और कलियुगमें मायारूप अधर्मसे धर्मका तीसरा चरण हीन होनेके कारण एकपाद मात्र शेष रहजाता है ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥

सत्ययुगमें सब रोगरहित थे, जो जिस कामनाको करता था तत्काल सिद्ध होती थी, सबकी चारसौ वर्षकी परमायु होती थी। परन्तु त्रेतादि तीनों युगोंमें सबकी एक २ सौ वर्ष करके परमायु घटनेलगी अर्थात् त्रेतामें तीनसौ वर्षकी, द्वापरमें दोसौ वर्षकी और कलियुगमें एकसौ वर्षकी परमायु हुई, यह परमायु स्वाभाविक है, आयुके बढ़ानेवाले कर्म करनेसे आयु बढ़ भी सकती है ॥ ८३ ॥

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्म्मणाम् ॥ फलं त्वनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

लोकमें युगोंके अनुसार ही मनुष्योंकी परमायु, काम्यकर्मोंका फल, प्रार्थना और ब्राह्मणादिकोंका शाप अनुग्रह आदि प्रभाव फलित होता है ॥ ८४ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥

सत्ययुगमें मनुष्योंके अन्यप्रकारके धर्म, त्रेता में दूसरे ही प्रकारके, द्वापरमें अन्य प्रकारके तथा कलियुगमें भी और प्रकारके ही धर्म होते हैं, तात्पर्य यह कि—युगके अनुसार धर्ममें भी विलक्षणता होती है ॥ ८५ ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

सत्ययुगमें तपस्या ही प्रधान धर्म था, त्रेता में ज्ञान ही प्रधान, द्वापरमें यज्ञ ही प्रधान और कलियुगमें एक दानही प्रधान है ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्म्माण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥

---

१ यहां शंका होती है कि क्रीडा तो सुखकी इच्छासे होती है, आप्तकाम आनन्दस्वरूप भगवान्को क्रीडा करनेकी क्या आवश्यकता हुई ? तहां कहते हैं कि इसकारण ही क्रीडा करते हुएसे ऐसा कहा है। और सुखकी इच्छाके विना कौतुकसे भी लोकमें राजा आदिकोंकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है; सोई व्यासजीने शारीरकसूत्रमें लिखा है—"लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" ।

२ मन्वन्तर तो ज्योतिष आदिमें चौदहही लिखे हैं यहां असंख्य कैसे कहे ? तहाँ कहते हैं कि जैसे महीने बारह ही हैं परन्तु वारंवार आनेसे असंख्य होते हैं तैसे ही यहाँ मन्वन्तर असंख्य जानने ।

महातेजस्वी उन स्वयम्भूने सकल सृष्टिके पालनके लिये, मुखसे उत्पन्न हुए ब्राह्मण, बाहुसे उत्पन्न हुए क्षत्रिय, जङ्घासे उत्पन्न हुए वैश्य और चरणसे उत्पन्न हुए शूद्रोंके क्रमसे सकल कर्म कल्पना करे ॥ ८७ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत्८८

उन्होंने ब्राह्मणोंके पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान और प्रतिग्रह यह छः कर्म कल्पना करे हैं ॥ ८८ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

क्षत्रियों के-प्रतिपालन, दान, अध्ययन, यज्ञ और माला, चन्दन और बनिता आदि निरन्तर सेवन न करना यह संक्षेपसे कल्पना करेहैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

वैश्योंके पशुओंका पालना, दान, यज्ञ, अध्ययन, जलमार्ग और थलके मार्गसे व्यापार, खेतीका काम और दान देना यह कर्म रचे९०

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्॥ एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया९१॥

भगवान् प्रभु ब्रह्माजीने शूद्रोंको इस कामका भार समर्पण करा कि-वह असूयाको छोड़कर मुख्यरूपसे इन तीनों वर्णोंकी सेवा शुश्रूषाकरें॥

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्त्तितः॥ तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा॥

पुरुषमात्र पवित्र है, उसका नाभिसे ऊपरका भाग और भी अधिक पवित्र है तिससे भी अधिक मुख पवित्र है, ब्रह्माजीने स्वयं ऐसा कहाहै।

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात्॥ सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥

ब्राह्मण प्रथम तो ब्रह्माजीके मुखसे उत्पन्न हैं तिसपर भी क्षत्रियादि तीनों वर्णोंसे बड़े तथा वेदशास्त्रकी व्याख्या, अध्ययन अध्यापनादि विषयमें सबप्रकारसे अधिकारी प्रसिद्ध हैं इसकारण सकल जगत् में धर्मके अनुसार ब्राह्मण ही प्रभु हैं ॥ ९३ ॥

तं हि स्वयम्भूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्॥ हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ ९४ ॥

स्वयम्भू ब्रह्माजीने, तपस्याकरके देवलोक और पितृलोकको हव्य, कव्य पहुँचानेके लिये और इस सकल जगत्की रक्षाके लिये अपने मुखकमलसे पहिले ब्राह्मणोंको उत्पन्नकरा ९४

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥

देवता जिस ब्राह्मणके मुखमें सदा हवनीय द्रव्योंको भोजन करते हैं, पितरलोक जिनके मुख में श्राद्धादिके समय दियेहुए अन्न आदिका भोजन करते हैं ऐसे ब्राह्मणोंसे कौन श्रेष्ठ होसक्ता है ? ॥ ९६ ॥

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ॥ बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥

स्थावर (एक स्थानपर रहनेवाले पर्वत, वृक्ष आदि) जङ्गम (चलनेवाले) आदिकोंमें साधारण कीड़े आदि श्रेष्ठ हैं, क्योंकि-उनको सुख दुःखका ज्ञान होता है तैसे प्राणियोंमें बुद्धिजीवी पशु आदि श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वह प्रयोजनके स्थानमें जाते हैं अन्यत्र नहीं । बुद्धिजीवी जीवोंमें श्रेष्ठ ज्ञानवाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें मोक्षके अधिकारी ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ९७

ब्राह्मणोंमें ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अधिकारी विद्वान् ही श्रेष्ठ हैं। विद्वानोंमें शास्त्रमें कहे अनुसार कार्य करने में जिनकी बुद्धि लगी है वह श्रेष्ठ हैं। उनमें से जो करने योग्य कार्यको करते हैं वह श्रेष्ठ हैं। और शास्त्रोक्त कर्म करनेवालोंमें जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही श्रेष्ठ हैं९७

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती ॥ स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

ब्राह्मणका शरीर, धर्मकी साक्षात् सनातन मूर्त्ति है। धर्म के निमित्त उत्पन्न हुए ब्राह्मण, मोक्ष पानेके योग्य पात्र हैं ॥ ९८ ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥

ब्राह्मण जन्म ग्रहण करते ही पृथिवी के समस्त जीवों से श्रेष्ठ होता है। क्योंकि-सबोंके सकल धर्मोंकी रक्षाके निमित्त ही ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई है ॥ ९९ ॥

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १०० ॥

जगत्में जो कुछ सम्पत्ति है सबही ब्राह्मण के अपने धनकी समान है। अतएव ब्राह्मण सकल वर्णोंमें श्रेष्ठ कहाजाता है और सकल सम्पत्तियोंको पानेके योग्य है ॥१००॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥१०१॥

ब्राह्मण जो पराया अन्न भोजन करता है, पराया वस्त्र पहिनता है और परका धन लेकर दूसरेको देता है वह सब उसका अपना ही है; क्योंकि-ब्राह्मणकी दयासे अन्य सकल पुरुष भोजनादि पाते हैं ॥१०१॥

तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ॥ स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्

ब्राह्मणोंके कर्मका विचार करनेके निमित्त और शेष क्षत्रियादिकोंके भी कर्मका विचार करनेके निमित्त, ब्रह्माजी के पौत्र बुद्धिमान् भगवान् स्वायम्भुव मनुजीने इस शास्त्रको रचा॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित ॥ १०३ ॥

इस शास्त्रके पढ़नेके फलको जाननेवाले ब्राह्मणोंको प्रयत्नकरके यह मानवशास्त्र पढ़ना चाहिये और शिष्योंको पढ़ाना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रियादिके सिवाय दूसरे किसीको यह नहीं पढ़ना पढ़ाना चाहिये ॥ १०३ ॥

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥

नियमके साथ इस मनुसंहिताको पढ़ता हुआ ब्राह्मण, प्रतिदिन मन,वाणी,शरीरसे उत्पन्न- हुए पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ १०४ ॥

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान्॥ पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ॥ १०५ ॥

जो इस मनुसंहिताको पढ़ता है वह पंक्तिको पवित्र करता है, और पिता आदि सात पूर्वपुरुष तथा पुत्र आदि आगेकी सात पीढ़ियोंको पवित्र करता है और वह स्वयं ऐसा पवित्र होता है कि इकलाही इस सकल भूमिके दानका पात्र होता है ॥ १०५ ॥

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्द्धनम्॥ इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम्॥

इस मनुस्मृतिका पढ़ना महामङ्गल स्थानस्वरूप है। इसके अभ्याससे बुद्धि बढ़ती है,उत्तम

प्रसिद्धि होती है, परमायु बढ़ती है और मोक्ष मिलता है ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम्। चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ १०७ ॥

इसमें धर्मका पूर्णरूपसे वर्णन करा है। विहितकर्मोंके गुण और निषिद्ध कर्मोंके दोष वर्णन करे हैं और चारों वर्णोंका परम्परासे चला आनेवाला आचार व्यवहार भी कहा है १०७

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ १०८ ॥

परम्परासे चलाआनेवाला आचार उत्तम धर्म है, यह श्रुति और स्मृति दोनोंमें कहा है। अतएव अत्यन्त हित चाहनेवाले ब्राह्मण, श्रुति स्मृतियोंमें कहेहुए धर्मकापालन करनेमें यत्नकरें।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्

आचारहीन ब्राह्मण वेदके पूर्णफल का भागी नहीं होता है। परन्तु यदि वह सदाचारवान् होय तो वेदके सम्पूर्ण फलका भागी होता है ॥ १०९ ॥

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्। सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्॥

मुनिगण, आचारके द्वारा धर्मकी गतिको जानकर, आचारको ही सकल तपस्याओंका प्रधानकारण कहकर स्वीकार करते हैं॥११०॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम्

अब ग्रन्थकी अनुक्रमणिका कहते हैं-प्रथम अध्यायमें जगत्की उत्पत्तिका क्रम, दूसरे अध्यायमें जातकर्मादि संस्कारोंका अनुष्ठान, ब्रह्मचारीका व्रतधारण, गुरु आदिको अभिवादन आदि; तीसरे अध्यायमें गुरुकुलसे लौटे हुए ब्राह्मणोंके उत्तम स्नानकी विधि, मनुजी की वर्णन करीहुई है ॥ १११ ॥

दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम्॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः॥

इस तीसरे अध्याय में चारों वर्णोंके विवाह और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण, वैश्वदेवादि पञ्चमहायज्ञ और नित्यकर्त्तव्यश्राद्ध आदि का वर्णन है ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ॥ ११३ ॥

चौथे अध्यायमें शिलोञ्छ आदि जीवन के उपायों के लक्षण, गृहस्थके नियम। पञ्चम अध्यायमें भक्ष्य-अभक्ष्यका विचार, जन्म मरण आदिके समय शौच और जल आदि से द्रव्य आदिकी शुद्धि कही है ॥ ११३ ॥

स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च॥ राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम्

इस पञ्चम अध्यायमें स्त्रियोंके धर्मयोग कहे हैं। छठे अध्यायमें वानप्रस्थके धर्म, यतिके धर्म, संन्यासके धर्म कहे हैं। सातवें अध्यायमें राजाओंके धर्म, और आठवें अध्यायमें ऋण(क़र्ज़) देने आदिके तत्त्व का निर्णय है ॥११४॥

साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि॥ विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम्

इस आठवें अध्यायमें साक्षियों (गवाहों) से प्रश्न करनेके नियम ; नवमअध्यायमें स्त्री पुरुषोंके धर्म, दायविभाग, द्यूतविधान, तस्कर आदिके निवारण करनेकी रीति लिखी है ११५

वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च सम्भवम् आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा

इस नवम अध्यायमें वैश्य, शूद्रके कर्त्तव्य-

कर्मका अनुष्ठान; दशम अध्यायमें अनुलोम-प्रतिलोमजात सङ्कर जातियोंकी उत्पत्तिका विवरण, आपात्तिकालमें चार वर्णोंको जीविका का उपदेश; एकादश अध्यायमें प्रायश्चित्त की विधि वर्णन करी है॥११६

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ॥
निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम्॥

द्वादश अध्यायमें शुभ,अशुभ कर्मोंसे होने वाले उत्तम, मध्यम और अधम शरीरोंको धारण करना, आत्मज्ञानविहित निषिद्ध कर्मों के गुण तथा दोषोंका निर्णय करा है॥११७॥

देशधर्म्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान्
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः

भगवान् मनुजीने, चिरकालसे प्रचलित अपने २ देशमें होनेवाले धर्म, ब्राह्मणादि जातियोंके धर्म, वंशपरम्परासे चलेआनेवाले कुल के धर्म और वेदमें कहेहुए शुभ अनुष्ठानोंसे रहित पाषण्डियोंके धर्म, इस संहिता में वर्णन करे हैं ॥ ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ॥
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत॥

हे महर्षियो ! पहिले मेरे प्रश्न करनेपर मनुजी ने इस शास्त्रको जिसप्रकार मुझसे कहा था तैसे ही आज तुम भी मेरे मुखसे सब तैसे ही सुनो ॥ ११९ ॥

इति श्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवाद-साहितः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत॥१॥

हे महर्षियो ! साधु और राग-द्वेषरहित विद्वानों करके मनसे जानाहुआ और नित्य सेवन करा हुआ जो धर्म है तिसको अब तुम सुनो॥१॥

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥

कर्ममात्र कामनाका विषय है। स्वर्गादि फल की कामना से कर्म करना अतिनिन्दित है, क्योंकि-जैसा कर्म करनेसे फिर जन्म धारण करना पडता है। परन्तु आत्मज्ञानपूर्वक वेदमें कहे नित्य नैमित्तिक कर्म करनेपर मोक्ष मिलता है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ३

ऐसा कर्म करनेसे मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी, ऐसी बुद्धिको सङ्कल्प कहते हैं। इस सङ्कल्पसे इच्छा उत्पन्न होती है, फिर उससे अनुष्ठान होता है, इसप्रकार यज्ञ सङ्कल्पोंसे होनेवाले हैं। और ब्रह्मचर्य आदि व्रत तथा गुरुसेवादि सकल नियम एवं वानप्रस्थ, संन्यासियोंके सकल धर्म भी सङ्कल्पसे उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ॥ यद्यद्धि कुरुते किंचित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

इसलोक में भोजन, गमन आदिके विषय की क्रिया और ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि वैदिक-क्रिया सब ही इच्छा होने पर होती हैं। कामना-रहित कार्य प्रायः देखनेमें नहीं आता है। कामना के विना किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती है,अतः पुरुष जो २ कर्म करता है वह २ सब कामनाका चेष्टित है ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम्।
यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते।

शास्त्रमें कहेहुए कर्मोंको फलकी अभिलाषा-रहित होकर करनेवाला, अमरलोकता(मोक्ष) को प्राप्त होता है और इस लोकमें सङ्कल्पोंके

अनुसार सकल अभिलाषाओंको पाजाता है॥५॥

वेदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीलेचतद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥६॥

सकलवेद, वेदको जाननेवाले मनु आदिकों की स्मृतियें, उन मनु आदिकोंका ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारका शील, साधुओंका सदाचार और मनकी रुचि यह सब धर्ममें मूल (प्रमाण) हैं ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयोहि सः॥

भगवान् मनुजीने जिस किसीका जो कुछ धर्म कहा है, वह सब वैसाही वेदमें कहा है। क्योंकि मनु सकल ही वेदको भलीप्रकारसे जानते हैं ॥ ७ ॥

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा। श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मेनिविशेतवै॥

इस सकल शास्त्रको ज्ञानरूप नेत्रके द्वारा भलीप्रकारसे देखकर विचारवान पुरुष, वेदके प्रमाणसे कर्तव्य कर्मको जानकर अपने आचरण करने योग्य धर्ममें प्रवृत्त होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः। इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥

मनुष्य वेद और स्मृतिमें कहे हुए धर्मको करता हुआ, इस लोकमें धार्मिक नामसे प्रसिद्धि होकर यश और परलोकमें स्वर्गादि उत्तम फल पाता है ॥ ९ ॥

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ १० ॥

वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति जानना। सकल कार्योंमें श्रुति और स्मृतिके विरुद्ध तर्कसे मीमांसा न करे, क्योंकि श्रुति और स्मृतिसे ही धर्म प्रकाशित हुआ है॥१०॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिंदकः॥

जो द्विज प्रतिकूल (उलटी) तर्कसे मूलरूप श्रुति और स्मृतिका अपमान करता है, उस वेदकी निन्दा करनेवाले नास्तिकको, साधु पुरुष द्विजके करने योग्य वेद पढ़ना आदि सब कर्मोंके अधिकारसे बाहर करदें॥ ११ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

वेद, स्मृति, शिष्टाचार और अपने मनकी रुचि, इन चारको मनु आदि शास्त्रकारोंने धर्मका साक्षात् प्रमाण कहा है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

जो पुरुष गौ, भूमि, सुवर्ण आदि धन और स्त्रीसंभोगरूप काममें आसक्त नहीं हैं उनको ही यह धर्मानुष्ठानका उपदेश किया जाता है। धर्मको जाननेकी इच्छा करनेवालोंको वेद परम प्रमाण है(क्योंकि वेद और स्मृतिकी एकता न होने पर वेदका ही मत माना जाता है)॥१३॥

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ। उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥

जहां श्रुतिका मत दो प्रकारका हो, तहां दोनों प्रकारोंको ही मनु आदिकोंने सम्यक्रूपसे धर्म कहा है ॥ १४ ॥

---

१ योऽहेरिव धनाद्भीतो मिष्टान्नाच्च विषादिव। राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥

२ श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी-इति जावालः। विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानकम्-इति जैमिनिः। अर्थात् श्रुतिके साथ विरोध होयतो स्मृतिके वाक्यका आदर न करना और विरोध न होय और स्मृतिवचनकी अनुसारिणी श्रुति भी न मिलती होय तो श्रुतिका अनुमान करलेना। क्योंकि वेदकी ११३१ शाखा हैं और वह मिलती हैं नहीं, इसकारण न जाने किस शाखामें वह श्रुति है।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः

श्रुतिके मतभेदका उदाहरण कहते हैं कि-उदयकालमें, अनुदयकालमें और सूर्यनक्षत्र से रहितकाल में होम करे। इन तीनों समयों के परस्पर विरुद्ध होने पर भी इनमेंसे किसी कालमें भी अग्निहोत्रीके हवनका बाध न करे। तात्पर्य यह कि सबप्रकारसे होम होता है, इसप्रकार यह वेदकी श्रुति है ॥ १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

जिनका गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि (प्रेत-संस्कार) पर्यन्त सकल विधि मन्त्रोंसे कहा है उनका इस शास्त्रके पढने और सुननेमें अधिकार है अर्थात् द्विजातिको अधिकार है, अन्य शूद्रादिको नहीं है (परन्तु इस शास्त्रमें कहे कर्म को करनेमें उनको बाधा नहीं है) ॥ १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते १७

सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों श्रेष्ठ देव-नदियोंके मध्यमें जो देवरचित अर्थात् श्रेष्ठ देश है उसको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ १७ ॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ॥
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते

तिस ब्रह्मावर्त्त देशमें परम्पराके क्रमसे चलाआता हुआ ब्राह्मणादिका जो आचार व्यवहार प्रचलित है उसको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सकल सङ्कर जातियें सदाचार समझे ॥ १७ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥ १९ ॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, कान्यकुब्ज और मथुरा यह कईएक देश ब्रह्मर्षिदेश कहाते हैं । यह देश ब्रह्मावर्त्तसे कुछ एक न्यून है ॥ १९ ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥ स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इन सब देशमें उत्पन्नहुए ब्राह्मणोंसे पृथिवी के सकल लोक अपने२आचार व्यवहारकोसीखें॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ॥ २१ ॥

उत्तर में स्थित हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतों के बीच का स्थान और कुरुक्षेत्र के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिमका जो देश है उसको मध्यदेश कहते हैं ॥ २१ ॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥ तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

पूर्वमें समुद्रपर्यन्त, पश्चिम में समुद्रपर्यन्त और तिन हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य के स्थान को पण्डित आर्यावर्त्त कहते हैं ॥२२॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ २३ ॥

जिस देश में कृष्णसार मृग स्वभावसे विचरता है उसको यज्ञिय देश (यज्ञ के योग्य

१ रात्र्यास्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते । कालञ्चानुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तथा च प्रातःसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले । रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितश्च तत् ॥ रेखामात्रश्च दृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः । उदितं यं विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥ इतिकात्यायनः ॥

२ इस विषय की विस्तार के साथ मीमांसा गौतमसूत्र (न्यायदर्शन) और उसके वात्स्यायन भाष्यमें करी है ।

देश) जानना । उससे अन्य देश को म्लेच्छ देश कहते हैं ॥ २३ ॥

एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः । शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्षितः ॥

द्विजाति अन्य देशमें उत्पन्न होने पर भी, उद्योग करके इन सब पवित्र देशोंका आश्रय करें । और शूद्र तो अपनी जीविका के लिये चाहे जिस देश में बसै ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता । संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥

हे महर्षियों ! मैंने तुमसे संक्षेपके साथ धर्म का कारण, जगत् की उत्पत्ति और बसने योग्य स्थानका माहात्म्य कहा । अब ब्राह्मणादि वर्णों के सकल धर्मों को सुनो ॥ २५ ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का गर्भाधान आदि शरीरसंस्कार, वेद में के पवित्र मन्त्रोच्चारणरूप कर्मों से करे । वह संस्कारवान् इस लोक में वेद पढ़ने आदिके द्वारा और परलोक में यज्ञोंकी फलप्राप्तिके द्वारा पवित्र होगा ॥ २६ ॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

गर्भाधान के होम आदि कर्म, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण और उपनयन आदि संस्कारों से द्विजातियों का बीजदोष और गर्भदोष का पाप दूर होजाता है ॥ २७ ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

वेदाध्ययन, मधु मांसत्याग आदि नियम, प्रातः और सायङ्काल के होम, छत्तीसवर्षमें पूर्ण होनेवाले तीनों वेदोंके पढ़नेके निमित्त गुरुकुलमें बसने, ब्रह्मचर्यदशा में देवता और ऋषियोंके तर्पण करने, गृहस्थदशामें सन्तान को उत्पन्न करने, ब्रह्मयज्ञ आदि पञ्चमहायज्ञ करने और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके करनेसे मनुष्य इस शरीरावच्छिन्न आत्माको ब्रह्मप्राप्तिके योग्य करता है ॥ २८ ॥

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥

बालकका जन्म होतेही, नालछेदनसे प्रथम उसका जातकर्मसंस्कार करनेकी विधि है। और उसीसमय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उसको सुवर्ण, शहद और घृत चटावै ॥ २९ ॥

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥

ग्यारहवें वा बारहवें दिन उत्पन्न हुए बालक का नामकरण करै या दूसरे से करावै । यदि इस समय न करसकै तो ज्योतिःशास्त्रके अनुसार श्रेष्ठ तिथि, सुमुहूर्त्त और श्रेष्ठ नक्षत्रमें करै ॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणका मङ्गलवाचक, क्षत्रियका बलवाचक, वैश्यका धनवाचक और शूद्रका दासभाव का सूचक नाम रक्खे ॥ ३१ ॥

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् । वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥

ब्राह्मणका नाम मङ्गलसूचक शर्म आदि शब्दयुक्त जैसे शुभशर्म्मा इत्यादि, क्षत्रियका नाम बलका सूचक वर्म आदि शब्दयुक्त जैसे बलवर्मा इत्यादि, वैश्य का नाम धनका सूचक

१ नाभिवर्द्धनात्का अर्थ नालछेदन, इसकारण है कि वृधु छेदने धातुसे काटने के अर्थमें वर्द्धन शब्द बना है ।

भूति आदि शब्दयुक्त जैसे वसुभूति आदि और शूद्रका नाम सेवकभावका सूचक जैसे दीनदास आदि रक्खै ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्

स्त्रियोंका नाम ऐसा रक्खे कि–जो सुख से बोलाजाय, क्रूर अर्थका वाचक न होय, जिस का अर्थ सहजमें ही समझाजाय, जिसको सुननेसे मनको प्रसन्नता होय, जो मङ्गलवाचक होय, जिसके अन्तमें दीर्घस्वर होय और जिसके उच्चारणसे आशीर्वाद प्रतीत होय। जैसे कि–यशोदादेवी ॥ ३३ ॥

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

बालकके उत्पन्न होनेसे चौथे महीनेमें सूर्य का दर्शन करानेके निमित्त सूतिकागृह (सोवर के स्थान) में से निष्क्रमण (निकलना) नामक संस्कार करै। फिर छटे महीनेमें अन्न प्राशन संस्कार करै अथवा अपने कुलमें जिस समयको शुभ समझा हो उसीसमय निष्क्रमण आदि संस्कार करै ॥ ३४ ॥

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः॥ प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्

श्रुतिकी आज्ञासे सकल जाति अपने कुल-धर्म के अनुसार प्रथम वर्षमें अथवा तीसरे आदि वर्षमें चूडाकर्म (मुण्डन) करैं ॥ ३५ ॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

गर्भ होनेसे आठवें वर्षमें अर्थात् जन्मनेसे ६ वर्ष ३ मासके अनन्तर और ७ वर्ष ३ मास पर्यन्त ब्राह्मणका उपनयन (यज्ञोपवीत) कर देय। गर्भसे ग्यारहवें वर्ष में अर्थात् जन्मनेसे ९ वर्ष ३ मासके अनन्तर और १० वर्ष ३ मास के भीतर क्षत्रियका उपनयन और गर्भसे बारहवें वर्षमें अर्थात् जन्मनेसे १०वर्ष ३ मासके अनन्तर और ११ वर्ष ३ मासके भीतर वैश्यका उपनयन करै ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे॥ राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे

जिस ब्राह्मणको ब्रह्मवर्चस अर्थात् वेदाध्ययन और उसके अर्थको ग्रहण करनेकी प्रबल कामना हो, अथवा बालकको ऐसी कामना होना असम्भवसा प्रतीत होता है इसकारण ऐसा अर्थ करना कि–जिसके पिताको ऐसी इच्छा हो कि–मेरा पुत्र ब्रह्मतेजस्वी हो उस ब्राह्मण का गर्भसे पांचवें वर्षमें अर्थात् जन्मनेसे ३वर्ष, ३ मासके अनन्तर और ४ वर्ष ३ मासके भीतर उपनयन करै। बहुतसा बल चाहनेवाले क्षत्रियका गर्भसे छठे वर्षमें अर्थात् जन्मने से ४ वर्ष ३ मासके अनन्तर और ५ वर्ष ३ मासके भीतर उपनयन करै। और बहुतधन की चेष्टा की इच्छा करनेवाले वैश्य का गर्भ से आठवें वर्ष में अर्थात् जन्मने से ६ वर्ष ३ मासके अनन्तर और ७ वर्ष ३ मासके भीतर उपनयन करै ॥ ३७ ॥

आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ॥ आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोरा चतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण का गर्भ से सोलहवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् जन्मने से १५ वर्ष ३ मास पर्यन्त, क्षत्रियका गर्भ से बाईसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् जन्मने से २१ वर्ष३ मासपर्यन्त और वैश्य का

१ द्विज न कहकर बालक कहने से यह नियम शूद्रके लिये भी है।

गर्भसे चौबीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् जन्मने से २३ वर्ष ३ मासपर्यन्त उपनयन का समय नहीं बीतता है ॥ ३८ ॥

अतऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः

इन तीनों वर्णों का इतने समय तक उपनयन संस्कार नहीं होय तो इसके अनन्तर यह गायत्रीभ्रष्ट होकर माननीय महात्माओं में निन्दित होजाते हैं और उनको व्रात्य कहा जाता है ॥ ३९ ॥

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ॥ ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

शास्त्रकी आज्ञानुसार प्रायश्चित्त न करनेवाले इन्होंको, ब्राह्मण आपत्तिकाल में भी वेद न पढावें और इनके साथ विवाह आदि योनिसम्बन्ध न करें ॥ ४० ॥

कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ॥ वसीरन्नानुपूर्वेण शाणक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी कृष्णसार मृग की चर्म का उत्तरीय (ओढने का वस्त्र) और सनके वस्त्र का अधोवस्त्र (पहरने का वस्त्र) करे। क्षत्रिय ब्रह्मचारी रुरुमृग के चर्मका उत्तरीय और एरंडी का अधोवस्त्र तथा वैश्य ब्रह्मचारी छागचर्म का उत्तरीय और भेडके रोमोंका अधोवस्त्र धारण करे ॥ ४१ ॥

मौञ्जीत्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ॥ क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण की मेखला, समान, तीन लड़की, स्पर्श में कष्ट न देनेवाली (चिकनी) मूँज की बनावे । क्षत्रिय की मेखला, मूर्वामयी धनुष के रोदेके आकारकी और वैश्यकी मेखला सनकी तीनलड़ की बनावे ।।४२।।

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥

मूँज आदि न मिले तो ब्राह्मण की मेखला कुशा की, क्षत्रिय की अश्मन्तक तृण की और वैश्य की बल्वज नामक तृण की, तीनलड़की मेखला अपने २ वंश की रीति के अनुसार एक, तीन वा पांच गांठ लगाकर बनावे ४३

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ॥ शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥

कपासके तीन सूत दोनों हथेलीके बीच में धारण करके दाहिना हाथ ऊपरको और बांया हाथ नीचे को चलाकर जो सूत्र बटाजाय उसको इसीप्रकार फिर हाथमें रखकर वाम हाथ ऊपरको और दाहिना हाथ नीचेको चलाने पर जो सूत्र बटाजाय उसको तिलड़ा करके ग्रन्थिबन्धन करनेसे यज्ञोपवीत बनता है, इस प्रकारके यज्ञोपवीतको ब्राह्मण धारण करै। क्षत्रिय ऐसा ही सनके सूत्रका और वैश्य ऐसा ही भेंडके लोमका यज्ञोपवीत धारण करै४४॥

ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी बेल अथवा ढाक का दण्ड, क्षत्रिय ब्रह्मचारी बड़ अथवा खैर का दण्ड और वैश्य ब्रह्मचारी पीलू अथवा गूलड़ का दण्ड शास्त्रानुसार धारण करसक्ता है ॥४५॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः

१ जिनको संस्कारहीन होकर गायत्रीभ्रष्ट हुए कई २ पीढ़ी वीतगई हैं उनका संस्कार होने की व्यवस्था, महामहोपाध्याय सत्सम्प्रदायाचार्य पण्डित स्वामिराम, मिश्र शास्त्रीजी ने अपनी रचित 'व्रात्यसंस्कारमीमांसा' नामक पुस्तक में लिखी है। जिन की इच्छा हो १२ आने में काशी से पुस्तक मँगालें।

प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणका दण्ड केशोंपर्यन्त लम्बा, क्षत्रियों का मस्तकपर्यन्त और वैश्यका नासिकापर्यन्त लम्बा दण्ड बनावे ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः। अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः॥

ब्राह्मणादि सबोंकेदण्ड सूधे, खखोड़लआदि के छिद्रों से रहित, देखने में सुन्दर, छालसहित, किसी स्थानमें भी अग्नि से न जलेहुए और मनुष्योंको भय न देनेवाले हों ॥ ४७ ॥

प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ॥ प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ४८ ॥

यह शास्त्रोक्त इच्छित दण्डको ग्रहण करके सूर्यदेवका उपस्थान करें। फिर अग्निकी प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक भिक्षा करें ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी, उपनयन संस्कारको प्राप्त होकर पहिले भवत् शब्दका उच्चारण करके अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा कहकर भिक्षा मांगै। क्षत्रिय ब्रह्मचारी भवत् शब्दको मध्य में कहकर अर्थात् 'भिक्षां भवति देहि' ऐसा कहकर भिक्षा मांगै और वैश्य अन्तमें भवत् शब्द लगाकर अर्थात् 'भिक्षां देहि भवति' ऐसा कहकर भिक्षा मांगै ॥ ४९ ॥

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥ भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५० ॥

यह पहिले माता व बहिन अथवा माताकी छोटी बहिन वा जो स्त्री ब्रह्मचारी का निषेध करके तिरस्कार न करै उससे भिक्षा मांगै॥५०॥

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थममायया ॥ निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः

उपनीत ब्राह्मणादि इसप्रकार, जितने अन्नसे तृप्ति होसके उतने की भिक्षा करके और निष्कपट मन से वह अन्न गुरु को निवेदन करके आचमन कर पूर्वाभिमुख बैठ शुद्धभाव से भोजन करै ॥ ५१ ॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ॥ श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

आयु की कामना करनेवाला पूर्वमुख हो कर भोजन करता है। यश की कामनावाला दक्षिण मुख, सम्पत्ति की कामनावाला पश्चिम-मुख और सत्यफल की कामनावाला उत्तर मुख होकर भोजन करता है ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य के अनन्तर भी आचमन करके एकाग्रमन से अन्न का भोजन करें। भोजन के अन्त में भी आचमन करें और जल से नासिका, नेत्र और कर्ण आदि शिर के छः छिद्रों को भी स्पर्श करें ॥ ५३ ॥

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः

नित्य अन्नका पूजन करै अर्थात् अन्न ही जीवनका आधार है, इसप्रकार अन्नका ध्यान करै। अन्नकी निन्दा न करके भक्तिभावसे उसको भोजन करै, अन्नको देखकर प्रसन्न होय और किसी दूसरे कारणसे चित्त खिन्न होय तबभी अन्नको देखकर त्याग न करै और यह हमको नित्य मिलै, ऐसा समझकर अन्नको प्रणाम करै ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति

अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥५५

भक्तिभाव से भोजन करा हुआ अन्न निःसन्देह सदा बल और पराक्रम को देता है, और अन्नकी निन्दा करके भोजन करनेपर वह बल और पराक्रम दोनोंका नाश करता है॥५५॥

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा। न चैवात्यशनं कुर्यान्न चाच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्

किसी को जूठा अन्न न देय, दिन और रात्रि में जो भोजन के समय हैं इनके बीचमें और भोजन न करै, अधिक भोजन न करै और जूठे मुख कहीं को भी नहीं जाय॥ ५६॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्। अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

अधिक भोजन करना, रोगी करनेवाला, परमायु को घटानेवाला, स्वर्गके साधन याग आदि क्रिया में अनधिकारी करनेवाला, लोक में पेटपाल आदि शब्दों से निन्दा करानेवाला और पुण्यकारक सकल कर्मों से रुचि हटानेवाला है, इसकारण इसको त्यागदेय॥५७

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत्। कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन

ब्राह्मण सब समय ब्राह्मतीर्थ से आचमन करै, अथवा प्रजापतितीर्थ से वा देवतीर्थ से आचमन करै; परन्तु पितृतीर्थ से कभी आचमन न करै॥ ५८॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते। कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः॥५९

अंगूठेकी मूलके नीचेके भागको ब्राह्मतीर्थ कहते हैं, कन अंगुलि के मूल का नाम प्रजापति तीर्थ, सब अंगुलियोंके अग्रभागका नाम देवतीर्थ और तर्जनी तथा अंगूठेके मध्यभाग को पितृतीर्थ कहते हैं॥ ५९॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्। खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च॥ ६०॥

पहिले ब्राह्मआदि तीर्थसे तीनवार जलका आचमन करै, फिर नीचे ऊपरके ओठोंको मूँदकर मुखको दोबार जलसे धोवै। फिर जल से मस्तकमें के सकल इन्द्रियोंके छिद्रोंको वक्षःस्थल और मस्तकको क्रमसे स्पर्श करै॥६०॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित्। शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः

धर्मको जाननेवाला जो शुद्ध होना चाहै वह ब्राह्मआदि तीर्थके द्वारा, जो गरम न हो, झागीला न हो, ऐसे जलसे निर्जन स्थानमें पूर्व वा उत्तरको मुख करके बैठकर सदा आचमन करै॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः। वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः॥६२॥

आचमन करनेवाला ब्राह्मण हृदयपर्यंत जानेवाले जलसे, क्षत्रिय कण्ठपर्यन्त जानेवाले जलसे, वैश्य केवल मुखके भीतर जानेवाले जलसे और शूद्र केवल जिह्वा और ओठके मात्रको स्पर्श करनेवाले जलसे आचमन करनेपर पवित्र होता है॥ ६२॥

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः। सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसज्जने

कण्ठमें धारण करे हुए यज्ञसूत्र(यज्ञोपवीत) के मध्यमेंको दाहिना हाथ उठानेपर जो सूत्र वामकन्धे और दाहिनी कोखमें रहता है तिस यज्ञोपवीतके धारण करनेवालेको उपवीत, ऐसे ही कण्ठमें धारण करे हुए यज्ञसूत्रके बीचमें को वाम हाथ उठानेपर दाहिने कन्धे और वाम कोखमें को लटकनेवाले यज्ञोपवीतको धारण करनेवालेको प्राचीनावीती और कण्ठ में सूधे लटकते हुए यज्ञोपवीतको धारण करने वालेको निवीती कहते हैं॥ ६३॥

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम्॥ अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥

मेखला, चर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु यह सब कटजायँ या टूटजायँ तो जलमें फेंककर अपने २ गृह्यसूत्रों के अनुसार मन्त्र पढ़कर नवीन २ धारण करै ॥ ६४ ॥

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ ६५ ॥

गर्भसे सोलहवें वर्षमें ब्राह्मणका केशान्त संस्कार करनेकी विधि है। क्षत्रियोंका गर्भ से बाईसवें वर्षमें और वैश्योंका गर्भसे चौबीसवें वर्षमें यह संस्कार करै ॥ ६५ ॥

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्

पुरुषोंके समान स्त्रियोंके भी शरीरकी शुद्धि के निमित्त बिना मंत्रोंके उच्चारण करे यह सब संस्कार इन्हीं समयोंपर नियमसे करै॥६६॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

विवाहसंस्कार की विधि ही स्त्रियों का उपनयन नामक वैदिक संस्कार है, उसके अनन्तर पतिकी सेवाही गुरुकुल में वास है और घरका कार्यही सायं प्रातःकालका होमरूप अग्निकी सेवा है ॥ ६७ ॥

एषप्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः उत्पत्तिव्यञ्जकःपुण्यः कर्मयोगं निबोधत॥

हे महर्षियो ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के दूसरे जन्मको प्रकट करनेवाला और पवित्र करनेवाला वह उपनयन सम्बन्धी क्रियाकलाप वर्णन करा। अब उन उपनीत ब्राह्मणादिकों के कर्तव्य कर्म को सुनो ॥ ६८ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च६९

गुरु प्रथम शिष्य को उपनयन देकर आदि से अन्ततक शौचकी रीति सिखावै, फिर स्नान, आचमन, सन्ध्यावन्दन आदि और सायं प्रातःकाल के होम की रीति सिखावै ॥ ६९ ॥

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥ ७० ॥

शिष्य जिस समय अध्ययन करै उस समय वह शास्त्र के अनुसार आचमन करके, जितेन्द्रिय होकर उत्तर को मुख करके ब्रह्माञ्जलि कर पवित्रवस्त्र धारण करके बैठे, ऐसे शिष्य को गुरु वेद पढावै ॥ ७० ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥

वेद पढनेके आरम्भ और समाप्तिके समय शिष्य आगे कहीहुई रीतिसे गुरुके दोनों चरणोंको स्पर्श करके, निरन्तर हाथ जोडेहुए पढै। इसप्रकार पढने की रीति को ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ॥ ७१ ॥

व्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः॥ सव्येन सव्यःस्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः

व्यस्तहस्त कहिये नीचे ऊपर करे और खुले हुए दोनों हाथों से गुरुके चरणों का स्पर्श करै अर्थात् खुलाहुआ दाहिना हाथ ऊपर और खुलाहुआ वाम हाथ नीचे करके दाहिने हाथ से गुरु के दाहिने चरण का और वाम हाथ से वाम चरण का स्पर्श करै ॥ ७२ ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः॥ अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥ ७३ ।

शिष्य जिस समय पढ़े उससमय उसको सदा आलस्यरहित गुरु 'अध्ययन कर' ऐसा कहकर पाठका प्रारम्भ करावें और अन्त में 'पाठथमै' ऐसा कहकर पढ़ाने से उठें ॥७३॥

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ॥ स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥

ब्राह्मण, वेद पढ़ने के आरम्भ में और वेदपाठकी समाप्ति में सदा ॐकार का उच्चारण करैं; क्योंकि ॐकार का उच्चारण न करने से धीरे २ अध्ययन नष्ट होजाता है और अंत में ॐकार का उच्चारण न करने से सब पाठ का विस्मरण होजाता है ॥ ७४ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ॥

पूर्वको अग्रभागवाली कुशाओंपर बैठाहुआ, दोनों हाथोंमें कुशाओंकी पवित्रियोंसे पवित्र हुआ और पन्द्रह ह्रस्व स्वरों का उच्चारण करनेके योग्य कालमें तीन प्राणायामसे शुद्ध होनेपर ॐकार का उच्चारण करनेके योग्य होसक्ता है ॥ ७५ ॥

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ ७६ ॥

ब्रह्माजीने, ऋक्, यजुः और साम इन तीन वेदोंसे ॐकारके अवयव अकार, उकार, मकार और भूः, भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियोंको क्रमसे प्रकटकरा ॥ ७६ ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ॥ तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥

सब लोकों के पूजनीय ब्रह्माजी ने, ऋक्, यजुः और साम इन तीन वेदों से तदित्यादि अर्थात् "तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गोदेवस्य धीमहि, धियोयोनः प्रचोदयात्" इन गायत्रीके तीनों पादों को क्रम से एक२करके प्रकट करा॥७७॥

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥७८॥

इस प्रणव और भूर्भुवः स्वः इस व्याहृतिसे युक्त त्रिपदा गायत्री का दोनों सन्ध्या के समय जो ब्राह्मण सावधान मन से जप करता है वह तीनों वेदों के अध्ययनके पुण्यसे युक्त होता है॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः॥ महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ७९ ॥

जो द्विज इस प्रणवसहित व्याहृतियुक्त त्रिपदा गायत्रीका नदीके तट आदि निर्जन स्थान पर एक सहस्र जप करता है वह, जैसे सांप कैंचुलीसे छूटता है तैसे ही एक मासमें बड़े भारीभी पापसे छूट जाता है ॥७९॥

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ॥ ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ ८० ॥

सन्ध्याके समय अथवा और किसी समय भी जो द्विज इस गायत्रीका जप नहीं करता है अथवा सायं और प्रातःकालके समय होम नहीं करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य सज्जनोंमें निन्दित होता है ॥ ८० ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः॥ त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥

ब्रह्मकी प्राप्ति का कारण जो "ॐकार भूः भुवः स्वः" इन तीन महाव्याहृति तथा त्रिपदा गायत्री को वेदका मुख (आदि) समझे॥८१॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ॥ स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥

इससे जो पुरुष, प्रतिदिन आलस्य को छोड़कर तीन वर्ष तक ॐकार और व्याहृतियुक्त

त्रिपदा गायत्री का जप करता है वह वायु की समान जहां चाहे तहां जासक्ता है और वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः॥ सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥

अकार-उकार-मकाररूप एकाक्षर प्रणव ही परब्रह्मस्वरूप, तीन प्राणायाम ही चान्द्रायण आदि, प्रणव और व्याहृतिसहित गायत्री का जप ही परमतप है। गायत्री से बढकर कोई मंत्र नहीं है। मौन रहने की अपेक्षा सत्य बात करना अच्छा है अर्थात् ॐकार, प्राणायाम, गायत्री और सत्यवार्त्ता इन चारों की सदा उपासना करे ॥ ८३ ॥

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजति क्रियाः ॥ अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

वेद में कहेहुए होमयाग आदि सब ही कर्म नष्ट होजाते हैं, केवल प्रणव ही परब्रह्म की प्राप्ति का हेतु है,इसकारण अक्षय है,इसका विनाश नहीं है, प्रणव ही प्रजापति आदिकों का अधिपति परब्रह्म है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः॥ उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥

दर्शपौर्णमास आदि यज्ञों की अपेक्षा ॐकार आदि का जपरूप यज्ञ दशगुणा अधिक शुभदायक है। वह जप यदि उपांशु अर्थात् इसप्रकार कियाजाय कि-कोई समीप में का पुरुष भी न सुनसके तो उससे सौगुणा फल होता है, उसका मानसजप अर्थात् ओठ जीभ आदि बिनाचलाए कियाहुआ जप सहस्रगुणा फल देता है ॥ ८५ ॥

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः॥ सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

महायज्ञ के अन्तर्गत वैश्वदेव होम,बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथिपूजन यह चार पाक यज्ञ और दर्शपौर्णमास आदि विधियज्ञ यह सब, प्रणव आदि उच्चारणरूप जपयज्ञ की सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचसक्ते हैं ॥ ८६ ॥

जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते

ब्राह्मण केवल जप से ही सिद्धि प्राप्त कर सकैगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। वेदोक्तयज्ञ आदि और कर्म करे वा न करे, मैत्र अर्थात् पशु जीव आदि की हिंसा से रहित जप करने पर ब्राह्मण कहाता है, वह ब्रह्ममें लीन होता है८७

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु॥ संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम्

जैसे सारथि, रथ में जोडेहुए घोडोंको साधने में यत्न करता है तैसे ही विद्वान् पुरुष, चित्त को खैंचनेवाले विषयों में विचरतीहुई इन्द्रियों को वशमें करने का यत्न करै ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः॥ तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥

पूर्वके विद्वानों ने जो ग्यारह इन्द्रियें कहीं हैं, मैं क्रमसे उन सकल इन्द्रियों को सम्यक् रूप से कहता हूँ ॥ ८९ ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥ पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

कर्ण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा पाँचवीं नासिका और पायु, उपस्थ, हाथ, पैर तथा दशवीं वाणी कही है ॥ ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः॥

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥

इनमें क्रम से कर्ण आदि पाँच इन्द्रियों को बुद्धीन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय), और पायु आदि पाँच इन्द्रियों को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९१ ॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥ यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

अन्तरिन्द्रिय मन को लेकर इन्द्रियों की ग्यारह संख्या पूर्ण होती है। मन सङ्कल्प के साथ में बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंका प्रवर्त्तक होता है; अतएव मनको जीतने परही पूर्वोक्त छः इन्द्रियों को जीता जासक्ता है ॥९२॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥ संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति

इन्द्रियों की विषयों में अत्यन्त आसक्ति होनेसे ही जीव दृष्ट और अदृष्ट दोषों को पाता है इसमें सन्देह नहीं है। इसकारण इन्द्रियों को वशमें करके ही मनुष्य अनायास में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ को पासक्ता है ९३

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ९४

विषयों को भोगने से कामना कभी शान्त नहीं होती है किन्तु पहिले से अधिक होजाती है। जैसे कि-घीसे अग्नि बुझती नहीं है किन्तु और भी प्रज्वलित हो उठती है ॥ ९४ ॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्॥प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥

जो पुरुष सकल विषयोंको पावे और जो सकल विषयवासनाओं को त्यागे, उनमें विषयभोगी की अपेक्षा विषयवासनारहित पुरुषही प्रशंसा के योग्य है ॥ ९५ ॥

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥

इन्द्रियें स्वभाव से विषयोंमें आसक्त हैं, विषयों के नाशवान् होने आदि दोषोंको जानकर इन्द्रियों को जैसे वशियों से हटायाजासक्ता है तैसे विषयों की सेवा बिनाकोर नहीं होसक्ता, अतएव पहिले कहेहुए उपाय के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥ न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ९७ ॥

जो विषयों के सेवन में अत्यन्त आसक्त होकर दुष्ट भावनाओंवाले होगये हैं, उनके वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, विषय और तपस्या यह कभी सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ९७ ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः। न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

स्तुति और निन्दा को सुनकर, सुखदायक स्पर्शवाली और दुःखदायक स्पर्शवाली वस्तु को स्पर्श करके, सुरूप वा कुरूप को देखकर सुस्वादु व स्वादहीन वस्तु को खाकर और सुगन्ध वा दुर्गन्ध को सूँघकर जो मनुष्य हर्ष वा विषाद नहीं मानता है उसको ही जितेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् । तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ९९ ॥

जैसे जल से भरेहुए किसी चमड़े के पात्र में एक छेद होनेपर उसमें का सब जल बाहर निकल जाता है तैसे ही सब इन्द्रियों में से जिसकी एक इन्द्रिय भी किसी विषय में अत्यन्त आसक्त है उसकी और सब इन्द्रियें शव

में होनेपर भी तत्त्वज्ञान नष्ट होजाता है ।९९।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा॥
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्॥

ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियों को वशमें करके तथा मनका संयम करके, शरीर को पीड़ा न देता हुआ उपाय से सब पुरुषार्थोंका साधन करै॥

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात्
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्

एकांतस्थान में आसन पर बैठकर गायत्री का जप करता हुआ सूर्योदय के समय पर्यन्त प्रातः सन्ध्याकी उपासना करै। और जबतक भलीप्रकार से तारागण का दर्शन न हो तबतक आसनपर बैठकर सायंसन्ध्याकी उपासना करै॥

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥ १०२॥

प्रातःकाल को बैठकर सन्ध्योपासना करनेसे अज्ञान के करेहुए रात्रि में के सकल पाप नष्ट होजाते हैं और आसनपर बैठकर सायंसन्ध्या की उपासना करने से दिन में अज्ञानवश बने हुए सकल पापों का नाश करता है।।१०२

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः

जो पुरुष प्रातःकाल की सन्ध्या को नहीं करता है और जो सायं सन्ध्याकी आराधना नहीं करता है उसको शूद्रकी समान, द्विजातियों के करने योग्य सकल कर्मों से बाहर करना चाहिये ॥१०३॥

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः॥ सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥ १०४॥

द्विजाति इन्द्रियों को वशमें कर निर्जन वन में जाकर नदी झरने आदि के जल के समीप में नित्यनैमित्तिक सकल कर्मों को करके, एकान्तचित्त से प्रणव और व्याहृतिसहित गायत्री को पढ़ै॥ १०४॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके॥
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि

पढ़ने के निमित्त निषिद्ध दिन में भी शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषरूप वेदाङ्ग में, नित्य कर्त्तव्य सन्ध्यावन्दनादि में और होम मन्त्रोंमें अनध्याय नहीं होता है॥

नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसूत्रं हि तत्स्मृतम्। ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम्॥ १०६॥

नित्य कर्त्तव्य जप यज्ञादि में अध्ययन का निषेध नहीं है, क्योंकि इसमें विराम न होने से ही इसको मन्वादिकों ने ब्रह्मसत्र कहा है। ब्रह्माहुति कहिये वेदरूप जो हवनकी सामग्री उसकी आहुति जो अध्ययन उसको अनध्याय के दिन करने पर भी पुण्यकी प्राप्ति होती है अर्थात् अनध्याय के दिन रुकने से उसकी नित्यता नहीं रहसक्ती॥ १०६॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः॥ तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु॥ १०७॥

जो पुरुष शुद्धभाव से शरीर को वश में रखकर विधि के अनुसार कम से कम एक वर्षतक जपयज्ञ का अनुष्ठान करता है, वह जपयज्ञ उसके लिये क्षीर, दधि, घृत और मधु का क्षरण करता है अर्थात् इन सब द्रव्यों के द्वारा उसकी करी हुई देवता और पितरों की तृप्ति होती है, वह उनसे तृप्त होकर अध्ययन करनेवाले को सकल अभिलाषा देकर तृप्त करते हैं, केवल वेदाध्ययनका यह फल

नहीं है, पुराणादिके पढ़नेका भी यही फल जानना ॥ १०७ ॥

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् । आ समावर्त्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥

उपनीत ब्रह्मचारी समावर्तन संस्कार पर्यन्त अर्थात् जबतक गुरुके यहांसे पिताके घरको न लौटे तबतक गुरुके यहां रहकर प्रतिदिन प्रातः और सायङ्कालके समय होमकी समिधा और भिक्षाका अन्न लाना, भूमिपर सोना और गुरुका जल आदि लानारूप हितकारी कार्य यह सब करै ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः । आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः ॥ १०९ ॥

आचार्यका पुत्र, सेवा शुश्रूषा आदि करनेवाला, किसी प्रकारका ज्ञान देनेवाला, धर्मात्मा, पवित्र, अपना, पढ़ेहुएको धारण करनेमें समर्थ, साधु और ज्ञाति इन दशको धर्मके अनुसार पढ़ावै ॥ १०९ ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥ ११० ॥

किसी के पढ़नेमें अक्षर ठीक नहीं निकलते हैं अथवा स्वररहित अध्ययन होरहा है, ऐसा देखकर भी बिना किसीके बूझे बुद्धिमान् गुरु शिष्यके सिवाय दूसरे किसीसे भी कोई बात न कहै । भक्तिश्रद्धा आदिके साथ जैसी प्रश्न करनेकी रीति शास्त्रमें कही है उसको छोड़कर जो कोई प्रश्न करै उससे कुछ न कहै। इन दोनों स्थलमें जानकर भी जनसमाजमें गूँगे की समान व्यवहार करै ॥ ११० ॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति । तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति ॥

जो पुरुष, अधर्मसे प्रश्न करनेवालेको उत्तर देता है, और जो पुरुष अन्यायके साथ प्रश्न करता है इन दोनोंमें से एकका मरण होजाता है अथवा दोनोंका लोकोंसे द्वेष होजाता है ॥

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ॥ तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥ ११२ ॥

जिस शिष्यके पढ़नेमें धर्म वा अर्थ न हो अथवा जिससे पढ़ानेके अनुसार सेवा शुश्रूषा भी न प्राप्त हो ऐसे शिष्यमें इसप्रकार विद्यारूप बीजको न बोवै जैसे कि—ऊपरभूमिमें उत्तम बीज बोनेपर अंकुर नहीं निकलता है, इसकारण कोई उस ऊपरभूमिमें धान जौ आदि बीज नहीं बोता है ॥ ११२ ॥

विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥

ब्रह्मवादी विद्याके साथ मरजाय तो ठीक है परन्तु जीवनोपायका अत्यन्त कष्ट होने पर भी पढ़ानेके योग्य शिष्यके न मिलने पर अपात्रमें इस विद्यारूप बीजको न बोवै ११३॥

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ॥ असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ ११४ ॥

विद्याकी अधिष्ठात्री देवताने विद्वान् ब्राह्मणके समीप आकर कहा कि-मैं तुम्हारा खजानारूप हूँ, मेरी यत्नसे रक्षा करो, असूया आदि दोषयुक्त पुरुषको मुझे न देना, इस प्रकार रक्षित होने पर मैं अत्यन्त बलवती होऊँगी ॥ ११४ ॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥

जिस पुरुषको सदा शुद्ध, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी जाने, उस सावधान विप्रके हाथमें

विद्यारूप निधि का पालन करनेवाला मुझे समर्पण करै ॥ ११५ ॥

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात्॥ स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ११६

कोई अभ्यास करने को वेद का पाठ करता हो वा कोई गुरु किसी शिष्य को वेद पढ़ाता हो उससमय आज्ञा के विना जो पुरुष उस वेदको सुनकर ग्रहण करता है वह वेद का हरण करने से पातकी होकर नरक में पड़ता है११६

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽध्यात्मिकमेव च ॥ आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥

जिससे अर्थशास्त्र की वा वेदशास्त्र की अथवा आत्मतत्व के ज्ञान की शिक्षा लेय, अनेकों मान्यपुरुषों के होनेपर भी उस सिखानेवाले को सबसे पहिले अभिवादन (प्रणाम) करै। उन तीनों के इकट्ठे होने पर पहिले ब्रह्मज्ञान के गुरुको, फिर वेदशास्त्र के गुरुको और अन्त में अर्थशास्त्र के गुरु को अभिवादन करै ॥ ११७ ॥

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ॥ नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ ११८ ॥

विधिनिषेध के वशमें रहने वाले ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि केवल गायत्रीमात्र जानते हों तो भी,उनसे जो मान्य हैं और जो विधिनिषेध के वशमें नहीं हैं अर्थात् निषिद्ध पदार्थों का विक्रय आदि करने वाले हैं वह तीनों वेदोंके जाननेवाले होकर भी श्रेष्ठ नहीं हैं ॥ ११८ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत ॥ ११९ ॥

विद्या और अवस्था में अधिक बड़े लोक जिस शय्या वा आसनपर अपना विशेषरूप से अधिकार करके उसपर सोवैं वा बैठें,विद्याहीन थोड़ी अवस्थावाला उस शय्या वा आसनपर कभी न सोवै, न बैठे। और ऐसे गुरुलोगों के आनेपर विद्या और अवस्था में छोटा पुरुष यदि शय्या वा आसनपर स्थित होय तो तत्काल उठकर उनको अभिवादन करै॥११९॥

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥

अवस्था और विद्या में बड़े के आनेपर थोड़ी अवस्थावाले युवा के प्राण मानो शरीरसे बाहर होने की इच्छा करते हैं अतएव आनेवाले बड़ी अवस्थावाले को प्रत्युत्थान अभिवादन करनेपर वह प्राण सुस्थ होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि-आयेहुए विद्या और अवस्था में बड़ेको अवश्य अभिवादन करै॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः॥ चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥ १२१ ॥

जो युवा वृद्धपुरुष के आने पर सदा प्रणाम, अभिवादन और उसकी सेवा करता है-उसकी परमायु, विद्या, यश और बल यह चारों अच्छी प्रकार से बढते हैं ॥ १२१॥

अभिवादात्परं विप्रोज्यायांसमभिवादयन्॥असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥ १२२ ॥

ब्राह्मणादि तीनों वर्ण जिस समय वृद्धको अभिवादन करैं उस समय अभिवादन के अनन्तर 'अभिवादये अमुकशर्माहमस्मीति'मैं अमुक अभिवादन करता हूँ, ऐसा कहकर अपना नाम उच्चारण करैं ॥ १२२ ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते॥ तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥ १२३

जिस पुरुष को अभिवादन करै, वह यदि संस्कृत नहीं जानता होय तो उस अभिवादन करनेयोग्य पुरुष को अभिवादन के अनन्तर, मैं अभिवादन करता हूँ, इतना ही कहै। और स्त्रियों से भी, मैं अभिवादन करता हूँ, ऐसा कहकर अभिवादन करै ॥ १२३ ॥

भोःशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने॥ नाम्नां स्वरूपभावोहि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः ॥ १२४ ॥

भो शब्द सम्बोधन का जतानेवाला है, इस कारण अभिवादन के "अनन्तर अभिवादये अमुकशर्माहमस्मीति भोः" ऐसा कहै॥१२४॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ १२५ ॥

अभिवादन के अनन्तर, जिसको अभिवादन करा है वह पुरुष, अभिवादन करने वाले ब्राह्मणादि तीनों वर्णों में से ब्राह्मण को 'आयुष्मान् भव सौम्य शुभशर्मन्' हे मियदर्शन ! शुभशर्मा ! तुम चिरञ्जीव होवो, ऐसा कहै। अभिवादन करनेवाले क्षत्रिय को 'आयुष्मान् भव सौम्य बलवर्मन्' और अभिवादन करनेवाले वैश्य को 'आयुष्मान् भव सौम्य वसुभूते' ऐसा कहै। परन्तु अभिवादन करनेवाले ब्राह्मण के नामके अन्त में अथवा अन्त के वर्ण के पहिले जो अकार आदि स्वर हो उसको प्लुत अर्थात् तनिमात्रा का उच्चारण करै। क्षत्रिय और वैश्य के नाम के अन्त के स्वर से पहिले स्वर को विकल्प से प्लुत बोले; शूद्र और स्त्री के नाम में प्लुत का उच्चारण न करै ॥ १२५ ॥

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥ नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥

जो अभिवादन करने योग्य पुरुष अभिवादन के समान प्रत्यभिवादन न जानता हो उसको अभिवादन में 'शुभशर्माहमास्मि भोः' इसप्रकार न करै किन्तु उसको शूद्रकी समान समझकर 'मैं अभिवादन करता हूँ' ऐसे बिना चरण पकड़े अभिवादन करै ॥ १२६ ॥

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२७ ॥

किसी स्थान से आयेहुए समान अवस्था वाले के वा छोटे अभिवादन न करने वाले भी, ब्राह्मण से कुशल शब्द कहकर, क्षत्रिय से अनामय शब्द कहकर, वैश्य से क्षेम शब्द कहकर और शूद्रसे आरोग्य शब्द कहकर मङ्गल बूझै ॥ १२७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्॥भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८ ॥

यज्ञ में दीक्षितहुआ पुरुष, यदि अवस्था में अपने से छोटा हो तो भी धर्मज्ञ पुरुष, उसका नाम न लेय किन्तु 'भो भवत्' शब्द लगाकर अर्थात् भोदीक्षित, भवन्दीक्षित, ऐसा कहकर भाषण करै ॥ १२८ ॥

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः ॥ तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ १२९ ॥

परस्त्री, वा जिन स्त्रियों से योनिसम्बन्ध न होय अर्थात् बुआ बहिन आदि न हो, उनको भवति ! सुभगे ! भगिनि! ऐसा कहकर बोले।

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो

गुरून् ॥ असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥

मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज्, गुरु यह यदि अवस्था में छोटे हों तबभी इनके आनेपर उठ कर 'असौ अहम्' यह मैं हूँ, ऐसा कहै ॥१३०॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा। संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया॥

माता और पिताकी बहिन, मामी और सास यह सब गुरुपत्नी की समान हैं। इसकारण गुरुपत्नी की समान उनका सत्कार करै १३१

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि। विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबन्धियोषितः

बड़े भ्राता की सवर्णा (अपने वर्ण की) स्त्री के प्रतिदिन चरण छुए। और परदेश से आकर गोत्र वालों की और सम्बन्धियों की बड़ी स्त्रियों के भी चरण छुए ॥ १३२ ॥

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि[1] मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी

पिता की और माता की बहिन के साथ तथा बड़ी बहिन के साथ माता का सा व्यवहार करै। परन्तु माता को उनसे बड़ी जाने १३३

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् । त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ १३४ ॥

एक पुर वा ग्राम में रहनेवालों में दशवर्ष बड़ा, गान आदि कला जाननेवालों में पाँच वर्ष बड़ा, विद्वान् ब्राह्मणों में तीन वर्ष बड़ा-और सपिण्डों में थोडे से काल बड़ा होनेपर भी सखा होता है अर्थात् इनमें छोटे बड़े का व्यवहार नहीं होता है ॥ १३४ ॥

१ अर्थात् मौसी बुआ और बड़ी बहिन की अपेक्षा माताकी आज्ञाको प्रबल समझै ॥

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ॥ पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥ १३५ ॥

दशवर्ष के ब्राह्मण और सौ वर्ष के क्षत्रिय को पिता पुत्र जाने अर्थात् उन दोनों में छोटा भी ब्राह्मण, पिताकी समान मान्य होता है॥१३५॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥ एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥

धन, बन्धु, आयु, शास्त्रोक्त कर्म और पांचवी विद्या यह मान्य होने के कारण हैं। इन पाँचों में पहिले १ से अगला २ अधिकता से मान्यता का कारण है ॥ १३६ ॥

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि[2] दशमीं गतः ॥ १३७ ॥

ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के धन आदि पाँचों में से जिसमें जितने अधिक गुण अधिकता से हों वह अधिक मान्य होगा। जैसे कि—धनी और सम्बन्धी, अधिक अवस्थावालेकी अपेक्षा अधिक मान्य होगा। और शूद्र दशमी अवस्था (९० वर्ष से अधिक अवस्था) का होने से ब्राह्मणादि का भी मान्य होगा ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥ स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ १३८ ॥

रथ आदि पर चढ़ाहुआ, ९० वर्ष से अधिक अवस्थावाला, रोगी, बोझी, स्त्री, गुरु के घर से लौटाहुआ ब्राह्मण, राजा और विवाहको

२ सौ वर्ष के दश भाग करने से दशवां दहाई दशमी अवस्था कहाती है। अतएव दशमी का अर्थ ९० वर्ष से अधिक करा है।

जाताहुआ वर, इनके निमित्त मार्ग छोड देना चाहिये ॥ १३८ ॥

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ॥ राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥ १३९ ॥

यह सब पूर्वोक्त पुरुष एक स्थान पर इकट्ठे हों तो स्नातक और राजा ही सब के मान्य होते हैं, राजा और स्नातक एक स्थान पर मिलैं तो स्नातक राजा का मान्य होता है ॥१३९॥

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

जो ब्राह्मण शिष्यको उपनयन देकर उसको यज्ञविद्या और उपनिषद्सहित समग्र वेदशास्त्र पढ़ावै उसको आचार्य कहते हैं॥१४०॥

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

जो आजीविका के लिये मन्त्रभाग और मन्त्रभागसे अन्य वेदके एकदेशको अथवा केवल व्याकरणादि वेदाङ्गको पढ़ाता है उसको उपाध्याय कहते हैं ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥

जो विधिके अनुसार गर्भाधानादि सकल संस्कारोंको करता है और अन्न से प्रतिपालन करता है वह विप्र गुरु कहाता है ॥ १४२ ॥

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान्॥यः करोति वृतोयस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ १४३ ॥

जो वरण कियाजाकर जिसकी ओर से अग्निस्थापन, पाकयज्ञ, और अग्निष्टोमादियज्ञकार्य करता है वह उसका ऋत्विक् (पुरोहित) कहाता है ॥ १४३ ॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन

जो यथार्थ वेदध्वनिसे दोनों कानोंको पूर्ण कर देता है वह माता और पिता कहाने योग्य है, उससे कभी द्रोह न करै ॥ १४४ ॥

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ॥ सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

दश उपाध्याय की अपेक्षा एक आचार्य, सौ आचार्य की अपेक्षा पिता गौरव में अधिक है। और पिता की अपेक्षा माता सहस्रगुणी अधिक मान्य है ॥ १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ १४६ ॥

उत्पन्न करनेवाला और वेदका उपदेश करनेवाला दोनों पिता शब्द से कहने योग्य है। इन दोनों में सकल वेदशाखाओं का उपदेशक आचार्य पिता ही अधिक मान्य है, क्योंकि-आचार्य पिता से जो जन्म, वह ब्रह्मप्राप्तिरूप फल के द्वारा इस लोक और परलोक में नित्य गिनाजाता है ॥ १४६ ॥

कामान्मातापिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते।

पिता और माता परस्पर कामवश होकर बालकको जो जन्म देते हैं। जिस जन्ममें पशु

१-जिसका समावर्त्तनसंस्कार अतिशीघ्र हुआ हो उसको स्नातक कहते हैं।

२ ब्रह्मचारी के धर्मवर्णन में पुरोहित के लक्षण कहना अनुपयुक्त होनेपर भी आचार्य आदि की समान पुरोहित की मान्यता दिखाने के लिये यहां कहा है।

आदिकी समान माताकी कोखमें शरीर मिलता है उस जन्ममें पशु आदिसे अधिक कुछ नहीं है॥

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः॥ उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ॥ १४८॥

वेदपारङ्गम आचार्य, विधिपूर्वक गायत्री-उपदेशसे जिस बालकके यथार्थ जन्मको उत्पन्न करता है, वह जन्म ब्रह्मप्राप्तिका कारण होनेसे अजर अमर है ॥ १४८ ॥

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥ तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥ १४९ ॥

जो उपाध्याय जिसका थोड़ा वा बहुत शास्त्र पढ़ाकर उपकार करता है, उसके तिस उपकारसे उसको भी गुरु जाने ॥ १४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता॥ बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥ १५० ॥

जो ब्राह्मण उपनयन देता है और वेदशास्त्र की व्याख्या करके स्वधर्मका प्रचार करता है, वह बालक होने परभी धर्मके अनुसार वृद्ध का भी पिता है; इसकारण उसका पिताकी समान सत्कार करै ॥ १५० ॥

अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः॥ पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥ १५१ ॥

अङ्गिरा के विद्वान् पुत्र ने बालक होनेपर भी अधिक अवस्थावाले चचा तथा उनके पुत्रों को ज्ञानबल से पढ़ाया और उनको हे पुत्रकाः ! ऐसा कहकर पुकारा ॥१५१॥

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः॥ देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥ १५२ ॥

पुत्र शब्द से पुकारेजाकर उन पितृव्य आदिकों ने क्रुद्ध होकर देवताओं से पुत्र शब्द का अर्थ बूझा। देवताओं ने इकट्ठे होकर उन से कहा कि–बालक ने जो तुम से कहा है सो उचित है ॥ १५२ ॥

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥ अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१५३॥

थोड़ी अवस्था वालेको ही बालक नहीं कहते हैं। अधिक अवस्थावाला मूर्ख भी बालक कहाता है, जो मन्त्र वा वेदशास्त्रका उपदेश देय वही पिता है। पण्डित लोग मूर्ख को बालक और मन्त्र देनेवाले को गुरु कहते हैं१५३

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः॥ ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १५४ ॥

न बहुत वर्षों से, न केश पकने से, न धनी होने से, और न बहुत कुटुम्बवाला होने से बड़ा है। किन्तु अङ्गसहित वेदपढानेवाला ही हम में बड़ा है, क्योंकि–वेदार्थ को जाननेवालों ने ही धर्म को स्थापन करा है ॥ १५४॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः । १५५ ॥

ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़प्पन, क्षत्रियों में वीर्य से बड़प्पन, वैश्यों में धनधान्य से बड़प्पन और केवल शूद्रों में अधिक अवस्था से बड़प्पन होता है ॥ १५५ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः॥ यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥ १५६ ॥

मस्तक के केश पकने से ही वृद्ध होजाय ऐसा नहीं है, किन्तु युवा होकरभी यदि विद्वान् होय तो देवता उसको वृद्ध कहते हैं ॥ १५६ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो-मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १५७ ॥

जैसे काठ का हाथी, जैसे चमड़े का मृग, तैसे ही जो वेद न पढाहुआ ब्राह्मण है, यह तीनों केवल नाम मात्र धारण करते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला॥ यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ १५८

जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल है, जैसे गौ गौ में निष्फल है, जैसे मूर्खको दिया हुआ दान निष्फल है तैसे ही वेदपाठरहित ब्राह्मण निष्फल है ॥ १५८ ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ॥ वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ १५९ ॥

धार्मिक अध्यापक, जिससे शिष्यों के चित्तों को दुःख न पहुँचै, इसप्रकार उनके मङ्गल के निमित्त ताडना करै, मधुर और प्रीतिकारक वचन कहै ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥ स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥

जिसके वाणी और मन पूर्ण शुद्ध हैं अर्थात् मिथ्या बातों से वाणी और राग-द्वेष से मन दूषित नहीं है, जिसके मन और वाक्य निषिद्ध विषय की ओर को कभी नहीं जाते, वह वेदशास्त्र में कहे सब फल को पाता है १६०

नारुन्तुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ॥ ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

कोई पुरुष अत्यन्त पीडित होनेपर भी किसीको मर्मघातकारी दोष न लगावै, जिससे किसी का अनिष्ट हो ऐसा कोई कर्म वा चिंतवन न करै, कि-बात कहने से दूसरे के मन को दुःख पहुँचै ऐसी मर्मपीडाकारी स्वर्गप्राप्ति की विरोधी बात को न कहै ॥ १६१ ॥

सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ॥ अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १६२ ॥

ब्राह्मण, सन्मान से सदा विष की समान घबड़ावै और सदा अमृत की समान समझकर अपमान को चाहै। अर्थात् मान, अपमान को समान जानै ॥ १६२ ॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥

जो इस लोकमें किसीके अपमान करनेसे खेद नहीं मानता है वह सुख से सोता है और सुख से ही जगता है और सुख से फिरता है। तथा अपमान करनेवाला उस पापसे नाश को प्राप्त होता है ॥ १६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः गुरौ वसन् संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः

जिसका आत्मा इसप्रकार क्रम करके जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत हुआ है वह द्विज वेद के ग्रहण करनेको गुरुकुल में बसताहुआ क्रम से ब्रह्मप्राप्ति के योग्य तपस्या करै १६४

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः ॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मनः

ब्राह्मणादि तीनों वर्ण सकल नियमरूप तपस्या के द्वारा और शास्त्र में कहे अनेकों व्रतों के द्वारा उपनिषद् और मन्त्रब्राह्मणरूप सकल वेद को पढ़ैं ॥ १६५ ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ॥

वेदाभ्यासोहि विप्रस्यतपःपरमिहोच्यते

जो उत्तम ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य तपस्या करैं वह सदा भलेप्रकार से जाननेको वेदकी आवृत्तिकरैं; क्योंकि-इस लोक में ब्राह्मणादि के वेदाभ्यासको ही मुनियोंने परम तपस्या कहाहै॥

आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ॥ यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ १६७ ॥

जो ब्राह्मणादि, ब्रह्मचारी को निषिद्ध पुष्पमालादि धारण करके भी प्रतिदिन यथाशक्ति वेद पढता है वह नख से लेकर मस्तकपर्यन्त सकल शरीर से परम तपस्या करता है ॥१६७॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥ स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

जो द्विज वेद को न पढकर और (अर्थशास्त्र आदि) में परिश्रम करता है वह मनुष्य जीवितदशा में ही सकुटुम्ब शीघ्र शूद्रभाव को प्राप्त होता है ॥ १६८ ॥

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने॥ तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ १६९ ॥

श्रुति में कहा है कि-ब्राह्मणादि तीनों वर्ण प्रथम माता से जन्मते हैं, उपनयन होने से उनका दूसरा जन्म होता है, और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ में दीक्षित होने पर तीसरा जन्म होता है ॥ १६९ ॥

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ १७० ॥

इन तीनों जन्मों में मेखलाधारण के चिह्न से युक्त उपनयन संस्कार के द्वारा जो जन्म होता है, तिस जन्म में उपनीत ब्रह्मचारी की माता गायत्री है और उपनयन देनेवाला आचार्य ही पिता है ॥ १७० ॥

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ॥ न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ॥ १७१ ॥

वेद देने के कारण आचार्य को पिता कहते हैं। क्योंकि-उपनयन से पहिले श्रौत, स्मार्त्त किसी कर्म का अधिकार नहीं होता है और आचार्य उपनयन दे, वेद पढाकर उन कर्मों का अधिकारी बनादेता है ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥ शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥

उपनयन से पहिले ब्राह्मणादि तीनों वर्ण श्राद्ध के मंत्रों के सिवाय और कुछ वेदपाठ नहीं करसक्ते, क्योंकि-यह उपनीत होकर वेदपाठके द्वारा दूसरा जन्म धारण करे बिना शूद्र की समान होते हैं ॥ १७२ ॥

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥ ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम्॥

दिनमें मत सो, समिधा ला इत्यादि व्रत की आज्ञा और शास्त्रोक्त क्रियापूर्वक क्रम से वेद का पढना उपनीत पुरुष को ही उपदेश करा है, इसकारण उपनयन से पहिले वेद का उच्चारण न करै ॥ १७३ ॥

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला ॥ यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ १७४ ॥

उपनयन के समय जिस ब्रह्मचारी को जो सूत्र, जो मेखला, जो दण्ड और जो वस्त्र विहित है उनको गोदान आदि व्रत में भी नवीन२ करै ॥ १७४ ॥

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ

वसेत् ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १७५ ॥

ब्रह्मचारी इन्द्रियों को वश में करके गुरुकुल में वास करताहुआ, अपनी तपस्या की वृद्धि करनेके लिये इन सब नियमों का पालन करै॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ १७६ ॥

प्रतिदिन स्नान करके शुद्धभाव से देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करै । विष्णु शिव आदि देवताओं को पूजै और दोनों संध्या में हवन करै ॥ १७६ ॥

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसां स्त्रियः ॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ १७७ ॥

मधु, मांस, गन्ध, फूलमाला, रस, स्त्रीसंसर्ग, और जो वस्तु स्वभाव से मधुर हैं और किसी कारण से खट्टी होजाती हैं इन सबों को तथा प्राणियों की हिंसा को त्यागै १७७

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्

जो तेल मस्तक में लगाने से सब शरीर में लगै उसको त्यागै । नेत्रों में अंजन न लगावै, जूती और छत्री से काम न लेय, विषय की अभिलाषा, क्रोध और लोभ को त्यागै तथा नाच, गीत और बाजे को त्यागै ॥ १७८ ॥

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥

फाँसों का खेल, लोकोंके साथ विवाद, पराये दोष कहना, झूठ बोलना, स्त्रियों को देखना वा आलिङ्गन करना और दूसरे का अनिष्ट करना त्यागदेय ॥ १७९ ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ॥ कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ १८० ॥

सर्वत्र अकेला सोवै, इच्छा से कहीं वीर्यपात न करै, क्योंकि--इच्छासे वीर्यपात करताहुआ अपने व्रत को नष्ट करता है ॥ १८० ॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ॥ स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ १८१ ॥

ब्रह्मचारी द्विज, यदि बिना इच्छाके स्वप्न में वीर्यपात करे तो वह स्नानकर गन्ध फूल आदिसे सूर्यका पूजन करके फिर 'पुनर्मामैतु इन्द्रियम्' इस मन्त्रको तीनवार जपै ॥१८१॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ॥ आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ १८२ ॥

जलका घड़ा, फूल, गोबर, मृत्तिका, कुशा यह जितने आचार्यको चाहिये उतने लावै तथा और भी कार्यके योग्य पदार्थ लाकर प्रतिदिन भिक्षा करनेको जाय ॥ १८२ ॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ॥ ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥

वेदमें कहे यज्ञादि करनेवाले और सदा अपने कर्म करने में प्रशंसनीय गृहस्थोंके घरोंसे प्रतिदिन ब्रह्मचारी पवित्रभावसे भिक्षा लावै॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥ अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ १८४ ॥

गुरुके कुलमें भिक्षा न करै, और ज्ञाति, कुल तथा बन्धुओंके घर भी भिक्षा न करै, यदि और कहीं न मिले तो इनमें से पहिले २ को छोड़कर अगले२के यहांसे भिक्षा लावै-अर्थात् पहिले मामाके यहां, तहां न मिलै तो ज्ञाति कुलमें, वहां भी न मिलै तो गुरुकुलमें भिक्षाकरै॥

सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ॥ नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥ १८५ ॥

यदि ग्राम में पूर्वोक्त वैदिककर्म करनेवाले न हों तो ब्रह्मचारी पवित्रभाव से मौन होकर सब ग्राम में भिक्षा माँगे, परन्तु महापातकियों को छोड़देय ॥ १८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ॥ सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥ १८६ ॥

ब्रह्मचारी दूर के वृक्ष में से समिधा लाकर कुटी के ऊपर वा किसी छएहुए स्थान में रक्खै और उनसे सायं प्रातःकाल निरालस होकर हवन करै ॥ १८६ ॥

अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ॥ अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ १८७ ॥

यदि ब्रह्मचारी नीरोग होकर क्रम से सात रात्रि भिक्षा के अन्न का भोजन और सायं प्रातःकाल को समिधा के काठ से हवन न करै तो उस के व्रत का लोप होजाता है। इसकारण वह अवकीर्णि प्रायश्चित्त करै ॥ १८७ ॥

भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ॥ भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ १८८ ॥

ब्रह्मचारी एक पुरुष का अन्न भोजन न करै किन्तु प्रतिदिन बहुत लोगों के घरों से भिक्षान्न इकट्ठा करके जीविका करै। क्योंकि–भिक्षान्न से ब्रह्मचारी की जीविका को ऋषियों ने उपवास की समान कहा है ॥ १८८ ॥

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ॥ काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते

ब्रह्मचारी देवता के निमित्त अथवा पितर आदि के निमित्त श्राद्ध में, श्राद्ध करनेवाले से निमंत्रित होकर मधु, मांस आदिरहित एक पुरुष का भोजन यदि यथेच्छ ग्रहण करै तो उसके व्रत का लोप नहीं होता है ॥ १८९ ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥

यह एक पुरुष के अन्न का नियमरूप कर्म मनुआदिकों ने केवल ब्राह्मण को ही कहा है। क्षत्रिय और वैश्यों को यह कर्म इसप्रकार नहीं कहा है ॥ १९० ॥

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ॥ कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च॥१९१

गुरु आज्ञा दें वा न दें, शिष्य प्रतिदिन वेद के पढने में और गुरु का हितकारी कार्य करने में यत्न करै ॥ १९१ ॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ १९२ ॥

शरीर, वाणी, बुद्धि, इन्द्रियें और मन को वश में करके शिष्य, हाथ जोड़हुए गुरुके मुख की ओर को देखताहुआ बैठा रहै, कुछ न बोलै ॥ १९२ ॥

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥ १९३ ॥

सदाचार शिष्य, वस्त्र से शरीर को ढककर, दुपट्टे में से दहिना हाथ निकालै। बैठ जा ऐसा कहने पर गुरु के सामने बैठे । १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्॥

गुरुके समीपमें सदा गुरुके भोजन वस्त्रादि से हीनभोजन, वस्त्र और भूषण धारण करै।

गुरुके उठनेसे पहिले उठै और उनके सोने से पीछे सोवै ॥ १९४ ॥

प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

सोकर वा बैठकर वा भोजन करते में अथवा खड़ा होकर वा पीठ फेरकर गुरुकी आज्ञाको ग्रहण वा गुरुसे भाषण न करै ॥ १९५ ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥ प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥ १९६ ॥

गुरु आसनपर बैठकर आज्ञा करैं तो शिष्य आसनपरसे उठकर; गुरु खड़े होकर आज्ञा करैं तो शिष्य उनके सन्मुख दो चार चरण बढ़ कर; गुरु आते हुए आज्ञा दें तो शिष्य उनके सम्मुख होकर,और गुरु वेगसे चलते हुए आज्ञा दें तो शिष्य उनके पीछे २ दौड़कर उनकी आज्ञाको ग्रहण करै और उनसे भाषण करै॥

पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ १९७ ॥

गुरु पीठ फेरे हुए आज्ञा करें तो शिष्य उनके सन्मुख होकर; गुरु दूर स्थित होकर आज्ञा दें तो शिष्य उनके समीप जाकर; गुरु लेटकर आज्ञा करें तो शिष्य हाथ जोड़कर ग्रहण करे । और गुरु समीप बैठहुए आज्ञा करें तो शिष्य नम्रभावसे सुनै और भाषण करै ॥ १९७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥

गुरुके समीपमें शिष्यकी शय्या और आसन सदा नीचा होय, और जब शिष्य गुरुकी दृष्टि के सामने बैठे तो उससमय पैर फैलाना आदि यथेष्ट व्यवहार न करै ॥ १९८ ॥

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥

शिष्य पीछे भी उपाध्याय, आचार्य आदि उपपदको छोड़कर गुरुका नाम न लेय। और हास्यकी बुद्धिसे गुरुकी चाल और बोलनेका अनुकरण (नकल) न करै ॥ १९९ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते॥ कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥

जहां गुरुका परीवाद (विद्यमान दोषका कथन) और निन्दा (अविद्यमान दोषका कथन) होय,शिष्य तहां होय तो हाथोंसे अपने दोनों कानोंको ढक लेय अथवा तहांसे दूसरे स्थानको उठजाय ॥ २०० ॥

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः॥ परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ २०१ ॥

शिष्य गुरुका परीवाद करने से जन्मान्तरमें गर्दभ होता है, निन्दा करने से कुत्ता होता है, अयोग्यरूपसे गुरु के धनको भोगनेवाला कृमि होता है और गुरु की प्रशंसा को न सहनेवाला कीट (कीड़ा) होता है ॥२०१॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः॥ यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥

शिष्य आप चलने में असमर्थ होनेपर दूसरे के द्वारा चन्दनादि से गुरुकी पूजा न करै, क्रोधमें भराहुआ वा स्त्रियों के समीप में बैठा हुआ गुरु का पूजन न करै और सवारी में वा आसनपर बैठा होतो नीचे उतरकर गुरुको अभिवादन करै ॥ २०२ ॥

प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ॥ असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्त्तयेत् ॥ २०३ ॥

प्रतिवात वा अनुवात में गुरुके साथ न बैठे। जहाँ बैठने पर गुरु कुछ सुन न सकें तहाँ गुरु के विषय की कोई बात न कहे ॥ २०३ ॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ॥ आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥

घोड़े वा ऊँट की सवारी में, महल, बड़े बिस्तर वा चटाईपर और शिला, काठके आसन वा नौका के ऊपर गुरु के साथ बैठे ॥ २०४ ॥

गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ न चानिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥ २०५ ॥

गुरु के गुरु समीप हों तो उनके साथ गुरु कासा व्यवहार करे। गुरु के घर रहताहुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा के बिना अपने माता पिता आदि गुरुजनों को अभिवादन न करे ॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्स्वपि ॥ २०६ ॥

विद्यागुरु, पिता, चचा आदि कुटुम्बी, अधर्म का निषेध करनेवाले और धर्मानुष्ठान का उपदेश करनेवालों के विषय में सदा गुरु की समान आचरण करे ॥ २०६ ॥

श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ॥ गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ २०७ ॥

विद्या और तपस्यायुक्त पुरुष, शिष्य को छोड़कर दूसरे अधिक अवस्थावाले समानजाति के पुरुष, गुरु के पुत्र और गुरुके पिता आदि बन्धुओं के साथ गुरुके सा आचरण करे ॥ २०७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति[1] ॥ २०८ ॥

बालक हो वा समान अवस्थावाला हो, ज्येष्ठ हो वा शिष्य हो, गुरुका पुत्र यदि वेद जाननेवाला होय तो वह पुरोहित के कार्य में नियुक्त होय वा न होय, यज्ञकार्यमें आनेपर गुरुकी समान माननीय होगा ॥ २०८ ॥

उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ॥ न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥ २०९ ॥

गुरुपुत्र के शरीरपर चन्दनादि का लेपन, उसको स्नान कराना, उसका जूठा खाना वा दोनों चरण धोना यह कार्य न करे ॥ २०९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः ॥ असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २१० ॥

गुरु की सकल सवर्ण स्त्रियें गुरुकी समान पूजनीय होंगी। परन्तु–असवर्णा स्त्री, प्रत्युत्थान से और चरणस्पर्श को छोड़कर केवल अभिवादन से पूजीजायँगी ॥ २१० ॥

अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च ॥ गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ २११ ॥

गुरुपत्नी के शरीर पर तेल न मले, उसको स्नान न करावे, शरीर पर सुगन्धि के पदार्थ न लगावे और उसके केशों का संस्कार भी न करे ॥ २११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥

अभिवादन के दोष-गुणों को जाननेवाला युवा शिष्य, युवति गुरुपत्नी के दोनों चरण

१ जिसप्रकार बैठने से गुरु के ओर की पवन शिष्य की ओर को आवे उसको प्रतिवात कहते हैं।

२ जिसप्रकार बैठने से शिष्यके ओर की पवन गुरु की ओर को जाय उसको अनुवात कहते हैं।

छूकर अभिवादन न करे, किन्तु भूमिपर ही अभिवादन करे ॥ २१२ ॥

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥ अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ २१३ ॥

इस लोकमें मनुष्योंको दूषित करना ही स्त्रियों का स्वभाव है। इसकारण पण्डित स्त्रियोंके विषयमें कभी असावधान न रहें॥२१३

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥ प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ २१४ ॥

इस लोक में कोई पुरुष, मैं विद्वान् और जितेन्द्रिय हूँ ऐसा समझकर स्त्रियों के समीप न रहै; क्योंकि विद्वान् हो, वा अविद्वान् हो, देहधर्म के कारण काम क्रोध के वश में हुए पुरुषों को स्त्रियें अनायास ही कुमार्गगामी करसक्ती हैं ॥ २१४ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ २१५ ॥

माता, बहिन और कन्या आदि के साथ भी पुरुष निराले घर में न बैठे, क्योंकि–इन्द्रियें बड़ी बलवान् हैं, ज्ञानवान् पुरुष को भी खैंचती हैं ॥ २१५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ॥ विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥ २१६ ॥

युवा शिष्य, युवति गुरुपत्नी के चरण न छूकर भूमि में विधि के अनुसार 'मैं अमुक आपको अभिवादन करता हूँ' ऐसा कहकर इच्छा होय तो अभिवादन करे ॥ २१६ ॥

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम्॥ गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन्॥२१७

युवा शिष्य परदेश से आकर, शिष्टों के आचार व्यवहार को स्मरण करके पहिले दिन पूर्वोक्त विधिसे, अधिक अवस्थावाली गुरुपत्नी का वाम चरण वाम हाथसे और दाहिना चरण दाहिने हाथसे स्पर्श करै।परन्तु फिर प्रतिदिन उन को भूमि पर ही अभिवादन करै ॥ २१७ ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति॥ तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥

जैसे कोई मनुष्य कुदाल से खोदते २ क्रम से जल पाता है। तैसे ही सेवा में तत्पर शिष्य क्रम से गुरु की सब विद्याओं को पावै२१८

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ॥ नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत् सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित् ॥ २१९ ॥

मस्तक का मुण्डन करानेवाला, सब जटा रखनेवाला वा सब मुण्डन कराकर बीच में शिखा रखनेवाला ब्रह्मचारी सूर्योदय के समय वा सूर्यास्त के समय कभी न सोवै ॥ २१९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः॥ निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम्॥

यदि उसके आलस्यमें पडकर सोतेमें सूर्य का उदय होजाय तो सारे दिन गायत्री का जप करताहुआ उपवास करै। और अज्ञानवश सोते हुए सूर्यास्त होजाय तो रात्रि में वा दूसरे दिन जप करताहुआ उपवास करै ॥ २२० ॥

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा

जिसके सोते ही में सूर्य का उदय वा अस्त होजाय वह यदि प्रायश्चित्त न करे तो महापाप से लिप्त होकर नरक में पड़ता है ॥ २२१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥ २२२ ॥

अतएव दोनों काल की सन्ध्या के समय, आचमनादि के अनन्तर सावधान होकर विधिपूर्वक स्वच्छ स्थानमें एकचित्त होकर गायत्री का जप करताहुआ सन्ध्योपासन करै ॥२२२॥

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत् । तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र चास्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥

स्त्री वा शूद्र जो कुछ मङ्गलकर्म करैं, ब्रह्मचारी उद्योगी होकर उन सबको भी करै वा जिसमें उसके मनकी रुचि हो । वह भी करै ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च । अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः

कोई धर्म और अर्थ को काम का हेतु होनेसे श्रेय कहते हैं, कोई अर्थ और काम को सुख का हेतु होने से श्रेय कहते हैं, कोई धर्म का ही अर्थ और काम का हेतु होनेसे श्रेय कहते हैं, कोई अर्थ को धर्म और काम का हेतु होने से श्रेय कहते हैं, परन्तु मनुजी धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को ही पुरुषार्थरूप से श्रेय कहते हैं; भोगकी इच्छावाले को श्रेय पदार्थ का उपदेश है और मुमुक्षु तो मोक्ष को ही श्रेय जानै।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्त्तिरात्मनः ॥ २२५ ॥

आचार्य ब्रह्मकी मूर्त्ति है, पिता प्रजापति की मूर्त्ति है, माता पृथिवी की मूर्त्ति है और भ्राता साक्षात् अपनी दूसरी मूर्त्ति है, अतः इनका अपमान न करै ॥ २५५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः । नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २२६ ॥

आचार्य, माता, पिता और बड़ा भाई इन से पीड़ित होनेपरभी कोई पुरुष और विशेष करके ब्राह्मण, उनका अपमान न करै ॥२२६॥

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

सन्तान को उत्पन्न करने में माता पिता जिस क्लेश को सहते हैं, उसका निवटारा पुत्र सैकड़ों वर्ष में भी नहीं करसक्ता ॥२२७॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा । तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥

नित्य तिन माता पिता का और आचार्य का भी सदा प्रिय करै, क्योंकि-इन तीनों के प्रसन्न होनेपर सब तपस्या का फल मिलता है ॥ २२८ ॥

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥

तिन तीनों की शुश्रूषा ही परम तप कहाता है अर्थात् इनकी सेवा से ही सकल तप का फल मिलता है । यदि और कुछ धर्मानुष्ठान करने की इच्छा होय तो इनकी आज्ञाके विना न करै ॥ २२९ ॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः । त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥

माता, पिता और आचार्य यह तीनों ही त्रिलोकी की प्राप्ति के हेतु हैं, यह तीनों ही ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की प्राप्ति के हेतु हैं, यह ही तीनों वेदोंके अध्ययन का फल देते हैं और यह ही दक्षिणाग्नि आदि तीन अग्नियोंके द्वारा होनेवाले यज्ञादि कर्मोंका फल देते हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २३१ ॥

पिता ही गार्हपत्य अग्नि है,माता ही दक्षि-

णाग्नि है और आचार्य ही आहवनीय अग्नि है। यह तीनों अग्नि ही सबसे मान्य हैं २३१

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषुत्रींल्लोकान्विजयेद्गृही। दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते॥

इन तीनों की सेवा में प्रमाद न करनेवाला गृहस्थी त्रिलोकी को जीतलेता है और अपने शरीर से प्रकाशवान् होताहुआ स्वर्ग में देवताओं की समान आनन्द करता है ॥२३२॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ॥ गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥

मनुष्य, माता की भक्ति से इस लोकमें परम सुख भोगता है, पिता की भक्ति से स्वर्ग में जाता है और आचार्य की भक्ति से ब्रह्मलोक पाता है ॥ २३३ ॥

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः॥अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ २३४ ॥

जिसने माता, पिता और आचार्य इन तीनों का आदर करा उसने सब धर्मों का आदर करलिया। और जिसने इन तीनोंका आदर नहीं करा उसकी श्रौत स्मार्त्त सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ २३४ ॥

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः

जबतक माता, पिता और आचार्य यह तीनों जीते रहैं तबतक और कोई धर्म न करै। नित्य उनके ही प्रिय कार्यमें तत्पर होकर उनकी ही सेवा करै ॥ २३५ ॥

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ॥ तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥

उनकी सेवा शुश्रूषामें त्रुटि न करके शरीर, मन,वाणीसे परलोकका साधन जो कुछ धर्म कर्म करै वह उनको निवेदन करदेय ॥२३६॥

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते एष धर्मः परःसाक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

इन तीनोंकी उत्तमरूपसे सेवा करनेपर पुरुष का करने योग्य सब श्रौत स्मार्त्त कर्म समाप्त होता है, यही परमधर्म और सब उपधर्म है॥

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि॥ अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि

मनुष्य, शूद्रसे भी उत्तम विद्या (सर्पमन्त्र आदि) को श्रद्धाके साथ ग्रहण करै । पूर्वजन्म के योगाभ्यासी चाण्डाल आदि नीच जाति से भी मोक्षके उपाय आत्मज्ञान आदि उत्तम धर्मको ग्रहण करै । अपनेसे नीचे कुलसे भी उत्तम स्त्रीको ग्रहण करै ॥ २३८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥ अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ २३९ ॥

अमृत मिले विषमें से भी विष हटाकर अमृत लेलेय, बालकसे भी हितकारी वचन ग्रहण करै, शत्रुसे भी सदाचरण ग्रहण करै। और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण आदि द्रव्य को ग्रहण करै ॥ २३९ ॥

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ २४० ॥

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, हितकारी बात और नानाप्रकारकी कारीगरी सबसे ग्रहण करलेय ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी, ब्राह्मण अध्यापकके न

१ अर्थात् इन तीनोंकी सेवारूप धर्म राजाकी समान साक्षात् धर्म है और इसके सिवाय और सब राजाके ड्यौढीवान की समान उपधर्म हैं।

मिलनेपर, अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मणभिन्न द्विजसे पढ़सक्ता है और जबतक इस गुरुके पास पढ़े तबतक चरण धोने आदिके सिवाय पीछे२ चलना आदि शुश्रूषा भी करे और विद्याप्राप्त करलेने पर यह शिष्य फिर इन अध्यापक क्षत्रिय वैश्योंका गुरु होता है, ऐसा समझे ॥ २४१ ॥

नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् । ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम् ॥ २४२ ॥

जो ब्रह्मचर्य धारण करके मोक्ष पाना चाहै वह क्षत्रियादि गुरु और अङ्गोंसहित वेदको न जाननेवाले गुरुके यहां जीवनभर वास न करे, क्योंकि–उनसे मुक्ति मिलनेकी आशा नहीं है ॥ २४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥ २४३ ॥

यदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी होय अर्थात् गुरुके यहां चिरकाल रहना चाहै तो गुरुकुल में बसताहुआ परमयत्नके साथ जीवनभर गुरु की शुश्रूषा करै ॥ २४३ ॥

आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । सगच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य जीवनभर गुरुकी शुश्रूषा करते हैं वह निःसन्देह अविनाशी ब्रह्म में लीन होते हैं ॥ २४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् । स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत ॥

धर्मज्ञ शिष्य व्रत के अन्त में अपने घरको लौटने से पहिले गौ वस्त्र आदि देकर गुरु का कुछ उपकार न करै । जब गुरुकी आज्ञा से व्रताङ्ग स्नान करे तब गुरुको यथाशक्ति दक्षिणा देय ॥ २४५ ॥

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् । धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥

शिष्य यथाशक्ति खेत, सुवर्णादि, गौ, घोडा, छत्र, चर्मपादुका, आसन, धान्य, शाक, वस्त्र, जो कुछ होय गुरु को देकर प्रसन्न करे॥

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्य का मरण होनेपर विद्यादिगुणयुक्त गुरुपुत्र की वा गुरुपत्नी की अथवा गुरुके सपिण्डों की क्रम से गुरु की समान शुश्रूषा करै ॥ २४७ ॥

एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् । प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥

गुरुपुत्र, गुरुपत्नी वा गुरुके सपिण्ड इनमें किसीके भी न रहने पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्यके अग्निमन्दिरमें बसने बैठने आदि के द्वारा और सायं प्रातःकाल समिधोंका हवन करके अग्निकी शुश्रूषा करता हुआ अपनी आत्माको ब्रह्मप्राप्तिके योग्य करै ॥२४८॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । सगच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी इसप्रकार अविचलरूप से अपने व्रतका अनुष्ठान करता है वह ब्रह्ममें लीन होता है और पुरातन कर्मोंके लिये इस लोकमें जन्म नहीं धारता ॥ २४९ ॥

इति श्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहितो द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् । तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥

ब्रह्मचारी गुरुकुलमें बसताहुआ छत्तीस वर्ष पर्यंत ऋक्, यजुः, साम इनतीन वेदोंका पढनारूप व्रत धारण करै, अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाओं को बारह२ वर्षपर्यन्त पढै या अठारहवर्ष तीनों वेदों को पढै अर्थात् तीनोंवेदोंकी शाखाओं को छः २ वर्ष पढै, अथवा नौ वर्षतक तीनों वेदोंका अभ्यास करै। अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाओंको तीन २ वर्ष पढै अथवा जितने समयतक जो इन तीनों वेदों को पढसकै तब तक गुरु के घर रहकर पढै ॥ १ ॥

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

स्नातक[१] ब्रह्मचारी अपने धर्म में बाधा न डालकर क्रमसे अपने वेद के सिवाय अन्य वेदों की तीनशाखा वा दो शाखा अथवा एकही शाखाको पढ स्त्री को ग्रहण करके गृहस्थाश्रम में बसै ॥ २ ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा॥३

अपने धर्म के आचरण से अच्छी प्रसिद्धि को प्राप्त, पिता वा गुरु से वेद पढ़ाहुआ, माला से शोभित, उत्तम आसन पर बैठाहुआ ऐसे ब्रह्मचारी को विवाह से पहिले गौ देकर पिता वा आचार्य पूजै ॥ ३ ॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ॥ उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

गुरुके आज्ञा देनेपर समावर्तनके अनन्तर विधिपूर्वक व्रताङ्ग स्नानको समाप्त करके वह द्विज, श्रेष्ठ लक्षणोंवाली सवर्णा स्त्रीसे विवाह करै॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥

माताकी सपिण्डा अर्थात् सात पुरुषपर्यंत, नाना आदिके वंशकी न हो और नानाकी चौदह पुरुष तककी सगोत्रा न हो तथा पिता की सगोत्रा वा सपिण्डा न हो अर्थात् बुआ आदिकी सन्तानसे न हो, ऐसी स्त्री को ही द्विज के विवाहयोग्य जाने ॥ ५ ॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥

गौ, भेड़, बकरी और धनधान्य के द्वारा अतिसम्पत्तिमान् और उच्चवंश के होनेपर भी विवाह के विषय में इन आगे कहे दश कुलोंको त्यागदेय ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥

जातकर्मादि संस्कारहीन, केवल कन्यामात्र उत्पन्न करनेवाला, वेदाध्ययनरहित, सकल अङ्ग में रोमयुक्त, बवासीर, क्षयी, मन्दाग्नि, अपस्मार, श्वेतकुष्ठ वा और किसीप्रकार के कुष्ठ से युक्त, इन सब प्रत्यक्ष दोषों से युक्त दश कुलों में विवाह न करै ॥ ७ ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ॥ नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ८ ॥

जिस स्त्री के शिरपर के केश पिङ्गलवर्ण हों, जिसके छह अङ्गुलि आदि अधिक अङ्ग हों, जो बहुतकाल की रोगी हो, जिसके

१ स्नातक तीन प्रकार का होता है–विद्यास्नातक, व्रतस्नातक, और विद्याव्रतस्नातक; जो व्रतको समाप्त विना करेही वेद को समाप्त करके लौटता है उसको विद्यास्नातक कहते हैं। जो वेदको समाप्त न करके व्रतकोही समाप्त करके लौटता है उस को व्रतस्नातक कहते हैं। और जो विद्या और व्रत दोनों को समाप्त करके लौटता है उसको विद्याव्रतस्नातक कहते हैं।

शरीर पर थोड़े भी लोम न हों वा अधिक लोम हों, जो कठोरभाषिणी हो, जिसके पिङ्गलवर्ण के नेत्र हों ऐसी स्त्रीसे विवाह न करै॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्। न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्

नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, सर्प और दास के नाम पर जिस स्त्री का नाम हो उसके साथ अथवा जिसका अतिभयानक नाम हो उसके साथ भी विवाह न करै ॥ ९ ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

परन्तु जो स्त्री अङ्गहीन न हो, जिसका नाम अतिसुख से उच्चारण कराजाय, हंस और हाथी के सी जिसकी मनोहर चाल हो, जिसके रोम कोमल तथा दाँत छोटे हों ऐसी कोमलाङ्गी स्त्री से विवाह करै ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया

जिस कन्या के भ्राता न हो बुद्धिमान् पुरुष उसको पुत्रिका अर्थात् इस कन्या के पहिले गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र के द्वारा उस कन्या के पिता का सापिण्डन आदि होगा ऐसा समझकर उससे विवाह न करै, और जिसका पिता विशेषरूप से मालूम न हो उसको जार से उत्पन्नहुई के धोखे से अधर्म की शङ्का करके उसके साथ विवाह न करै११

सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के प्रथम विवाह में सवर्णा स्त्री ही प्रशंसनीय है परन्तु कामवश विवाह करने में प्रवृत्त होनेपर आगे कहीहुई स्त्रियें श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ॥ ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥

शूद्र केवल शूद्रा से ही विवाह करै, वैश्य वैश्या और शूद्रा से विवाह करै, क्षत्रिय-क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रासे विवाह करे तथा ब्राह्मण ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा इन चारों जातियों से विवाह करै ॥ १३ ॥

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः। कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ १४ ॥

इतिहास आदि किसी वृत्तान्त में गृहस्थ ब्राह्मण और क्षत्रियादि को विपत्तिकाल में भी शूद्रा भार्या को ग्रहण करने का उपदेश नहीं है ।

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य मोहवश यदि हीन जाति की स्त्री से विवाह करलें तो उनसे उस स्त्री के विषै उत्पन्नहुए पुत्र पौत्रादि के साथ अपना२ वंश शूद्रभावको प्राप्त होता है॥१५॥

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः

अत्रि और गौतममुनि के मत में शूद्रा स्त्री से विवाह करने पर भी ब्राह्मणादि पतित होते हैं । शौनक कहते हैं कि-शूद्रा से विवाह करके उसमें सन्तान उत्पन्न करने से पतित होता है । भृगु कहते हैं कि-शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्नहुई सन्तान के सन्तान होने पर पतित होता है ॥ १६ ॥

१ पहिले श्लोक में कहेहुए मतमें अनुलोमक्रम से ब्राह्मणादि शूद्रा से विवाह करसक्ते हैं और इस वचन से प्रतिलोम क्रम करके शूद्रा के साथ विवाह का निषेध करा है।

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ १७ ॥

शूद्रा के साथ भोग करके ब्राह्मण नरक को जाता है और उसमें पुत्र उत्पन्न करके ब्राह्मणपन से ही रहित होजाता है ॥ १७ ॥

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु ॥ नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति

दैवहोम आदि और पित्र्यश्राद्ध आदि तथा आतिथ्य अतिथिभोजन आदि इनको जिस के शूद्रा करती है उस हव्य और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाता है ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥

शूद्रा का ओठ चुंबन करने से और उसके मुख की भाफ लगने से और उसीमें संतति उत्पन्न करनेवाले की शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ २० ॥

ब्राह्मण आदि चारोंवर्णों के कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आगे कहते हैं ऐसे आठ विवाहों को संक्षेप से सुनिये २०

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

उन आठोंके नाम कहते हैं, जैसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गान्धर्व ६ राक्षस ७ और आठवाँ सबोंसे अधम पैशाच ८

यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ । तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥

जो विवाह जिस वर्ण का धर्मसम्बन्धी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाई बुराईको और उन उन विवाहों से उत्पन्न संततिमें जो गुणदोष हैं तिनको सुनिये ॥ २२ ॥

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥ विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥ २३ ॥

ब्राह्मण को क्रम से ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ ये ६ विवाह धर्म्य (धर्मयुक्त) हैं और क्षत्रिय को आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये ४ विवाह धर्म्य हैं, और वैश्य तथा शूद्र के भी वेही असुर गांधर्व पैशाच ३ जानिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥

ब्राह्मण के ब्राह्म आदि चार और क्षत्रिय के एक राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके आसुर इन विवाहोंको जाननेवाले श्रेष्ठ जानते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ॥

प्राजापत्य आदि पाँच विवाहों में प्राजापत्य, गांधर्व और राक्षस ये तीन विवाह धर्मसंबंधी हैं, दो धर्मसम्बन्धी नहीं हैं, पैशाच और आसुर ये दो कभी करने योग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥

पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

पृथक् २ अथवा मिलेहुए पहले कहेहुए गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षत्रिय को धर्म के अनुसार मनु आदिकों ने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

विद्या और आचारयुक्त वर को लायकर

उत्तम वस्त्रों और अलङ्कारों से कन्या तथा वर को भूषितकर वर के लिये जो दान किया जाता है उसको मनु आदि ब्राह्मविवाह कहते हैं ॥ २७ ॥

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते। अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥२८॥

ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ के आरम्भ होने में अच्छे प्रकार से कर्म करतेहुए ऋत्विज् के लिये वस्त्र आभूषणों से शोभितकर जो कन्या का देना है उसको मुनीश्वर दैवविवाह कहते हैं

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः। कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥

एक गौ और एक बैल ऐसे गौओं का एक जोड़ा अथवा दो जोड़े वरसे यज्ञ आदि की सिद्धि के लिये अथवा कन्या के देने के लिये लेकर शास्त्र के अनुसार जो कन्यादान किया जाता है उसको आर्षविवाह कहते हैं२९॥

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ३० ॥

तुम दोनों मिलकर धर्म क्रिया करो ऐसे कन्यादान के समय पहले नियम करके पूजनकर जो कन्यादान किया जाता है उस को प्राजापत्य विवाह कहते हैं ॥ १० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः। कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते॥

कन्या के पिता आदि को अथवा कन्या को यथाशक्ति धन देकर जो अपनी इच्छा से कन्या का लेना है उसको आसुरविवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः॥

कन्या और वर की आपस की प्रीति से जो परस्पर आलिङ्गन आदिरूप मिलना है उसको गान्धर्व विवाह कहते हैं ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३३ ॥

बलात्कार से कन्या का हरलेना राक्षस विवाह का यही लक्षण है, कन्या के पक्षवालों को मारकर और उनके अङ्गों को काटकर और परकोटा आदि को तोडकर हाय पिता, हाय भाई, अनाथ मैं हरी जाती हूँ ऐसे कहती हुई और आँसुओं को छोड़तीहुई कन्या को जो उसके घरसे हरलेता है उसको राक्षसविवाह कहते हैं इससे कन्या की अनिच्छा प्रकट होती है ॥ ३३ ॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति। स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

सोतीहुई को, मद से व्याकुल को और शील की रक्षा से रहित को एकान्त स्थान में जो विषय की इच्छा से प्रवृत्त होता है उस पापमूल विवाह को सब विवाहों में अधम पैशाचविवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते। इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणों को जलदानपूर्वक ही कन्यादान करना उत्तम है और क्षत्रिय आदि अन्यवर्णों को जल के विनाभी आपस की इच्छा से वाणीमात्र से भी कन्यादान होता है ॥३५॥

यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः। सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक्कीर्तयतो मम॥

इन विवाहों में जिस का जो गुण मनु ने कहा है वह सब हे ब्राह्मणो कहतेहुए मुझ से

सुनो, यह भृगु ने ब्राह्मणों से कहा॥ ३६॥

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन्॥

ब्राह्मविवाह में व्याहीहुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र जो शुभकर्म करनेवाला होय तो पिता आदिकों को नरकसे निकाललेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते हैं॥ ३७॥

दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान्॥
आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः॥ ३८॥

दैव विवाह में व्याही हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र पिता आदि सात पीढ़ी पहली और पुत्र आदि सातपीढ़ी पिछली और आर्षविवाह में व्याही हुई का पुत्र तीनपीढ़ी पहली और तीन पिछली और प्राजापत्य में व्याहीहुई का पुत्र छै पीढ़ी पहली और छै पिछली को और आपको पाप से छुड़ाता है॥ ३८॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः॥
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः॥

ब्राह्म आदि चार विवाहों में श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजसेयुक्त और शिष्टों के प्यारे पुत्र उत्पन्न होते हैं॥ ३९॥

रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः॥
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥

रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान् यशस्वी और अपनी इच्छा से वस्त्र माला गंधलेप आदि से शोभित धर्मात्मा और सौ वर्ष की आयुष्य तक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं४०॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः॥
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥

और ब्राह्म आदि चार विवाहों से अन्य आसुर आदि चारों में क्रूरकर्म करनेवाले, मिथ्यावादी, वेद से द्वेष करनेवाले यज्ञ आदि धर्मों से द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं४१

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा। निन्दितैर्निन्दिता नॄणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥ ४२॥

स्त्री की प्राप्ति के कारण जो अच्छे विवाह हैं उनसे पुरुष के संतान भी अच्छी होती है और निंदित विवाहों से प्रजाभी निन्दित होती है तिससे निंदित विवाहोंका त्याग करै॥४२॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते॥
असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि॥

पाणिग्रहण संस्कार कहिये हाथ पकड़ने की विधि समानजाति कन्या के विवाह में किया जाता है और अन्य वर्ण की कन्या के विवाह में आगे के श्लोक में कहीहुई विधि जानिये॥

शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया॥
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने॥

ऊंची जातिके पुरुष के साथ व्याहमें क्षत्रिया कन्याको पाणिग्रहण के स्थानमें ब्राह्मणके विवाह में ब्राह्मण के हाथ में पकडेहुए तीरका एक भाग ग्रहण करने योग्य है और वैश्या स्त्री का ब्राह्मण क्षत्रिय के विवाह में ब्राह्मण क्षत्रिय करके पकडे हुए चाबुक का एक सिरा पकड़ना चाहिये और शूद्रा स्त्रीको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिपटे हुए कपड़ेकी बत्ती ग्रहण करनी चाहिये॥ ४४॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ४५

रुधिर के दर्शन से जानेगये गर्भ रहने के समय को ऋतुकाल कहते हैं उस में स्त्रीसे पुत्र की प्राप्ति के लिये भोग करै औ अपनी स्त्री में सदा संतुष्ट रहै और पूर्व जो अमावस्या आदि पर्वकाल कहे हैं तिनको छोड़कर भार्या से प्रीति करनेवाला पुरुष ऋतुकालसे भिन्नकाल में भी रतिकी कामना से गमन करै, पुत्र उत्प-

न करनेकी बुद्धि से नहीं ॥ ४५ ॥

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ॥ चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥

सज्जनों करके निंदित रुधिर दीखनेके चार दिनों समेत स्त्रियों के सोलह रातदिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है, रोग आदि से न्यूनाधिक भी होजाता है ॥ ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ॥ त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७

फिर उनसोलह रातदिनों में रुधिर दर्शनसे लगाकरके पहले चार रात्रि दिन और एकादशी तथा तेरस गमन में निंदित हैं और शेष दश रात्रियां उत्तम हैं ॥ ४७ ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥

पहले कही हुई दश तिथियों में युग्म कहिये षष्ठी और अष्टमी आदि रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होते हैं तिससे पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्मरात्रियों में ऋतुके समय स्त्री से गमन करै ॥ ४८ ॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥ ४९ ॥

पुरुष का वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रि में भी पुत्रही होता है और स्त्रीका वीर्य अधिक होने से युग्ममें भी कन्या ही होती है और दोनों का वीर्य बराबर होने से नपुंसक होय अथवा जोड़िया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होंय अथवा दोनों का वीर्य क्षीण अथवा थोडा होयतौ गर्भ का संभव होय अर्थात् गर्भ न रहै ॥ ४९ ॥

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

पहले कही ऋतुकाल की निंद्य छै रात्रियों से और अन्य अनिंद्य जिन किन्ही आठ रात्रियोंमें भी स्त्रीको त्यागता हुआ बाकी पर्वकी दो रात्रियों को छोड गमन करनेवाला जिस किसी आश्रम में वसताहुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्य व्रत को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ॥ गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥

धन लेनेके दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादान के निमित्त थोडाभी धन न ले, जो लोभ से ले तौ संतानका बेंचनेवाला होय॥५१

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥

पति, पिता, भ्राता आदि जो बांधव स्त्री, पुत्री आदिका धन और नारी के वाहन अश्व आदि को और वस्त्रोंको ले लेते हैं वे पाप करनेवाले नरक को जाते हैं तिससे स्त्रीधन किसी को न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ॥ अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥ ५३ ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि आर्षविवाह में वर से गौका जोडा लेना चाहिये वह झूठही है जिससे थोडा होय अथवा बहुत होय वह वेचना ही है ॥ ५३ ॥

यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः॥ अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

जिन कन्याओंका वरकरके प्रीतिसे दियाहुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देतेहैं वहभी वेचना नहीं है जिससे कुमारियोंका

पूजन केवल दयारूप है ॥ ५४ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥

केवल विवाहकाल ही में वरका दिया हुआ धन कन्याको देना चाहिये किंतु उसके पीछेभी पिता आदि करके कन्या भोजन आदिसे पूजन योग्य हैं और बहुत धनआदि संपत्ति के चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको वस्त्र अलंकार आदिसे भूषित करने योग्य भी हैं ॥ ५५ ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ।

जिस कुल में पिता आदि करके स्त्री पूजी जाती है वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहाँ देवताओं की प्रसन्नता न होने से सब यज्ञादिक्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । नशोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७॥

जिस कुल में बहिन, स्त्री, पुत्री और पुत्रकी बहू आदि दुखी होती है वह कुल शीघ्रही निर्धन होजाता है और देवता तथा राजा आदि करके पीड़ित होता है और जहाँ ये नहीं शोचती हैं वह धनआदि से सदा वृद्धि को प्राप्त होता है॥ ५७॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः। तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः

भगिनी, पत्नी, बेटी, बहू ये दुःखी हो जिन घरों को कोसती हैं वे घर कृत्या जो अभिचार है तिस करके नाश किये की समान धन पशु आदि समेत नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५८॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

तिससे ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीत आदि उत्सवों में समृद्धि चाहनेवाले पुरुषों करके सदा पूजने योग्य हैं ॥ ५९ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

जिस कुल में स्त्री से पुरुष प्रसन्न रहता है अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा नहीं करता है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुल में चिरकाल पर्यंत कल्याण रहता है ॥ ६० ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् । अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ ६१ ॥

जो स्त्री वस्त्र-आभरण आदिकों से शोभित न होय और अपने स्वामी को प्रसन्न न करै तौ फिर पुरुष के प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नहीं होता है ॥ ६१ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्। तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते

भूषण आदि से स्त्री के कांतिमती होनेपर पति के स्नेहसे परपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुलप्रकाशमान् होताहै और उसके न शोभित होनेपर भर्त्ताके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन होजाता है ६२

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्यापनेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥

आसुर आदि बुरे विवाहों से और जातकर्म आदि संस्कार क्रियाओं के लोपसे और वेदके न पढ़ाने से और ब्राह्मणका पूजन न करने से प्रसिद्ध कुलभी हीन होजाते हैं ॥ ६३ ॥

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया॥

चित्र खींचना आदि शिल्प से और ब्याज के लिये धनके व्यवहार से और केवल शूद्रोंमें उत्पन्न पुत्रसे और गौ, घोड़ा, रथके बेचने से, खेती करने से, राजा की नौकरी करनेसे कुलों का नाश होजाता है ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम्। कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥

अयाज्य जो हैं व्रात्यआदि तिनको यजन कराने से और श्रौत स्मार्त्त कर्मों के न मानने से और वेदके मंत्रों करके हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश होजाते हैं ॥ ६५ ॥

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः॥

यद्यपि धनसे कुल होते हैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपर भी थोड़े धनवाले भी कुल वेदके पढ़ने और उसके अर्थको जानने से ऊँच कुलोंकी गणना में गिनेजाते हैं और बड़ी भारी प्रसिद्धि पाते हैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही॥

वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल का गृह्य में कहा हुआ होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक और पंचयज्ञोंमें से प्रतिदिन करने योग्य वलिवैश्वदेव आदिको और नित्य के पाकको भी गृहस्थ उसी अग्निमें करै॥६७॥

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥

गृहस्थके ये पांच हिंसा के स्थान हैं—चूल्हा १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मूसल ४ जलका घट ५ इनको अपने काममें लाता हुआ पुरुष पापों करके युक्त होता है ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च कॢप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

उन चूल्हा आदि पांच वधके स्थानोंसे उत्पन्न पाप के नाश के लिये क्रमसे पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्यों ने प्रतिदिन गृहस्थों के करने को कहे हैं ॥ ६९ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

उन पंचयज्ञों के नाम लिखते हैं—वेदका पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है १, तर्पण कहिये अन्न आदि से अथवा जल से पितरों का तृप्त करना पितृयज्ञ है २, आगि में होम करना देवयज्ञ है ३, भूतों को बलि देना यह भूतयज्ञ है ४, अभ्यागत का सत्कार करना यह मनुष्य यज्ञ है ये पाँचों महायज्ञ कहेगये हैं ॥ ७० ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः। स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥

जो पुरुष इन पाँचमहायज्ञों को शक्तिसे कभी नहीं छोड़ता है वह सदा घर में वसता हुआ भी सूना (हिंसा) के दोषोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ७१ ॥

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः। न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ७२ ॥

देवता कहनेसे देवता और भूत दोनो जानने चाहिये क्योंकि भूतों को भी देवतारूपसे बालि दीजाती है और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढ़े माता पिता आदिका और सब भाव से अपना पालन तो अवश्यही कर्तव्य है और जो देवता आदि पांचको अन्न

नहीं देता है वह श्वास लेताभी जीता नहीं है किंतु मरेहुए के समान है ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते॥

अन्य मुनीश्वरों ने इन्हीं पंचयज्ञों के नाम दूसरे प्रकार से कहे हैं, जैसे अहुत- १ हुत २ प्रहुत ३ और ब्राह्महुत ४ प्राशित ५॥७३॥

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः। ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

अहुत कहिये ब्रह्मयज्ञ नाम जप, और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम, प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबलि और ब्राह्महुत कहिये मनुष्य यज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञनाम नित्यश्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि॥ दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

जो दरिद्रता आदि दोष से अतिथि को भोजन देना आदि करनेको न समर्थ होय तो ब्रह्मयज्ञमें सदा लगारहे क्योंकि दैवकर्ममें लगाहुआ पुरुषही इस चराचर संसार को धारण करता है ॥ ७५ ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

यजमान करके अग्नि में अच्छी तरहसे डाली हुई आहुति रसोंके खींचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुँचती है और सूर्य से वर्षा होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न होताहै और अन्नके भोजनआदि से प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वआश्रमाः ॥ ७७ ॥

जैसे हृदयमें स्थित प्राणनाम पवनके आश्रय से सब जीव जीते हैं वैसे ही गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते हैं ॥ ७७ ॥

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्॥ गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ७८ ॥

गृहस्थ सब आश्रमवालों के प्राण समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिससे गृहस्थ के सिवाय तीन आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करने से और अन्न के देने में सद्गृहस्थों करके ही सदा उपकार किये जाते हैं तिससे गृहस्थ ज्येष्ठ आश्रम है ॥ ७८ ॥

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥

अक्षय स्वर्ग की इच्छा करनेवाले और इस लोक में स्त्रीका भोग तथा स्वादिष्ट अन्न आदि के भोजन के सुखको सदा चाहनेवाले पुरुषको यह गृहस्थाश्रम यत्न से धारण करने योग्य है। दुर्बलेन्द्रिय कहिये इंद्रिय जिन के वशमें नहीं हैं। उनको जिसका धारण करना कठिन है ॥७९॥

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ॥ आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ८० ॥

ऋषि, पितर, देवता, भूत और अभ्यागत ये गृहस्थों से प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्र के जाननेवालेको उनके लिये करना चाहिये॥८०॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥

स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) से ऋषियोंको होमों

से देवताओं को, श्राद्धों से पितरों को, अन्न से मनुष्योंको और बलिकर्म से अन्य प्राणियों को पूजै ॥ ८१ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

पितरोंको प्रसन्न करता हुआ पुरुष, अन्नादि से वा जल से अथवा दूध, मूल और फलोंसे प्रतिदिन श्राद्ध करै ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयाज्ञिके। न चैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥

पञ्चमहायज्ञान्तर्गत पितरों के निमित्त नित्य श्राद्ध में अनेक ब्राह्मणों को भोजन करावै परन्तु शक्ति न होय तो एक को ही भोजन करावै और वैश्वदेव अर्थात् होमादि कर्म के निमित्त ब्राह्मणभोजनकी आवश्यकता नहीं है॥

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्॥ आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, आगे कहेहुए देवताओंको, संस्कार करीहुई अग्नि में विधिपूर्वक, सब देवताओं के निमित्त पकान्न का प्रतिदिन होम करै ॥ ८४ ॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥

पहिले अग्निके निमित्त (अग्नये स्वाहा), सोम के निमित्त (सोमाय स्वाहा) फिर एक साथ तिन दोनों के निमित्त (अग्निषोमाभ्यां स्वाहा) तदनन्तर विश्वेदेवों के निमित्त (विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा) ऐसा कहकर होम करै और धन्वन्तरि के निमित्त (धन्वन्तरये स्वाहा) ऐसा कहकर होम करै ॥ ८५ ॥

कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च॥ सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८६ ॥

कुहू के निमित्त (कुह्वै स्वाहा), अनुमति के निमित्त (अनुमतये स्वाहा),प्रजापति ब्रह्मा के निमित्त (प्रजापतये स्वाहा) और द्यावा पृथिवी के निमित्त (द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा) और सब देवताओं के अनन्तर अग्नि के निमित्त (अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा) कहकर होम करै ॥ ८६ ॥

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदाक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥ ८७ ॥

एकचित्त होकर पूर्वोक्त रीतिसे होम करके, पूर्व आदि के क्रम से सब दिशाओं में अनुचरों सहित इन्द्र, यम, वरुण और सोम इन देवताओं को बलि देवै ॥ ८७ ॥

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि। वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥

द्वारमें (मरुद्भ्यो नमः), जलमें (अद्भ्यो-

१ देवतोद्देशेन भूतेभ्योऽन्नदानं बलिकर्म।

२ इस श्लोक में प्रसंगवश ब्राह्मणशब्द द्विजका वाचक है क्योंकि ऊपर से द्विज के कर्मकाही वर्णन चला है इसकारण यहां ब्राह्मणशब्द का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य ऐसा करा है ॥

१जिसमें चन्द्रमाकी सकल कलाओंका क्षय होय उस तिथि का नाम कुहू है, तिसके अभिमानी देवता के निमित्त।

२ दो पहर चतुर्दशी होकर पूर्णिमा होय तो उस तिथि का नाम अनुमति है तिसके अभिमानी देवता के निमित्त।

३ द्युलोक और पृथिवीके अभिमानी देवताओंके निमित्त।

४ अर्थात् पूर्व में (इन्द्रायनमः, इन्द्रपुरुषेभ्योनमः) दक्षिण में (यमाय नमः, यमपुरुषेभ्यो नमः) पश्चिम में (वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यों नमः) उत्तर में (सोमाय नमः। सोमपुरुषेभ्यो नमः) ऐसा कहकर बलि देय।

नमः) और मूसल वा उलूखलपर (वनस्पतिभ्यो नमः) ऐसा कहकर बलि देय ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः। ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥

वास्तुपुरुष के शिरोदेश उत्तर पूर्व दिशा) में लक्ष्मी के निमित्त (श्रियै नमः) कहकर, पाददेश (दक्षिण पश्चिम) में भद्रकाली को (भद्रकाल्यै नमः कहकर और घर के मध्यमें ब्रह्माजी के निमित्त (ब्रह्मणे नमः) कहकर और वास्तु देवता के निमित्त (वास्तोष्पतये नमः) कहकर बलि देय ॥ ८९ ॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्॥ दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ ९० ॥

घर के आकाश में सकल देवताओं को (विश्वेभ्यो नमः) कहकर, दिन में विचरने वाले सब प्राणियों को (दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः) कहकर और रात्रिमें विचरनेवाले सकल प्राणियों को (नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्योनमः) कहकर बलि देय ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥

पृष्ठवास्तु पर अथवा बलि देनेवाले के पीछे की भूमिपर सकल जीवों के निमित्त (सर्वात्मभूतये नमः) कहकर बलि देय, यह सब बलि देकर शेष रहाहुआ सब अन्न दक्षिण दिशा में दक्षिणमुख और प्राचीनावीती होकर पितरों को (स्वधा पितृभ्यः) ऐसा कहकर बलि देय ॥ ९१ ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्॥ वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

फिर और अन्न पात्र में परोसकर, धूलि न लगसके इसप्रकार भूमिपर कूकर, पतित, श्वपच, पापरोगी, काक और कृमि के निमित्त धीरे से धरदेय ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथर्जुना ॥ ९३ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इसप्रकार सब प्राणियों को बलि देता है वह अतिसूधे प्रकाशमय मार्ग से ब्रह्मलोक को जाता है अर्थात् ब्रह्म में लीन होता है ॥ ९३ ॥

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

इसप्रकार बलिकर्म करके परिवार के भोजन से पहिले अतिथि को भोजन करावै और भिक्षुक ब्रह्मचारी आदि को विधि के अनुसार एक ग्रास से कम न होय ऐसी भिक्षा देय ॥९४॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः ॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥

गुरु को, सुवर्णसे मँढहुए सींगोंवाली गौका दान देकर शिष्य को जैसा पुण्यफल प्राप्त होता है वही फल गृहस्थी द्विज, भिक्षुक को भिक्षा देकर पाता है ॥ ९५ ॥

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

---

१ रहनेवालेके ऊपर की छतको या एक मञ्जल स्थान के ऊपरकी छतको पृष्ठवास्तु कहते हैं।

२ प्राचीनावीतिना चायं बलिर्देयः स्वधा पितृभ्य इति, प्राचीनावीती शेषं दक्षिणाभिमुखो निनयेदिति बह्वृच गृह्यवचनात्।

गृहस्थ, बहुतसा अन्न न होने पर एक ग्रास मात्र अन्नव्यञ्जन आदि, इतना भी न होसकै तो जल से भरा पात्र फल पुष्पादि से शोभित करके, वेदके अर्थ का तत्त्व जाननेवाले ब्राह्मण को, स्वस्तिवाचन आदि विधि के साथ देय॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम्॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः॥ ९७॥

जो गृहस्थ अज्ञानवश, सत्पात्र न जानकर वेद के अर्थ का तत्त्व न जाननेवाले ब्राह्मण को देवता वा पितरों के निमित्त हव्य कव्य देता है उसका वह देना राख में घी की आहुति देने की समान निष्फल होता है ९७

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात्॥ ९८॥

विद्या और तपस्या से निरन्तर प्रज्वलित की समान ब्राह्मण के मुखरूप अग्नि में जो गृहस्थ हव्य कव्य का होम करता है वह होम उसकी, दुस्तर व्याधि, शत्रु, राजपीडा आदि भय और बडेभारी पाप से रक्षा करता है ९८

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नंचैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ ९९॥

अपने आप घर आयेहुए अतिथि का विधिपूर्वक सत्कार करके आसन, चरण धोने का जल और यथाशक्ति अन्नव्यञ्जन आदि देय॥

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः॥ सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन्॥ १००॥

गृहस्थ यदि उञ्छवृत्ति अर्थात् खेत में पडे रहगयेहुए अन्न आदि से जीविका का निर्वाह करै और पञ्चअग्नि में होम करै तौ भी घर आयाहुआ ब्राह्मण अतिथि पूजित न होकर उसके घर में रहै तो उसके सब पुण्य को ग्रहण करता है॥ १००॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता॥ एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥ १०१॥

सोने को तृण, विश्राम को भूमि, चरण धोने को जल और प्रियवचन, अतिथि की सेवा के लिये यह सब भद्रपुरुषों के घर में कभी अप्राप्त नहीं होते हैं॥ १०१॥

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥ १०२॥

पराये घर एक रात्रिमात्र वास करनेवाले ब्राह्मण को अतिथि कहते हैं, क्योंकि-पराये घर एक तिथि के सिवाय दूसरी तिथि अर्थात् दूसरे दिन न रहे इसकारण ही उसका नाम अतिथि है॥ १०२॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा॥ उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा॥ १०३॥

स्त्री और शास्त्रीय अग्नियुक्त घर में उपस्थित एक ग्राम का रहनेवाला, लोक में हास्य की बातें कहकर जीविका करनेवाला ब्राह्मण अतिथि नहीं कहाता है, ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि-स्त्री और अग्निरहित प्रवासी आतिथ्य न करै॥ १०३॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः॥ तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्॥ १०४॥

जो निर्बुद्धि गृहस्थ पराये अन्न के भोजनका दोष न जानकर अतिथिसत्कार के लोभ से

१ न विद्यते द्वितीया तिथिर्यस्यासौअतिथिरिति व्युत्पत्तेः।

अन्य ग्राम में जाकर परान्न भोजन करता है वह मरकर जन्मान्तर में उस पाप से अन्न देने वाले का पशु होकर जन्म लेता है ॥ १०४ ॥

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ॥ काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥ १०५ ॥

सूर्यास्त होनेपर गृहस्थ पुरुष, घर आयेहुए अतिथि को निषेध न करै, अतिथि दूसरे वैश्वदेव बलि के समय आवै वा भोजन समाप्त होनेपर आवै वह कभी गृहस्थ के यहाँ भूखा न रहै, उसको अवश्य भोजन करावै ॥१०५॥

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ १०६ ॥

घी, दही आदि उत्तम द्रव्य, अतिथि को बिना दिये आप भोजन न करै, क्योंकि-अतिथिसेवा से बहुत सी सम्पदा, यश, आयु और स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १०६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ १०७ ॥

जहां एकसमय में बहुतसे अतिथियोंका समागम होय तहां उत्तम, मध्यम और अधम विचारकर आसन, विश्राम का स्थान शय्या और रहते समयकी सेवा तथा जाते समय का अनुगमन उत्तम, मध्यम और अधमरूपसे करै, सबके साथ एकसा व्यवहार न करै ॥१०७॥

वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ १०८ ॥

वैश्वदेवका कार्य होजाने परभी यदि और कोई अतिथि घर आजाय तो उसको भी यथाशक्ति अन्नादि पाक करके देय, पूर्वके बलिमें से न देय ॥ १०८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः

ब्राह्मण, भोजनके निमित्त अपने कुल गोत्र का वर्णन न करै, क्योंकि-भोजनके लिये अपने कुलका परिचय देनेपर पण्डित उसको वान्ताशी (उलटीका भोजन करनेवाला) कहते हैं ॥ १०९ ॥

न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च

ब्राह्मणके घर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अतिथि नहीं कहाते हैं, क्योंकि वह ब्राह्मणसे नीची जाति के हैं; सखा और ज्ञाति आत्मीय होनेके कारण, और गुरु प्रभु होनेके कारण अतिथि नहीं हैं, तात्पर्य यह है कि-क्षत्रियके यहां क्षत्रिय और ब्राह्मण अतिथि होसक्ता है, वैश्य वा शूद्र नहीं; और वैश्य के यहां द्विजातिमात्र अतिथि होसक्ता है शूद्र नहीं ॥११०॥

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥ १११ ॥

परन्तु यदि क्षत्रिय भी अतिथिरूप से ब्राह्मणके यहाँ आवे तो सकल ब्राह्मण अतिथियों के भोजन करलेने पर उसको यथेष्ट भोजन करावै ॥१११॥

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ॥ भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥ ११२ ॥

ब्राह्मण के घर यदि दूसरे ग्रामसे वैश्य और शूद्र अतिथिरूपसे आवें तो उनके ऊपर दया दिखाकर सेवकों के भोजन के समय उनको भी भोजन करावे ॥ ११२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान्। संस्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ ११३ ॥

यदि भोजन के समय क्षत्रिय के सिवाय मित्र और सहपाठी आदि अन्य ग्रामसे मित्र भाव से घर आवें तो स्त्री के भोजनके समय उनको अन्नादि भोजन करावे ॥ ११३ ॥

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा। अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ ११४ ॥

नवीन विवाहिता स्त्री, पुत्रवधू, कन्या, बालक रोगी, और गर्भवती इनको कुछ विचार न करके अतिथिसेवा से आगे ही भोजन करादेय ॥ ११४ ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्ते विचक्षणः। स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ ११५ ॥

जो अज्ञ पुरुष, अतिथि और सेवक आदिको अन्न न देकर आप भोजन करता है वह नहीं जानता है कि—मरनेपर उसके शरीरको पक्षी और कुत्ते खायँगे ॥ ११५ ॥

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि। भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ ११६ ॥

पहिले ब्राह्मण अतिथि और दासदासियों के भोजन करलेनेपर जो कुछ शेष बचै उसको ही गृहस्थ अपनी स्त्री के साथ भोजन करै ॥ ११६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः। पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ ११७ ॥

गृहस्थ पुरुष, देव, ऋषि, पितृ सकल मनुष्य और गृह-देवता इन सबों की अन्नादि से पूजा करके पीछे आप बचेहुए अन्न को स्त्री के सहित भोजन करै ॥ ११७ ॥

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्। यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ ११८ ॥

जो पुरुष अपने लिये पाक करके भोजन करता है, वह केवल पाप को भक्षण करताहै क्योंकि यज्ञसे बचाहुआ अन्नही साधुओं के भोजन के लिये विहित है ॥ ११८ ॥

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान्। अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः ॥ ११९ ॥

राजा, पुरोहित, स्नातक, गुरु, जामाता, श्वसुर और मामा यह सात एक वर्ष के अनन्तर घर आवें तो गृहस्थी, गृह्यसूत्र में कहेहुए मधुपर्क से पूजन करै ॥ ११९ ॥

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥

राजा और स्नातक एक वर्षके भीतरभी यज्ञकर्ममें आवें तो मधुपर्क से पूजन करै परन्तु यज्ञ के सिवाय और समयमें मधुपर्क न देय ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत्। वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ १२१ ॥

पत्नी, सायङ्कालके समय पकेहुए अन्न से विना मन्त्र पढ़े ही देवता के निमित्त बलि देय; क्योंकि-इसको ही वैश्वदेव बलि कहते हैं, यह सायं और प्रातःकाल विहितहै॥१२१॥

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्दुक्षयेऽग्निमान् पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासा-

१ यह निश्चय जाने कि—जामाताकी वर्षभर के अनन्तर यज्ञकर्म के बिनाभी पूजा करै।

नुमासिकम् ॥ १२२ ॥

साग्निक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, अमावास्या के दिन पितृयज्ञके कर्मको समाप्त करके प्रतिदिन 'पिण्डान्वाहार्यक' नामक श्राद्ध करै ॥ १२२ ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥ तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥

पितरोंका जो मासिक श्राद्ध विहित है, पण्डित उसको अन्वाहार्य श्राद्ध कहते हैं, इस श्राद्धको प्रशस्त आमिष से वा घृतके पुए आदि से प्रयत्नके साथ करै ॥ ११३ ॥

तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ॥ यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १२४ ॥

इस श्राद्ध में जैसे गुणवान ब्राह्मण भोजन करायेजाते हैं और जैसे त्यागेजाते हैं और जितनों को जैसे अन्न से भोजन करायाजाता है सो सब कहेंगे ॥ ११४ ॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ १२५ ॥

दैवश्राद्ध में दो और पिता, पितामहादिके श्राद्ध में तीन अथवा देवपक्ष में एक और पितृपक्ष में भी एक ब्राह्मण को भोजन करावै, इससे अधिक ब्राह्मणभोजन की शक्ति होने पर भी उसमें प्रवृत्त न होय ॥ १२५ ॥

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ॥ पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥ १२६ ॥

ब्राह्मणों की अधिकता होनेपर उनकी पूजा नहीं होती है, उचित स्थानपर बैठालना नहीं बनता है । अपराह्न काल बीतजाता है, सब पदार्थ ठीक २ नहीं होते हैं, गुणी ब्राह्मण भी नहीं मिलते हैं, इन पाँच विघ्नों के कारण अधिक ब्राह्मण न करै ॥ १२६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ॥ तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥ १२७ ॥

श्राद्ध करने से पितर तृप्त होते हैं, यह श्राद्ध हर अमावस्या को कियाजाता है, यह श्राद्ध करने से गुणवान् पुत्र पौत्रादि प्राप्त होते हैं और धन सम्पदा मिलती हैं, अतः इसको अवश्य करै ॥ ११७ ॥

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥ अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ १२८ ॥

देनेवाले, देवता और पितरों के निमित्त अन्नादि श्रोत्रिय (वेद पढ़नेवाले) ब्राह्मण को ही दें; क्योंकि–वेदाध्ययन शुद्ध आचरणादिसे पूजनीय ब्राह्मणको देनेपर वह परम फलदायक होता है ॥ १२८ ॥

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ॥ पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥ १२९ ॥

दैवकर्म और पितृकर्म में एक २ भी विद्वान् को भोजन करावै तो विशेष फल पाता है और वेद न जाननेवाले बहुतसों को भी भोजन कराने से वह फल नहीं मिलता है ॥ १२९ ॥

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥

दैव और पितृकर्म में आगे ब्राह्मण के पूर्वपुरुषोंकी श्रेष्ठताकी परीक्षा करै, क्योंकि–वह हव्य कव्य के देनेका तीर्थ (पात्र) है और अतिथि की समान है ॥ ११० ॥

१ पिण्डानामनु पश्चादाह्रियतेऽनुष्ठीयते तत् पिण्डान्वाहार्यकम् ॥

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते। एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः

जहां वेद न जाननेवाले सहस्रों के सहस्र (दशलाख) भोजन करैं तिस श्राद्धमें यदि एक वेदवेत्ता ब्राह्मणको प्रसन्नता से भोजन कराया जाय तो धर्मोत्पादनके विषय में ऐसे एक ब्राह्मणके भोजनका फल तैसे दशलाख ब्राह्मणोंके भोजनके फलके समान है॥१३१॥

ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ॥ नहि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥ १३२ ॥

देवता और पितरों के उद्देश्य से सकल हव्य कव्य ज्ञान से श्रेष्ठ ब्राह्मण को ही देने चाहियें क्योंकि-रुधिर के सनेहुए हाथ रुधिर से ही शुद्ध नहीं होते हैं अर्थात् मूर्ख को भोजन कराने से पाप नष्ट नहीं होते हैं किन्तु विद्वान् को भोजन कराने से ही होते हैं १३२

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥ १३३ ॥

मूर्ख ब्राह्मण, श्राद्ध करानेवाले के दियेहुए जितने ग्रासोंको भोजन करता है श्राद्ध करने वाला मरकर उतने ही जलते हुए शूल, ऋष्टि और लोहेके गोलोंको भोजन करता है॥१३३॥

ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥ तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥

कोई ब्राह्मण ज्ञाननिष्ठ, कोई प्राजापत्यादि तपोनिष्ठ, कोई तपस्या और अध्ययन दोनोंमें तत्पर और दूसरे कितने ही योगनिष्ठ होते हैं।

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ॥ हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥

पितरों के उद्देश्य से कव्यान्न, आत्मतत्त्वज्ञानी ब्राह्मणको प्रयत्न करके देना चाहिये, और देवताओं के उद्देश्य से हव्यान्न ऊपर कहे चारप्रकारके ज्ञानियोंको ही न्यायानुसार देना चाहिये ॥ १३५ ॥

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥ १३६ ॥ ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता । मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति

जिसका पिता अश्रोत्रिय (वेद को न जाननेवाला) हो और पुत्र वेदवेत्ता हो अथवा पुत्र वेदपारगामी नहो पिता वेदपारगामी हो इन दोनों में जो आप वेदसे अनभिज्ञ हो किन्तु पिता वेदपारगामी हो वही श्रेष्ठ है परन्तु जिस का पिता वेदसे अनभिज्ञ हो और आपवेदवेत्ता हो श्राद्धादि में वह मंत्रों के सत्कारके निमित्त पूजा के योग्य है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ॥ नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ॥ १३८ ॥

श्राद्ध में मित्र को भोजन न करावै, मित्रों का संग्रह धन से करै, जिसको शत्रु वा मित्र न समझै ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन करावै ॥ १३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥ तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥ १३९ ॥

जिस के हव्य कव्य मित्रप्रधान हैं अर्थात् मित्रोंको भोजन कराने से ही होते हैं वह परलोक में श्राद्ध का और हवि का कुछ फल नहीं पाते हैं ॥ १३९ ॥

यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मो-

नवः ॥ स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥ १४० ॥

जो मनुष्य मूर्खता से श्राद्ध के द्वारा किसी से मित्रता करता है वह श्राद्धमित्र पुरुष, ब्राह्मणों में अधम है, वह स्वर्गलोक से गिरजाता है॥

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः। इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥ १४१ ॥

मित्रभाव से जिनको भोजन कराया जाता है उस में केवल पाँच पुरुषों को एकत्र बैठकर भोजन कराने के ठाठ के सिवाय पारलौकिक कोई फल नहीं है, जैसे अन्धी गौ एकही घर में रहती है तैसेही वह दानकी क्रिया केवल इस लोक में ही रहती है ॥ १४१ ॥

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्। तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ १४२ ॥

जैसे किसान ऊषरभूमि में बीज बोकर कोई फल नहीं पाता है तैसेही श्राद्ध करने वाला मूर्ख ब्राह्मण को हव्यादि देनेपर परलोक में कोई फल नहीं पाता है ॥ १४२ ॥

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥ १४३ ॥

विधि के अनुसार विद्वान् पुरुष को दक्षिणा देने पर वह इस लोक और परलोक में देने लेने वाले को उचित फल का भागी करती है ॥ १४३ ॥

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ॥ द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ १४४ ॥

यहाँ, विद्वान् ब्राह्मण के न मिलनेपर गुणवान् मित्र को भी भोजन कराना उचित है परन्तु विद्वान् भी शत्रु को भोजन कराना उचित नहीं है क्योंकि-शत्रुओं के श्राद्ध पदार्थों को खाने पर वह परलोक में निष्फल होता है॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ १४५ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मन्त्र ब्राह्मणरूप वेदकी सकल शाखाओं को पढ़ने वाले वेदवेत्ता ब्राह्मण को श्राद्ध में यत्न के साथ भोजन कराने पर परम फल प्राप्त होता है ॥ १४५ ॥

एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ॥ पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥ १४६ ॥

तीन प्रकार के ब्राह्मणों में से कोई पुरुष जिसके श्राद्ध में पूजित होकर भोजन करता है उस के पिता आदि सातपुरुषों की चिरकाल को तृप्ति होती है ॥ १४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥ अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥

हव्य कव्य देने के विषय में सम्बन्धरहित श्रोत्रियों को भोजन कराना ही प्रथम कल्प है, इस के अभाव में सदा साधुपुरुषों ने आगे कहे हुए अनुकल्प का व्यवहार किया है ॥ १४७ ॥

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम्। दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ १४८ ॥

नाना, मामा, भानजा, श्वसुर, आचार्य आदि विद्यागुरु, धेवता, विट्पति (जमाई)

१ विशः प्रजायाः कन्यायाः पतिर्विट्पतिर्जामाता।

मौसी का पुत्र, बुआ का पुत्र, पुरोहित और यज्ञ करनेवाला इन दश पुरुषों को भोजन करावै ॥ १४८ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ १४९ ॥

धर्मात्मापुरुष, दैवकर्म में भोजन के निमित्त यत्न के साथ ब्राह्मण की परीक्षा न करै, लोक में जो भला कहावै उसको ही भोजन करावै, परन्तु पितृकार्य में यत्न के साथ भोजन के निमित्त ब्राह्मण के पिता पितामहादि के कुल की परीक्षा करै ॥१४९॥

ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

जो चोर, महापातकी वा नपुंसक हैं, और जिनका शास्त्रमें विश्वास नहीं है, ऐसे ब्राह्मणोंको मनुजीने हव्यकव्य के अयोग्य कहाहै॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ॥ याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥ १५१ ॥

जटाधारी वा मुण्डित ब्रह्मचारी, वेदपाठरहित, चर्मरोगी, जुआरी और जो बहुतोंको यज्ञ करावें इनको श्राद्धमें भोजन न करावै ॥

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ॥ विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ १५२ ॥

वैद्य, देवलक (पुजारी), मांस वेंचनेवाले, व्यवहारी, यह हव्यकव्य में वर्जित हैं॥१५२॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥ १५३ ॥

ग्रामका वा राजाका नौकर, बुरेनखों वाला, काले दांतोंवाला, गुरु के प्रतिकूल वर्त्ताव करनेवाला, श्रौतस्मार्त्त अग्निको त्यागनेवाला, नृत्य गान आदिसे वा सूदसे जीविका करनेवाला, इन सब ब्राह्मणोंको हव्य कव्य में त्यागदेय ॥ १५३ ॥

यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ॥ ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ १५४ ॥

क्षयरोगी, भेड-बकरी पालनेवाला, बड़े भ्राता से पहिले जिसका विवाह हुआ हो पञ्चमहायज्ञ न करनेवाला, ब्राह्मणद्वेषी, जिस के छोटे भ्राता का पहिले विवाह हुआ, हो तथा अनेकों की सदावर्त्त आदि की वस्तुका इकला लेलेनेवाला, इनको हव्यकव्य में भोजन न करावै ॥१५४॥

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥ पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १५५ ॥

नटकी वृत्तिवाला, ब्रह्मचर्यादि व्रतसे भ्रष्ट, सवर्णा से पहिले शूद्रा से विवाह करनेवाला, पुनर्भू का पुत्र, काणा और जिसके घर स्त्री का जार हो, इनको हव्यकव्य में निमन्त्रण न देय ॥ १५५ ॥

भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ॥ शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ १५६ ॥

वेतन पर वेद पढ़ानेवाला, जिसने वेतन दे कर वेद पढ़ा हो, शूद्र को वेदवेदाङ्ग में शिष्य

(१) जटिलो ब्रह्मचारी तस्य ह्ययं केशविशेषः पाक्षिकविहितो मुण्डो वा जटिलो वा स्यादित्युपलक्षणं जटा ब्रह्मचारिणस्ततो मुण्डोऽपि प्रतिषिध्यते इति मेधातिथिः ।

(२) यह निषेध तनख्वाह लेकर प्रतिमापूजन करनेवाले का है, धर्मार्थ प्रतिमा पूजन करनेवाले का नहीं क्योंकि "देवकोशोपजीवी नाम्ना देवलको भवेत्" अर्थात् उसही का नाम देवलक है जो देवताके निमित्त अर्पित खजाने में से अपनी जीविका करता है ।

वा अध्यापक, कठोर बोलनेवाला कुण्ड (पति के होतेहुए जार से उत्पन्न) और गोलक (पति के मरने पर जार से उत्पन्न हुआ) इनको हव्यकव्य में निमन्त्रण न देय ॥ १५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥ १५७ ॥

निष्कारण माता, पिता वा गुरुका त्यागने वाला, अध्ययन आदि वा कन्या देना लेना आदि सम्बन्ध से पतितों के साथ मिलाहुआ, इनको हव्यकव्य में भोजन न करावै ॥१५७॥

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ॥ समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ १५८ ॥

घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, कुण्ड और गोलक का अन्न खानेवाला, सोमलताको यज्ञार्थ बेचनेवाला, समुद्र होकर किसी टापूमें देवदर्शनादि उद्देश्य के विना जानेवाला, बन्दी अर्थात् भाट, तिल आदि पेलनेवाला, झूठे साक्षी बनानेवाला, इनको निमन्त्रण न देय ॥ १५८ ॥

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ॥ पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ १५९ ॥

शास्त्रार्थ वा व्यवहार में पिता से विवाद करनेवाला, अपनेआप जुआ खेलना न जानकर भी धनदेकर दूसरेके द्वारा खेलनेवाला, शराबी, पापरोगी, (कुष्ठी) शाप दियाहुआ, पाखण्ड के निमित्त धर्मकर्म करनेवाला और इक्षुआदि का रस बेचनेवाला इनको हव्यकव्य में भोजन न करावै ॥ १५९ ॥

धनुः शराणां कर्ता च यश्चाग्रे दिधिषूपतिः ॥ मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

धनुषबाण बनानेवाला, बड़ी बहिनका विवाह विनाहुए उसकी छोटी बहिन का विवाह होने पर उसका पति, मित्रद्रोही, जुआखिलाकर धन लेनेवाला और पुत्र से वेदादि पढ़ने वाला इनको हव्य कव्य में निमन्त्रण न देय॥

भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ॥ उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ १६१ ॥

मृगीरोगवाला, गण्डमाला का रोगी, श्वेतकुष्ठी तथा चुगलखोर, उन्मत्त, अन्धा और वेदका निन्दक इनको हव्य कव्य में निमन्त्रण न देय॥

हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च॥

हाथी, बैल, घोड़ा और ऊँटको सिखानेवाला, जो नक्षत्रगणना से जीविका करताहोय, पक्षियों को पालनेवाला, युद्धके निमित्त शस्त्रविद्या बतानेवाला इनको हव्य कव्य में त्यागदेय॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ॥ गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥ १६३ ॥

स्रोतोंका सेतु आदि से रोकनेवाला, जो स्रोतोंका रोकनेवाला हो, जीविकार्थ घर बनाने वाला, दूत, वेतनपर वृक्ष लगानेवाला इनको हव्य कव्य में निमन्त्रण न देय ॥ १६३ ॥

श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ॥ हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ १६४ ॥

कुत्तों से क्रीडा करनेवाला, बाजपक्षी से जीविका करनेवाला, कन्यासे गमन करनेवाला हिंसक, शूद्रों से जीविका करनेवाला, विनायकादि का याग करनेवाला इनको हव्य कव्य

में निमन्त्रण न देय ॥ १६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ॥ कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ १६५ ॥

आचारहीन, धर्मकर्ममें निरुत्साह, नित्य याचना करनेवाला, और जीविका हालेमी खेती करनेवाला, फीलपांव और सत्पुरुषों से निन्दित इनको हव्य कव्य में निमन्त्रण न देय ॥ १६५ ॥

औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ॥ प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १६६ ॥

भेड़ और भैंसे पालकर जीविका करनेवाला, पुनर्भूका पति, धनलेकर प्रेतकार्य करनेवाला, इनको हव्य कव्य में निमन्त्रण न देय १६६

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ॥ द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥

शास्त्रजाननेवाले उत्तम ब्राह्मण, इन सब स्तेन आदि, जन्म से निंदिताचारियों, साधुओं के साथ एक एक पंक्ति में भोजन के अयोग्य अधम ब्राह्मणों को दैव और पितृकार्य में त्यागदेय ॥ १६७ ॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ १६८ ॥

वेदाध्ययनहीन ब्राह्मण तृणकी अग्निकी समानहै, जैसे तृणोंकी अग्निमें घृतादि का होम करते ही वह बुझजाती है, ऐसे तृणाग्निकी समान ब्राह्मणों को हव्य कव्य का दान न देय क्योंकि कोई भी भस्म में घीकी आहुति नहीं देता है ॥ १६९ ॥

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ॥ दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

पंक्ति में भोजनके अयोग्य ब्राह्मण को दैव तथा पितृहवि देने से दाताको पीछे जो फल होता है उसको संपूर्णरूप से कहूंगा ॥ १६९ ॥

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ॥ अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥

वेदको ग्रहण करने के व्रत से रहित तथा परिवेत्ता आदि तथा अन्य-अपांक्तेय स्तेन आदि कों से जो हव्यकव्य खायागया हो उसको राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फल होता है ॥ १७० ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १७१ ॥

जो छोटा, बड़े भाई का व्याह न होने पर और उसके अग्निहोत्ररहित होनेपर विवाह और स्मार्त अग्निका ग्रहण करता है वह परिवेत्ता और उसका बड़ा भाई परिवित्ति है ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ १७२ ॥

परिवित्ति और परिवेत्ता, जिस कन्या से विवाह करता है वह तथा पाँचवां उस कन्या का देनेवाला और विवाह करानेवाला यह सब ही नरकको जाते हैं ॥ १७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ १७३ ॥

भाईकी मृत्यु होनेपर नियोगधर्मसे अर्थात् प्रत्येक ऋतु में एक एक वार गमन करै इस विधि को अवलम्बन कर भ्राता की स्त्री में जो काम से आसक्त होता है अथवा बारंबार गमन करता है उसको दिधिषूपति कहते हैं ॥ १७३ ॥

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ।

पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥ १७४ ॥

पराई स्त्रियों में कुंड और गोलक नाम दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। पतिके जीवतेहुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरे पीछे उस स्त्री में उत्पन्न सन्तान गोलक होती है ॥ १७४ ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च। दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥ १७५ ॥

पराई स्त्री में उत्पन्न हुए वह कुंड और गोलक दोनों प्राणी इस लोक में कीर्ति आदि का और परलोकमें देनेवाले के हव्य कव्यका नाश करते हैं ॥ १७६ ॥

अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानाननुपश्यति। तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ॥ १७६ ॥

सज्जनों की पंक्तिमें भोजन के अयोग्य स्तेनआदि, पंक्तिमें जितने भोजन योग्यों को देखता है उतनों के भोजन का फल उस श्राद्ध में मूर्ख दाता मरणानन्तर नहीं पाताहै१७६।

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु। पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ १७७ ॥

अंधा देखनहीं सकता परन्तु देखनेयोग्यस्थान में जानेसे पंक्तियोग्य नव्वे ब्राह्मणोंके भोजन के फल का नाश करता है, ऐसेही काणा साठ का, श्वेत कुष्ठी सौका और पापरोगी सहस्र का फल नष्ट करता है ॥ १७७ ॥

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः। तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ १७८ ॥

शूद्रको यज्ञ आदि कराने वाला, जितने ब्राह्मणों को अंगों से छूता है अर्थात् जितने श्राद्ध में भोजन करानेवालों की पंक्ति में बैठता है उन सबों की पूर्तफल देनेवाले को नहीं मिलता है ॥१८॥७

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम्। विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १७९ ॥

वेदका जाननेवाला भी जो ब्राह्मण लोभ से शूद्रयाजकका दान लेता है वहपानीमें कच्चे मट्टी के पात्र की समान शीघ्रही शरीर आदि सहित नाश को प्राप्त होता है ॥ १७९॥

सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्। नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषे ॥ १८० ॥

सोमलता बेचनेवाले को जो दियाजाता है वह देनेवाले के भोजन के लिये विष्ठा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्म में विष्ठा खानेवालों की जाति में उत्पन्न होता है। ऐसेही वैद्यको देने से पीव और रक्तहोता है अर्थात् दाता दूसरे जन्म में पीवरक्त खाने वालों की जाति में उत्पन्न होता है और देवलक को दिया हुआ नष्ट होजाता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याजखाने को दिया हुआ अप्रतिष्ठ कहिये, आश्रयरहित होनेसे निष्फलही है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत्। भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ १८१ ॥

श्राद्धमें जो वाणिज्य करनेवाले को दिया जाता है वह इस लोक तथा परलोक में फलदायक नहीं होता है और जो पुनर्भू के पुत्र को दियाहुआ है वह भस्म में होमी हुई हवि के समान निष्फल होता है ॥ १८१ ॥

इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसौ

धुषु ॥ मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ १८२ ॥

विशेष पंक्ति में भोजन के अयोग्य स्तेन आदिकोंको दियाहुआ जो अन्न वह पण्डित कहते हैं कि-देनेवालेके जन्मान्तर में भोजन के लिये मेद, रुधिर, मांस, मज्जा और हाड होजाता है ॥ १८२ ॥

अपाङ्क्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पंक्तिपावनान् ॥ १८३ ॥

एक पंक्ति में बैठे हुए स्तेन आदिकों से दूषित कीहुई पंक्ति जिन ब्राह्मणों से पवित्र कीजाती है उन पंक्ति को पवित्र करनेवाले ब्राह्मणों को संपूर्णता से आप सुनिये॥१८३

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥ १८४ ॥

सब वेदोंमें अग्र कहिये श्रेष्ठ वह ब्राह्मण, और प्रकर्ष करके जो वेदके अर्थको कहैं वह प्रवचन कहाते हैं । उन अङ्गों में अग्र्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छहों अंगों के जाननेवाले चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण तथा श्रोत्रियान्वयज कहिये दशपीढी से वेद पढनेवालों के वंश में उत्पन्नहुए ब्राह्मण पंक्तिपावन कहातेहैं॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ १८५ ॥

त्रिणाचिकेत नामक यजुर्वेदके भागका करनेवाला ब्राह्मण त्रिणाचिकेत होता है १ वह और पंचाग्निहोत्री२ और त्रिसुपर्ण नामक ऋग्वेद के भाग पढनेवाला और शिक्षा आदि छै अङ्गों को पढाहुआ ब्राह्मविवाह में विवाहितासे उत्पन्न पुत्र और ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) साम के गानेवाला यह छःब्राह्मण पंक्तिपावन जानने॥

वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥ शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥ १८६ ॥

वेद के अर्थ का जाननेवाला, वेद के अर्थ कहनेवाला, ब्रह्मचारी, सहस्र गौओं का वा अधिक का देनेवाला, और सौवर्षकी अवस्था का, श्रोत्रिय, यह ब्राह्मण पंक्ति के पवित्र करनेवाले जानने ॥ १८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निमन्त्रयेत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥ १८७ ॥

श्राद्धकर्म के प्राप्त होनेपर श्राद्धकर्म के एक दिन पहले जो न होसके तो उसीदिन जिन के लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण को सत्कारपूर्वक निमन्त्रणदेय ॥

निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ॥ न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ १८८ ॥

श्राद्धमें निमन्त्रण दियाहुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिन से श्राद्धके दिनकी रात्रि तक नियम से रहै अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करै और अवश्य करने योग्य काम्य जप आदि को छोड़कर वेदके अध्ययन को भी न करै और श्राद्ध करनेवाला भी इसी नियमसे रहै॥

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ॥ वायुवच्चानुगच्छन्ति तं-थासीनानुपासते ॥ १८९ ॥

निमन्त्रित ब्राह्मणों में पितर अदृश्यरूप से स्थित होते हैं और प्राण पवनकी समान,चलते हुए के साथ चलते हैं और बैठने पर समीप बैठतेहैं तिससे उनको नियमसे रहना चाहिये॥

केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्वि-

जोऽत्तमः ॥ कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निमंत्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमंत्रणको अंगीकार करके किसी कारणसे भोजन न करनेपर उस पाप से दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥१९०॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ॥ दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥

श्राद्धमें निमंत्रित जो ब्राह्मण वृषली[1](शूद्रा) के साथ भोग करता है वह देनेवाले का जो कुछ पाप हो उसको प्राप्त होता है ॥१९१॥

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥

क्रोधरहित और शौचपर कहिये बाहरी शौच मट्टी पानी आदिसे, भीतरी रागद्वेषआदि का त्याग करके तिससे युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और युद्धके छोड़नेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणोंसे युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं तिससे भोजन करनेवाले को तथा श्राद्ध करनेवाले को क्रोध आदिसे रहित होना चाहिये ॥१९२॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥ १९३ ॥

इन सब पितरोंकी जिससे उत्पत्ति हुई है और जो पितर जिन ब्राह्मण आदिकोंसे जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मों करके उपचार करने योग्य हैं उन सबोंको सुनो ॥१९३॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥ तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ १९४ ॥

हिरण्यगर्भ के पुत्र मनु के जो मरीचि आदि पुत्र पहले कहे हैं उन सब ऋषियों के पुत्र सोमपा आदि पितृगणोंको मनु आदिकों ने कहा है ॥१९४॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥ १९५ ॥

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ १९६ ॥

विराट् के पुत्र सोमसद् नाम साध्यों के पितर हैं और मरीचि के पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंके पितर कहे हैं। दैत्य दानव यक्ष गंधर्व उरग (सर्प) राक्षस सुपर्ण (पक्षी) और किन्नरों के बर्हिषद् नाम पितर कहे हैं ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥

ब्राह्मण आदि चारोंवर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे हैं अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा, क्षत्रियोंके हविर्भुज, वैश्यों के आज्यपा और शूद्रोंके सुकालिन ॥१९७॥

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥ पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥

भृगुके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके हविर्भुज पुत्र हैं, पुलस्त्यके आज्यपा हैं और

१ वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामकी इच्छा से जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याहीहुई ब्राह्मणी भी वृषली होसक्ती है।

वसिष्ठ के सुकालिन हैं ॥ १९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेवं निर्दिशेत् ॥ १९९ ॥

अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्ता और सौम्य इनको ब्राह्मणों ही के पितर जानै ॥१९९॥

ये एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः। तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥

जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे हैं तिन के भी इस जगत् में पुत्र पौत्र आदि अनंत पितर जानने ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यःपितरो जाताः पितृभ्योदेवमानवाः। देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ २०१ ॥

मरीचि आदि ऋषियोंसे पितर हुए और पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगम, स्थावर जगत् क्रमसे उत्पन्न हुआ ॥ २०१ ॥

राजतैर्भाजनैरेषामथो वा रजतान्वितैः। वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २०२ ॥

चांदी के पात्रों से अथवा चांदीसे मिला हुआ तांबे आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण होता है ॥२०२॥

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते। दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥ २०३ ॥

देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है, उससे पितरोंका कार्य द्विजातियोंको अवश्य कर्त्तव्य कहा है, इससे पितृश्राद्धकी मुख्यता और देवकार्य गौण है क्योंकि दैवकर्म उसका परिपूर्ण करनेवाला कहा गया है ॥ २०३ ॥

तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत्। रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ २०४ ॥

उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करने वाले विश्वेदेव ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करै क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस लुप्त करते हैं॥

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्र्याद्यन्तं न तद्भवेत्। पित्र्याद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ २०५ ॥

इसीसे वह पितृश्राद्ध दैवकर्म है, आदि और अन्त में जिसके ऐसा करै पित्र्य, जिसके आदि अन्तमें होय ऐसा दैव न करै क्योंकि पित्र्य जिसकी आदि अन्तमें होता है ऐसे श्राद्धको करता हुआ पुरुष कुटुम्बसहित शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ २०५ ॥

शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत्। दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥

जो स्थान दक्षिणकी ओरको क्रम से नमा हुआ और निर्जन तथा हड्डी, कोयले, अंगारे आदि से रहित और पवित्र होय तहां गोबरसे लीपे ॥ २०६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि। विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा॥

स्वभाव से शुद्ध अरण्यादि, नदी आदि का तट और निर्जन स्थान में श्राद्धादि करने से सदा पितर प्रसन्न होते हैं ॥ २०७ ॥

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्

१ यदि स्वयंसिद्ध ऐसा स्थान न मिले तो अपने हाथसे ठीक करके ऐसा करलेय।

पृथक्॥ उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥ २०८ ॥

तहां कुशायुक्त, काठ आदि के आसनों पर पृथक् २ जिससे एक का दूसरे से स्पर्श नहो तैसे प्रथम आदि के क्रम से निमन्त्रण दियेहुए और उत्तमरूप से स्नान और आचमन करके आयेहुए उन ब्राह्मणों को बैठावै ॥ २०८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥ गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ २०९ ॥

उन सब पवित्र ब्राह्मणों को आसनों पर बैठालकर सुगन्धित धूप केशर कपूर आदि विलेपन और पुष्पमालाओं से देवादि के क्रम से उनका पूजन करै ॥ २०९ ॥

येषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ॥ अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह

उन सब ब्राह्मणों को क्रम से अर्घ जल और पवित्र तिल आदि देकर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा से द्विज, अग्नि में आगे कही हुई रीति के अनुसार होम करै ॥ २१० ॥

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्यायनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्सन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ २११ ॥

पहिले अग्नि, सोम और यम इनको विधि के अनुसार हवि देनेसे प्रसन्न करके पीछे विधिपूर्वक अन्नादिसे पितरोंको तृप्त करै ॥२११॥

अग्न्याभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ॥ यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥

अग्निके अभाव में ब्राह्मणके हाथमें ही वह तीनों आहुति देय, क्योंकि वेदवेत्ता ब्राह्मण कहते हैं कि–जो अग्नि है वही ब्राह्मण है ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ॥ लोकस्याप्यायने युक्ताञ्छ्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् ॥ २१३ ॥

क्रोधहीन, प्रसन्नतायुक्त, पुरातन (सबके आगे उत्पन्न हुए) आशीर्वाद से लोकोंकी वृद्धि करनेमें उद्यत ऐसे ब्राह्मणोंको मनुआदि श्राद्ध के पहुंचानेवाले पात्र कहते हैं ॥२१३॥

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य परिक्रमम् ॥ अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ २१४ ॥

दक्षिणकी ओर अग्निमें 'अग्नये स्वधानमः' इसप्रकार होम करके फिर अपसव्य करिये दाहिने हाथसे पिण्ड रखनेकी भूमि में जल छोड़े॥

त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ २१५ ॥

उस अग्नि आदि में होम करने से शेष रहे हुए हवि के तीन पिण्ड बनाकर, दक्षिण को मुखकर एकतानचित्त हो दाहिने हाथसे उस कुश के ऊपर वह पिण्ड देय ॥ २१६ ॥

१ कुशायुक्त इसकारण कहा है कि उन आसनों पर कुश रक्खेजाते हैं जैसा कि देवल ऋषिने कहा है- ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वनिमन्त्रिताः । प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहतानि च ॥ दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च। दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः। अर्थात् श्राद्ध में जो ब्राह्मण विश्वेदेवा के निमित्त निमन्त्रित हों उनके पूर्वमुख आसनपर दो कुश और पितरोंके ब्राह्मणोंके दक्षिणमुखआसनो पर दक्षिणाग्र एक कुश स्थापन करै और उन आसनोंपर तिल मिला जल छिड़कै ॥

२ इस ग्यारहवें श्लोक में जो 'अग्नेः' यह पहिला पद षष्ठ्यन्त है सो चतुर्थी के अर्थ में है।

३ अर्थात् स्त्री का मरण होजाने पर वा यज्ञोपवीत न होने की दशा में अग्नि का अभाव होय तो।

४ पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः।

५ एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण इति मन्त्रदर्शिभिरुच्यते

६ वामहस्तम्तु सव्यं स्यादपसव्यन्तु दक्षिणम्।

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ॥ तेषु दर्भेषु तं हस्तं निर्मृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ २१६ ॥

अपने गृह्य में कहीहुई विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक कुशा के ऊपर पिण्ड देकर प्रपितामह (परदादा), पितामह (दादा) और पिता इनकी तृप्ति के लिये उस कुशा की जड़ से हाथको पोंछै ॥ २१६ ॥

आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ॥ षडृतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ २१७ ॥

फिर आचमनकर उत्तरमुख होकर धीरे से तीनवार प्राणायामकर 'वसन्तायनमस्तुभ्यं' इत्यादि मंत्र से छः ऋतु को नमस्कार करै और 'नमो वः पितरः' इत्यादि मन्त्र से दक्षिणमुख होकर पित्रादि को नमस्कार करै ॥२१७॥

उदकं निनयेच्छेषं शनैःपिण्डान्तिके पुनः ॥ अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ २१८ ॥

पिण्ड देनेसे पहिले पिण्डरखने के स्थान में रक्खेहुए जल के पात्र में का शेषजल प्रत्येक पिण्ड के समीप के स्थान में क्रम २ से छोड़ै, और जिस क्रम से पिण्ड दिये हों ध्यान-देकर उसी क्रम से प्रत्येक पिण्ड को सूँघै ॥ २१८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥ २१९ ॥

फिर क्रम से प्रत्येक पिण्डमें से थोड़ा २ सा भाग लेकर भोजन से पहिले अर्थात् अन्न परोसने से पहिले, बैठेहुए उन सब ब्राह्मणों को क्रम २ से भोजन करावै ॥ २१९ ॥

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥

पिता के जीवित होनेपर पितामह आदि तीन पुरुषों का श्राद्ध करै अथवा पिता के ब्राह्मण के स्थान में अपने पिता को ही बैठाकर भोजन करावै ॥ २२० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ॥ पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥ २२१ ॥

परन्तु जिसके पिताका मरण होगया हो और पितामह जीवित हो वह पिता का नाम लेकर श्राद्ध करके फिर प्रपितामह का श्राद्ध करै ॥ २२१ ॥

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥ २२२ ॥

जैसे पिता के जीवतेहुए उन पिता को भोजन कराया जाता है तैसे ही पितामह के जीवित होने पर उनको भोजन करावे और पिता, प्रपितामह का श्राद्ध करै अथवा जीवित प्रपितामह की आज्ञा से उनको भोजन करावै, पिता, प्रपितामह का श्राद्ध करै; अथवा पितामह को भोजन न कराकर पिता, प्रपितामह का श्राद्ध करै, ऐसी मनुजी की आज्ञा है ॥२२२॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ २२३ ॥

उन ब्राह्मणों के हाथ में कुशा और तिलयुक्त जल देकर पहिले वचन के अनुसार पिण्डों में के अंश 'पित्रे स्वधास्तु' कहकर ब्राह्मणों के हाथ में देय ॥ २२३ ॥

पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायञ्छनकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २२४ ॥

पितरों का ध्यान करताहुआ पाकशाला में से सुगन्धयुक्त अन्न के भरे हुए पात्र दोनों हाथों से उठाकर क्रम २ से ब्राह्मणों के समीप लाकर रक्खे ॥ २२४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः॥

अन्न के भरेपात्र आदि दोनों हाथों से ब्राह्मणों के समीपमें लावै, उस पात्रको छोड़ै नहीं, छोडनेपर दुष्टचित्त असुर बलात्कार से वह सब लेजाते हैं, इसकारण दोनों हाथोंसे लाकर परोसै ॥ २२५ ॥

गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधु ॥ विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २२६ ॥

अनेक प्रकार के व्यञ्जन शाक, दाल आदि, घृत, दुग्ध, दधि आदि से भरेहुए पात्र चित्त लगाकर सावधानी से शुद्धता के साथ लाकर पहिले ब्राह्मणों के समीप भूमि में ही स्थापन करै ॥ २२६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥ २२७ ॥

नानाप्रकार के लड्डू खीर आदि भक्ष्य भोज्य की सामग्री, नानाप्रकार के फलमूल, हृदय को प्रिय मांस[1],सुगन्धित जल,ब्राह्मणों के समीप भूमि में ही स्थापन करै ॥ २२७

उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः॥परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥

यह सब अन्न व्यञ्जनादि क्रम २ से सावधानी के साथ लाकर शुद्धभाव और पवित्रवेष से उन सब की प्रशंसा करताहुआ परोसै ॥ २२८ ॥

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥ २२९ ॥

परोसने के समय आंसू कभी न डालै, क्रोध न करै, झूठ न बोलै और अन्न को पैर से स्पर्श न करै तथा परोसने के पात्र में से उछालकर भोजन के पात्र में न देय ॥ २२९ ॥

अस्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतं शुनः ॥ पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ २३० ॥

आंसू श्राद्ध का अन्न प्रेतों को पहुँचाता है पितरों को नहीं पहुँचाता और क्रोध शत्रुओं को, झूठ बोलना कुत्तों को और पैर से छूना राक्षसों को तथा उछालाहुआ पापियों को पहुँचाता है उससे पितरों की तृप्ति नहीं होती है ॥ २३० ॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः॥ ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् ॥ २३१ ॥

जो जो ब्राह्मणों को रुचै वह १ मत्सरतारहित होकर देय और परमात्मा के तत्त्व की वार्त्ता करै यही पितरों को ईप्सित है ॥२३१॥

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ २३२ ॥

श्राद्ध में वेद, मानव आदि धर्मशास्त्र, सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्यान, महाभारत आदि इतिहास, ब्रह्म आदि पुराण और श्रीसूक्त शिवसूक्त आदि खिल यह ब्राह्मणों को सुनावै ॥ २३२ ।

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः

[1] पाराशरस्मृति में लिखा है कि कलियुग में श्राद्धसमय मांस के पिण्डादि का निषेध है।

शनैः॥ अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत्॥ २३३॥

आप प्रसन्न होकर प्रियवचन आदि से ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै और धीरे २ भोजन करावै यह खीर बड़ी स्वादिष्ट है, यह मिष्टान्न बहुत अच्छा है, लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर बारम्बार ब्राह्मणों से अनुरोध करै ॥ २३३ ॥

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्॥ कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम्॥ २३४॥

ब्रह्मचर्य व्रत में स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नपूर्वक भोजन करावै, उसको आसन के लिये नैपाल का कंबल देय और श्राद्धकी भूमि में तिल बखेरै ॥ २३४ ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः॥ त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥ २३५॥

दौहित्र, कुतुप (नैपालका कम्बल) और तिल यह तीन श्राद्ध में पवित्र हैं और शौच, क्रोध न करना तथा धैर्य यह तीन श्राद्ध में प्रशंसित हैं ॥ २३५ ॥

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः॥ न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान्॥ २३६॥

मौन होकर भोजन के योग्य उष्ण अन्नको सब ब्राह्मण भोजन करैं, दाता के भोजन के पदार्थों का गुण बूझने पर ब्राह्मण मुखकी चेष्टा (इशारे) से भी उसको प्रकट न करैं॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः॥ पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ २३७॥

जबतक अन्न उष्ण रहता है, तबतक ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते हैं और जब तक हविके गुण नहीं कहेजाते तबतक पितर भोजन करते हैं ॥ २३७ ॥

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः॥ सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥ २३८॥

शिर पर पगड़ी आदि लपेटकर जो भोजन करता है तथा दक्षिण को मुख करके जो भोजन करता है और जूता खड़ाऊँ पहिरेहुए जो भोजन करता है उसको निःसन्देह राक्षस खाते हैं ॥ २३८ ॥

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च॥ रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥ २३९॥

चाण्डाल, सूकर, मुरगा तथा कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक, यह भोजन करतेहुए ब्राह्मणों को न देखैं ॥ २३९ ॥

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम्॥ २४०॥

अग्निहोत्रमें, दान में, ब्राह्मणभोजन में, दैवकर्म में और पितृकर्म में जो इन करके देखाजाय वह जिसके लिये किया जाता है उसको नहीं पहुँचता ॥ २४० ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः॥

शूकर सूँघने से, मुरगा परों की पवन से, कुत्ता देखने से और शूद्र स्पर्श से अन्न को अपवित्र करदेता है ॥ २४१ ॥

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत्॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः॥ २४२॥

पँगु, काणा, श्राद्ध करनेवाले का दास, अन्य शूद्र और हीन वा अधिक अङ्गवाले को उस श्राद्ध के स्थान से निकालदेय ॥ २४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४३ ॥

अतिथिरूप से किसी ब्राह्मण अथवा और किसी के भोजन की इच्छा से आनेपर श्राद्ध करनेवाला श्राद्धके ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथाशक्ति उनका भी सत्कार करै ॥२४३॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्लाव्य वारिणा ॥ समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ २४४ ॥

सब प्रकारके अन्न व्यञ्जन आदि को मिलाकर जल में भिगोकर भोजन कियेहुए ब्राह्मणों के आगे भूमिमें कुशोंके ऊपर फैलाकर डाल देय ॥ २४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ २४५ ॥

संस्कारके अयोग्य, मरण को प्राप्तहुए दो वर्षके बालक तथा निरपराध कुलकी स्त्रियोंको त्यागकर मरनेवालोंका, पात्रमें का उच्छिष्ट अन्न और भूमि में कुशोंपर जो अग्निदग्ध पिण्ड दियाजाता है वह भाग है ॥ २४५ ॥

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ॥ दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥

जो उच्छिष्ट भूमि में गिरता है वह पित्र्य कर्म में कुटिलता और शठतारहित दासोंके समूहका भाग है ऐसा मनु आदि कहते हैं २४६

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ २४७ ॥

सपिंडीकरणश्राद्ध पर्यंत मरेहुए द्विजाति का वैश्वदेवरहित श्राद्ध ब्राह्मण को भोजन करावै और एक पिंडदेय ॥ २४७ ॥

सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ॥ अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ २४८ ॥

मृतपुरुषके धर्मके अनुसार सपिंडीकरण समाप्त होनेपर इसी कहीहुई पार्वणकी रीतिसे पुत्र, मरनेके दिन आदि सकलतिथिमें पिण्डदान करै ॥ २४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ॥ स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥ २४९ ॥

श्राद्ध के भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्र को देता है व मूर्ख अधोमुख होकर कालसूत्र नाम नरक में जाता है ॥ २४९ ॥

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ॥ तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते[1] ॥ २५० ॥

श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्मण उसीदिन रात्रि में स्त्रीसंभोग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्ठामें एक महीने तक पडे रहते हैं ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥ आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति[2] ॥ २५१ ॥

ब्राह्मणों को तृप्त जान उनसे स्वदितम् अर्थात् भोजन करालिया ऐसे पूछकर आचमन

१ वृषलीशब्दोऽत्र स्त्रीपर इत्याहुः। निरुक्तञ्च कुर्वन्ति। वृषस्यन्ती चपलयती भर्तारमिति वृषली ब्राह्मणस्य परिणीता ब्राह्मण्यपि वृषलीत्युच्यते ॥

करावै आचमन कियेहुए उनसे ' यो अभिरम्यताम्' ऐसा कहकर विश्राम करने को कहै ॥

स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥ स्वधाकारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २९२ ॥

आज्ञादेने के पीछे ब्राह्मण श्राद्ध करनेवाले से 'स्वधास्तु' ऐसे कहै क्योंकि सब श्राद्ध तर्पण आदि पितृकर्म में स्वधा शब्दका बोलना सबसे बड़ा आशीर्वाद है ॥ २५२ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ २५३ ॥

फिर तृप्तहुए तिन ब्राह्मणों से 'शेषरहा अन्न किस को दें' यह निवेदन करै, फिर ब्राह्मणोंके आज्ञा देनेपर जैसा वह कहैं तैसा करै ॥ २५३ ॥

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठेतु सुश्रुतम्॥ संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ २५४ ॥

पिता माता के एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ब्राह्मणों से ' स्वदितम्' ऐसा कहै, गोष्ठीश्राद्धमें 'सुश्रुतम्' ऐसा कहै, वृद्धिश्राद्ध में ' सम्पन्नम्, ऐसा कहै और देवताओं के उद्देश से करेहुए श्राद्ध में ' रुचितम् ' ऐसा कहै ॥ २५४ ॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः॥सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ २५५ ॥

अपराह्ण (दोपहरके अनन्तर) काल,कुशा, उत्तमतासे स्वच्छ करेहुए घर आदि, तिल, उत्साहसे अन्नादि दान, और पंक्तिपावन ब्राह्मण यह श्राद्धकर्मोंकी सम्पत्ति है॥२५५॥

दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥२५६॥

कुशा, मन्त्र, पूर्वाह्णकाल, सकल हविष्य अन्न, पहिले कहे स्वच्छ स्थान आदि यह सब दैवकार्यकी सम्पदा हैं ऐसा जाने ॥२५६॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैवं प्रकृत्या हविरुच्यते ॥१९७॥

वानप्रस्थों के नीवार आदि अन्न, दूध, सोमलता, विहितमांस, सैंधा आदि विना बनाया लवण इन सबको मनु आदि स्वाभाविक हवि कहते हैं ॥२५७॥

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥२५८॥

निमन्त्रित ब्राह्मणोंको विदा करके एकान्त मनसे मौन होकर पवित्रतासे दक्षिणकी ओर को देखता हुआ पितरोंसे आगे कहे हुए वरदान मांगै ॥२५८॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥ २५९ ॥

हमारे कुलमें दाता बढ़ैं, अध्ययन अध्यापनसे वेदशास्त्रका अधिक विचार हो, सन्तान बढ़ै, हमारे कुलमें वेदके अर्थमें कभी किसी को अश्रद्धा नहो और हमैं दान करनेको यथेष्ट धनादि सम्पदा प्राप्त हो ॥२९९॥

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥ गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥२६०॥

इसप्रकार पिण्डदान देकर वर मांगने के अनन्तर वह पिण्ड गौ, ब्राह्मण वा बकरीको

१ गोष्ठ्यां शुद्धयर्थमष्टममिति द्वादशविधश्राद्धगणनायां गोष्ठी श्राद्धमपि विश्वामित्रेण पठितम् ॥

२ देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते । हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषु यत्नतः ॥

खवादेय अथवा अग्नि या जलमें डाल देय॥

पिण्डान्निर्वपणं केचित्परस्तादेव कुर्वते॥ वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा॥ २६१॥

कोई २ आचार्य पहिले ब्राह्मणोंको भोजन कराकर फिर पिण्डदान करते हैं, कोई दिये हुए पिण्ड पक्षियोंको खिलाते हैं और कोई अग्नि वा जलमें डालते हैं ॥२६१॥

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा॥ मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥२६२॥

काया-मन-वाणी से पति की सेवा करने वाली प्रथम विवाहकी विवाहिता सवर्णा स्त्री यदि पति के पितरोंका पूजन करने में तत्पर होय, यदि सत्पुत्र की इच्छा करे तो वह मध्यम पिण्ड अर्थात् पतिके पितामहका उच्छिष्ट पिण्ड खाय ॥२६२॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्॥ धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा॥ २६३॥

उस पिण्डको खानेसे एक दीर्घायु, यशस्वी सुबुद्धि, धनवान्, पुत्रवान्, सत्वगुणी धार्मिक पुत्र उत्पन्न होता है ॥२६१॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत्॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा बान्धवानपि भोजयेत्॥२६४॥

फिर दोनों हाथ धो आचमन करके विधिपूर्वक परमआदर के साथ जातिवालोंको भोजन करावै, उनको आदर के साथ अन्नादि देकर माताके पक्षके बान्धवोंको भोजन करावै॥

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः॥ ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥ २६५॥

जबतक तहांसे ब्राह्मण न जायँ तबतक जूठे पात्र रक्खे रहने देय, ब्राह्मणोंके जानेपर जूठन को दूर करै, श्राद्ध होनेपर बलिवैश्वदेव, होम, नित्य श्राद्ध करै और अतिथियोंको भोजन करावै इसको ही वेदशास्त्रमें कहा धर्म जानै॥

हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पते॥ पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥

पितरोंको जिस विधिसे अन्नादि देनेपर चिरकालको तृप्ति होती है सो मैं आद्योपान्त कहता हूँ सुनो ॥ २६६॥

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा॥ दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम्॥

तिल, धान्य, जौ, कालेउड़द, जल, मूल और फल इनमें से कोई वस्तु विधिके साथ श्रद्धापूर्वक देने पर पितर एकमासको तृप्त होते हैं ॥ २६७॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु॥ औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥२६८॥

पितर पाठीन और रोहित आदि मत्स्यों से दोमास तृप्त रहते हैं, हरिणके मांससे तीनमास, मेषके मांससे चारमास और भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांचमास तृप्त होते हैं ॥२६८॥

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै॥ अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु॥ २६९॥

छागमांस से छः मास, चित्रितमृगमांस से सातमास, एणमृगमांस से आठमास और रुरु मृगके मांससे नौ मास तृप्त होते हैं ॥ २६९॥

दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः॥ शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु॥ २७०॥

आरण्य शूकर और महिष मांस से पितर

दश मास तृप्त होते हैं, शशा और कूर्म के मांस से ग्यारह मास तृप्त होते हैं ॥ २७० ॥

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ॥ वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥

गौ के दूध और खीर से एक वर्षतक और वार्ध्रीणस के मांस से बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं ॥ २७१ ॥

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ॥ आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ २७२ ॥

कालशाक, महाशल्क मत्स्य, गेंडा, लाल वर्णके छागका मांस, शहद और नीवार आदि धान्य इन सब वस्तुओं से पितरों को अनन्त काल के लिये तृप्तिसुख मिलता है ॥ २७२ ॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥ २७३ ॥

वर्षाकाल में, मघा नक्षत्र में, त्रयोदशी का योग होनेपर उस दिन शहद मिलाकर पितरों को जो कुछ दियाजाय उससे उनकी अक्षय तृप्ति होती है ॥ २७३ ॥

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ॥ पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ २७४ ॥

पितर यह प्रार्थना करते हैं कि-ऐसा कोई हमारे वंश में उत्पन्न होय कि-वह भादों की मघानक्षत्रयुक्त कृष्ण त्रयोदशी के दिन अथवा हाथी की पूर्वदिशामें की छायामें घृत शहदयुक्त खीर से हमें तृप्त करे ॥ २७४ ॥

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥

कोई पुरुष यदि परमश्रद्धावान् होकर जो कुछ अन्नादि पितरों को विधि के अनुसार देता है उनके लिये वह परकालमें अक्षय तृप्ति करनेवाला होता है ॥ २७५ ॥

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥ २७६ ॥

कृष्णपक्ष में चतुर्दशी को छोडकर दशमी से अमावस्या पर्यन्त जो तिथि हैं वह श्राद्धमें जैसी श्रेष्ठ हैं, प्रतिपदा आदि नौ तिथि तैसी नहीं हैं ॥ २७६ ॥

युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ २७७ ॥

द्वितीया, चतुर्थी आदि युग्मतिथि और भरणी, रोहिणी आदि युग्म नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला सकलकामनाओं को पाता है और प्रतिपदा, तृतीया आदि अयुग्म तिथि तथा अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म (विषम) नक्षत्र में सकल पितरों का श्राद्ध करनेवाला बहुतसी सन्तान पाता है ॥ २७७ ॥

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ २७८ ॥

जैसे शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष श्राद्ध में परम फलदायक है तैसे ही पूर्वाह्ण से अपराह्णकाल श्राद्ध में विशेष फलदायक है ॥ २७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ॥ पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥ २७९ ॥

श्राद्ध समाप्त होने तक दाहिने कन्धेपर यज्ञोपवीतको धारणकरे और निरालस होकर हाथ में कुश ले विधिपूर्वक पितृतीर्थ से सकल पितृकार्य करे ॥ २७९ ॥

---

१ जिस बूढे सफेद छाग के जल पीते में दोनों कान और जीभ जलका स्पर्श करै उसको वार्ध्रीणस कहते हैं।

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ॥ संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥

रात्रि में श्राद्ध न करै, क्योंकि–रात्रि को मनु आदिकों ने राक्षसी कहाहै। दोनों सन्ध्या में भी श्राद्ध न करै, तीन मुहूर्त तक प्रातःकाल को भी निषिद्ध जानै ॥ २८० ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत्॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ॥ २८१ ॥

यदि प्रति मास श्राद्ध न कर सकै तो इस विधि से वर्ष में हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षाकाल में तीन बार श्राद्ध करै, परन्तु पञ्चमहायज्ञ में का श्राद्ध प्रतिदिन करै ॥ २८१ ॥

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥ न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥ २८२ ॥

श्रौतस्मार्त्त अग्निके सिवाय लौकिक अग्नि में पितृयज्ञका होम न करै, साग्निक द्विज अमावास्या के सिवाय और दिन श्राद्ध न करै ॥

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितृन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥ तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २८३ ॥

नित्य श्राद्ध करने में असमर्थ द्विज, स्नान करके जल से पितरों का तर्पण करे तो उससे ही पितरों के नित्य श्राद्ध का सब फल मिलताहै॥

वसून्वदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहान्॥प्रपितामहांस्तथादित्यान्श्रुतिरेषा सनातनी ॥ २८४ ॥

पितरोंको वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य कहते हैं, यह सनातनी श्रुति है; तात्पर्य यह कि ध्यान के समय पितर आदिके ऐसे रूपकी भावना करै॥२८४॥

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ॥ विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥ २८५ ॥

नित्य विघस भोजन करनेवाला होय और नित्य अमृत भोजन करै, ब्राह्मणों को भोजन कराने से शेष रहेहुए को विघस और यज्ञ में शेष रहेहुए पुरोड़ाश आदि को अमृत कहते हैं ॥ २८५ ॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयज्ञिकम् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥

इति मनुस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यह मैंने तुमसे पंचयज्ञ की सम्पूर्ण विधि आद्योपान्त कही, अब ब्राह्मणों की शिलोञ्छादि मुख्य जीविका का उपाय कहते हैं, सुनो ॥२८६।

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवाद सहितो तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥

१ अपराह्णस्य श्राद्धांगतया विधानात् कथमयमप्रसक्तप्रतिषेध इति चेन्न । नायं प्रतिषेधः, स हि रागप्राप्तस्य वा स्याद्विधिप्राप्तस्य वा । नाद्यः नात्र रागतो नित्यस्य दर्शश्राद्धस्य प्राप्तत्वात् । विधिप्राप्तस्य निषेधे षोडशीग्रहणाविकल्पः स्यात् । तस्मात् पर्युदासोऽयम् । रात्र्यादिपर्युदस्तेतरकालेश्राद्धं कुर्यात्। अनुयाजितरयादिषु ये यजामह इति मन्त्रवत् (इतिकुल्लूकभट्टः) ननु चापराह्णविधानात्कृतो रात्र्यादिषु प्राप्तिः । अथ मतं विशेषवचनेनान्यत्राप्यस्तीति ज्ञापितम् । सत्यं पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यत इति यदपेक्षं विशेषवचनं तत्रैवास्तीति सामान्यज्ञानं प्रवर्त्तते तेन पूर्वाह्णएव कदाचित् । तस्यान्य उत्तरकालः (इति मेधातिथिः) ।

२ मृताहश्राद्धन्तु नियतत्वात् कृष्णपक्षेऽपि तिथ्यन्तरे न निषिध्यते । इति कुल्लूकभट्टः ।

अतएव पैठीनसिः—य एवं विद्वान् पितॄन्यजते वसवो रुद्रा आदित्याश्चास्य प्रीता भवन्ति ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य के समय गुरु के घर वास करके लौटे और फिर स्त्रीको ग्रहण करके अपने घर में रहै॥

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ॥ या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

फिर द्विज, बिनाविपत्ति के शिल उञ्छ आदि वैधवृत्ति (जिससे प्राणिमात्र का कुछ अनिष्ट न हो) और याचितादि वृत्ति (जिससे लोकका कुछ एक अनिष्ट आचरण होय) इन दोनों वृत्तियों से जीवन का उपाय करै ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ॥ अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ॥ ३ ॥

शास्त्रानुसार कुटुम्ब का पालन, नित्यनैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान आदि करने के लिये, शरीर को भोजन वस्त्र आदि क्लेश न देने के लिये ऋत आदि आगे कहेहुए अनिन्दित कर्मों से धन का संचय करै ॥ ३ ॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ।

ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत, सत्यानृत इन पांच प्रकार की वृत्तियों से जीविका करै, परन्तु श्वानवृत्ति दासभावको कभी स्वीकार न करै ४

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥

उञ्छ और शिलवृत्ति को ऋत जानै, बिना मांगे जो मिले वह अमृत है, याचना करेहुए भिक्षा के पदार्थ को मृत और खेती के काममें अनेकों प्राणियों की हानि होती है इसकारण उसको प्रमृत कहते हैं ॥ ५ ॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

व्यापार में और ऋण देने में प्रायः झूठ सत्य बोलना पड़ता है इसकारण उसको सत्यानृत कहते हैं, विपत्ति में इससे भी जीविका करलेय परन्तु सेवामें श्वान कैसा व्यवहार करना पड़ता है अतः इसको श्वानवृत्ति कहते हैं सो इसको कभी न करै ॥ ६ ॥

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥ त्र्यैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥

कुशूलधान्यक[३] वा कुम्भीधान्यक[४] अथवा कुटुम्ब में तीनदिन चलने लायक धान्य आदि इकट्ठा करै अथवा आनेवाले दूसरे दिन के निमित्त भी संग्रह न करै ॥ ७ ॥

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ॥ ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥

कुशूलधान्यक आदि तीन और संचय न करनेवाला एक, यह चारों गृहस्थ द्विजों में पहिले २ की अपेक्षा अगले२ क्रम से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि—जीविका का सङ्कोच करने पर पुण्य से मिलनेवाले स्वर्ग आदि को जीतलिया जाता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रव-

१ छोड़िहुए अन्न को एक २ दाना करके बीनलेनेका नाम उञ्छ है।

२ मञ्जरी (बाल) रूप से धान्य आदि ग्रहण करने का नाम शिल है।

३ जिस धान्यसे परिवार और भृत्योंसहित तीनवर्ष तक अच्छी प्रकार जीविका चलसके उसको कुशूलधान्यक कहते हैं।

४ जिस धान्य से इस प्रकार एकवर्ष जीविका चले उसे कुम्भीधान्यक कहते हैं।

र्तते ॥ द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥

इन सब गृहस्थों में जिसका बहुतसा परिवार हो वह ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत, सत्यानृत और कुसीद (व्याज) इन छः प्रकार की वृत्तियोंसे जीविका करै, थोड़े परिवार वाला उनमेंकी तीन वृत्तियोंसे जीविका करै, कोई यज्ञ कराने और करने से और कोई केवल पढाने से जीविका करते हैं ॥ ९ ॥

वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ॥ इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

जो शिल-उञ्छ से जीविका करै, यदि उन की किसी धन से होनेवाले कर्म को करने की शक्ति न होयतो केवल अग्निहोत्र करै और सदा केवल दर्श-पौर्णमास आदि यज्ञ करै १०॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन॥ अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ११ ॥

नानाप्रकार के परिहास और झूठी प्रियबातों से लोकों का मनोरञ्जन करके कभी जीविका न करै, तथा अपने गुण कहने आदि के पाप से रहित, गर्व आदिसे रहित और वैश्यआदि की वृत्तिके संयोग से रहित हो ब्राह्मणके लिये कहीहुई जीविकाको स्वीकारकरे ॥ ११ ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

सुख चाहनेवाला परम सन्तोष को धारकर अपने और परिवार के पालन तथा पञ्चयज्ञ करने में आवश्यक धनके सिवाय अधिकधन इकट्ठाकरनेकी तृष्णाको रोकै, उतने हीसे सन्तुष्ट होय, क्योंकि-सन्तोष ही सुखका कारण है और असन्तोष दुःखका कारण है ॥ १२ ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥

अतः स्नातक ब्राह्मण स्नातकव्रत का पालन करने के लिये, इन कहीहुई वृत्तियों मेंसे किसी वृत्ति से जीविका करै तो स्वर्गकी साधन आयु और यश देनेवाले इनव्रतोंको धारणकरै

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

नित्य निरालस होकर अपने आश्रमका वेद में कहा हुआ वा स्मृति में कहा हुआ कर्म करै, क्योंकि-यथाशक्ति उनकर्मोंको करने से हृदयकी पवित्रता होकर ईश्वर का साक्षात्कार होता है अतएव परमगति (मुक्ति) को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

नेहेतार्थान्प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ १५ ॥

गाने बजाने आदि से और अयोग्य को यज्ञ कराने से वा सम्पत्ति होतेहुए अथवा धनादि न होतेहुए अन्य प्रकारसे जीविका का निर्वाह होनेपर पतित आदि किसीसे धनका संग्रह न करै ॥ १५ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥ अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

रूपरस आदि इन्द्रियों के विषयों में कामनावश भोगने को अतिआसक्त न होय, सब विषय नाशवान् हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष के विरोधी हैं ऐसा मनमें विचार कर विषयों से बचै ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथा तथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १७ ॥

वेदाभ्यासके विरोधी सब विषयोंको त्यागै, वेदाभ्यासमें विघ्न न करके जैसे तैसे विहितरूपसे जीविका करै, ऐसा करना ही ब्राह्मणशरीरकी कृतार्थता है ॥ १७ ॥

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥ वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

अपनी अवस्था, कर्म, धन, वेदपाठ और कुलाचार के अनुसार बेष, वाणी और बुद्धि से व्यवहार करता हुआ इसलोकमें विचरै १८

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥ नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥

वेदके अविरुद्ध, शीघ्र बुद्धि बढ़ानेवाले व्याकरणादिशास्त्र, अर्थशास्त्र, वैद्यकादिशास्त्र और वेदके अर्थका बोध करानेवाले निगमादि शास्त्रोंका सदा विचार करै ॥ १९ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥ तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ २० ॥

मनुष्य,जैसे२ शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यास करता है तैसे २ शास्त्रको उत्तमतासे जानता है और उससे उसको अन्य शास्त्रोंका भी ज्ञान होता है ॥ २० ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥ नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥

ऋषियज्ञ, देवयज्ञ,भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ इन सब यज्ञों को सदा अपनी शक्ति के अनुसार छोड़ै नहीं ॥ २१ ॥

एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥ अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

कोई यज्ञशास्त्र को जाननेवाले गृहस्थ, इन पाँच महायज्ञों का बाहरी आडम्बर न करके अपनी बुद्धीन्द्रिय में ही ज्ञान आदिका संयमन करके यज्ञ करते हैं अर्थात् इन्द्रिय–संयमपूर्वक उनको यथाविषय में लगाते हैं ॥ २२॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥ २३ ॥

कितने ही देदवेत्ता गृहस्थ,वाक्य और प्राणवायुमें ही यज्ञका अक्षय फल मिलता है ऐसा जानकर सदा पढाने और ईश्वर की महिमा गाने आदि वाक्य में प्राण का होम करते हैं और ध्यान धारणा आदि से प्राणमें वाक्य का होम करते हैं ॥ २३ ॥

ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

और कितने ही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, सदा ब्रह्मज्ञान से इन सब यज्ञों को करते हैं, वह, उपनिषद्रूप ज्ञाननेत्र से देखते हैं कि–ज्ञान ही इन सब यज्ञों का मूल कारण है ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २५ ॥

उदितहोमकारी दिन और रात्रि के प्रथम में और अनुदितहोमकारी दिन और रात्रिके अन्त में सदा अग्निहोत्र करै । कृष्णपक्ष पूरा होनेपर दर्शयज्ञ और पूर्णिमा में पौर्णमासयज्ञ करै ॥ २५ ॥

सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥ पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते

सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

द्विज, इकट्ठा कराहुआ अन्न निवड़कर नया अन्न उत्पन्न होनेपर आग्रहायण याग करै, ऋतु पूर्णहोने पर चातुर्मास याग करै, अयन से पहिले पशुयाग करै और सम्वत्सर पूर्ण होने पर सोमरस से होनेवाले अग्निष्टोम आदि याग करै ॥ २६ ॥

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः॥ नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥

साग्निक द्विज, यदि बहुतकाल जीने की इच्छा करै तो नये अन्न से याग बिना करे वा पशुयाग बिनाकरे नवीन अन्न वा मांस-भोजन न करै ॥ २७ ॥

नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः

क्योंकि—साग्निक ब्राह्मण यदि नये अन्न और पशुमांस से अग्नि का पूजन नहीं करता है तो अग्नि, नयेअन्न और नयेमांसके लोभी के प्राणों को भक्षण करने की इच्छा करताहै॥

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥

शक्ति के अनुसार भोजन, बिस्तर, जल और फलमूलादिसे सत्कार को न पाकर कोई अतिथि इनके घर न बसै, अर्थात् यथाशक्ति अतिथि का सत्कार अवश्य करै ॥ २९ ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥

पाखण्डी, निषिद्ध जीविका करनेवाले, बिड़ालव्रती, बकव्रती, बेदशास्त्र में श्रद्धाहीन बेदविरोधी तर्क करनेवाले, यह यदि अतिथि के योग्य समयपर आवैं तोभी इनसे सम्भाषणभी न करै (परन्तु श्वाच आदिकी समान अन्न देनेमें बाधा नहीं है) ॥३०॥

वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान्गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥

वेदविद्यास्नातक, व्रतस्नातक और वेदविद्या तथा व्रत दोनोंमें स्नातक गृहस्थ श्रोत्रियोंकी हव्य कव्यसे पूजा करै, इनसे विपरीतों का त्याग करै ॥ ३१ ॥

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

जो पाक नहीं करते हैं ऐसे ब्रह्मचारी आदि को गृहस्थ अपनी शक्तिके अनुसार अन्नादि देय, और जैसे कुटुम्बको पीड़ा नहो तिसप्रकार वृक्षादि पर्यन्त सकल प्राणियोंको भी जल आदि विभाग करके देय ॥ ३२ ॥

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ॥ याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥ ३३ ॥

भूँखसे कातर होताहुआ स्नातक पहिले क्षत्रिय राजा से, यजमानसे वा शिष्यसे धन की याचना करे, दूसरेसे याचना न करै ऐसी मर्यादा है[1] ॥ ३३ ॥

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥

स्नातक विप्र प्रतिग्रह आदि से क्षुधा को शान्त करने में समर्थ होय तो किसीप्रकार क्षुधासे कातर न होय और बिभव होनेपर

---

१ परन्तु इनके न होनेपर वा अशक्त होनेपर अन्य द्विजातिमात्रसे याचना करसक्ता है ।

पुराने वा मैले वस्त्र न पहिरे ॥ ३४ ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लांबरः शुचिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥

स्नातक, केश, नख, डाढ़ी, मूछ कटवादेय, इन्द्रियों को वश में रक्खे, श्वेतवस्त्र पहिरे, भीतर बाहर पवित्र रहे, वेदाभ्यास से युक्त रहे और सदा अपने हित करने में लगारहै ३५

वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् । यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

स्नातक बांस का दण्डा धारण करे, और जल से भरा कमण्डलु, यज्ञोपवीत, कुशों का मुट्ठा और मनोहर सुवर्ण के कुण्डल धारण करे ॥ ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन । नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥

सूर्य जब उदय होय वा अस्तहोय, वा राहु से ग्रसित होय, अथवा छिद्रादियुक्त होय वा जल में प्रतिबिम्बित होय वा आकाश के मध्य में पहुँचाहोय तो उसको कभी न देखै ॥ ३७ ॥

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति । न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥

गौके बच्चों के बाँधने की रस्सी को न लाँघै, मेघवर्षतेहुए में दौड़े नहीं और जलमें अपनी परछाहीं न देखै; यह निश्चित कर्त्तव्य है॥३८॥

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् । प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥

मट्टी का ढेर, गौ, पाषाणमय देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराया और बहुत बड़े वृक्ष इन सब की प्रदक्षिणा करै ॥ ३९ ॥

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने । समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

काम से अत्यन्त उन्मत्त होने परभी रजोदर्शनमें निषिद्ध तीनदिन स्त्रीसमागम न करै और उसके साथ एक शय्यापर शयन भी न करै ॥ ४० ॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः । प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥

जोपुरुष रजस्वला स्त्री से समागम करता है उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और परमायु सब नष्ट होजाते हैं ॥ ४१ ॥

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् । प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

उस रजस्वला स्त्री से जो समागम नहीं करता उसकी बुद्धि, तेज, बल, चक्षु और परमायु यह सब बढ़ते हैं ॥ ४२ ॥

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् । क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥ ४३ ॥

स्त्री के साथ एकपात्र में भोजन न करै, भोजन करतेहुए, छींकतेहुए, जँभाई लेतेहुए और यथासुख बैठतेहुए में स्त्रीको न देखै ॥ ४३ ॥

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् । न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥ ४४ ॥

अपने तेज की इच्छा करनेवाला श्रेष्ठ द्विज अपने नेत्रों में काजल आँजतीहुई, तैलआदि मलतीहुई, नङ्गी, सन्तान को उत्पन्नकरती हुई स्त्री को न देखै ॥ ४४ ॥

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥

एक वस्त्र पहिनकर भोजन न करै, नङ्गा होकर स्नान न करे, मार्ग, में भस्म के ढेर में वा गोठ में पेसाब न करे ॥ ४५ ॥

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

हलजोतीहुई भूमि में, जल में, चितामें, पर्वतपर, टूटेहुए देवमंदिर में और बँबई में कभी मल मूत्र न करै ॥ ४६ ॥

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥

जीवसहित गड्ढों में, चलते में, खड़ा होकर, नदी के तटपर और पर्वत के शिखरपर कभी मल मूत्र का त्याग न करै ॥ ४७ ॥

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

आंधीकी पवनसे उड़हुए तृण काठ, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गौ इनकी ओरको देखता हुआ कभी मल मूत्र न करे ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥

काठ, ढेला, पत्र वा तिनुकों आदिसे भूमिको ढककर, शरीरको ढककर, मस्तकपर वस्त्र लपेट कर, मुख जुठा न रखकर और मौन होकर मल मूत्रका त्याग करै ॥ ४९ ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥ ५० ॥

दिनमें और दोनों सन्ध्या के समय उत्तर को मुख करके और रातमें दक्षिणको मुख करके मल मूत्रका परित्याग करै ॥ ५० ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ ५१ ॥

रात्रिके समय वृक्षादिकी छायामें वा अन्धकारमें और दिनके समय कुहर आदिके अन्धकार में दिशा बिदिशाका ज्ञान न होने पर, अथवा सिंहसर्पादि हिंसक जन्तुओंसे प्राणों को भय होनेपर चाहे जिधरको मुख करके मल मूत्र का त्याग करै ॥ ५१ ॥

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

अग्नि, चन्द्रमा, जल, ब्राह्मण, गौ और घूमते हुए वायुकी ओर को मुखकरके विष्ठा वा मसाब करने से बुद्धि नष्ट होजाती है इस कारण ऐसा कभी न करै ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ॥ नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥

अग्निको फूंकमारकर न जलावे, मैथुनके सिवाय और समय स्त्री को नङ्गी न देखै, अग्नि में अपवित्र वस्तु न डालै, दोनों चरण अग्नि की ओरको न तपावै ॥ ५३ ॥

अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

१ अर्थात् भोजन के समय कोई पवित्र वस्त्र ओढ लेय वा कन्धे पर अंगोछा डाल लेय ॥

२ पर्वतपर रहनेवाले तहां के पत्थर आदि के ऊँचे टीले पर।

३ परन्तु आर्त्त को निषेध नहीं है।

पलँग आदि के नीचे अग्नि का पात्र न रक्खै, अग्नि को उलाँघे नहीं, पैरों की ओर अग्नि न रक्खै और जिससे प्राणों को व्यथा होय ऐसा कोई कार्य न करै ॥ ५४ ॥

नाश्नीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ॥ न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥ ५५ ॥

संध्याके समय भोजन न करै, बिना प्रयोजन दूसरे ग्राम को न जाय, असमय निद्रा न लेय, भूमिमें लकीरें न करै, अपनी पुष्पमालाको आप न उतारे ॥ ५५ ॥

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

जलमें पेशाब, विष्ठा वा थूक खखार न त्यागै, विष्ठा मूत्रमें सना वस्त्र जलमें घोलकर न धोवै और रुधिर वा किसी प्रकारका विष न डालै ॥ ५६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥ ५७ ॥

जिस घरमें बसनेवाले वंशका नाश होगया हो उस सूनेघर में इकला न सोवै, अपने से अधिक विद्यावान् वा धनी को सोते में न जगावै, रजस्वला स्त्री के साथ वार्त्तालाप न करै, यज्ञकर्ममें, ऋत्विक्रूप से बिना बुलाया हुआ न जाय परन्तु देखने को जाय ॥५७॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

अग्निघरमें, गोठमें, बहुत से ब्राह्मणों के समीप में, वेदपढ़ते में, भोजन के समय, वस्त्र में से दहिना हाथ बाहर निकाल लेय॥५८॥

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ॥ न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद् बुधः ॥ ५९ ॥

जल पीतीहुई गौको वा दुहने से अन्य समय में दूध पीतीहुई बछिया को रोकै नहीं, अथवा यदि दूसरे की बछिया दूसरेकी गौका दूध पीती होय तोभी गौके स्वामीसे न कहै और बुद्धिमान् आकाश में इन्द्रधनुष देखकर किसी को दिखावै नहीं ॥ ५९ ॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ॥ नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥

जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते हों तहां न बसै, जिस ग्राममें अनेक पुरुष असाध्य रोगसे पीडित हों तहां बहुत दिन न रहै, कभी दूर के मार्ग को इकला न जाय और बहुत समय तक पर्वतपर न बसै ॥ ६० ॥

न शूद्रराजे निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ॥ न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥

जिस देश का राजा शूद्र हो, जिस देश में भीतर बाहर अधर्मी भरे हों, जो देश पाखण्डियों से घिरा हो और जिस देश में चण्डाल आदि उपद्रव करते हों तहाँ निवास न करै॥६१

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ॥ नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

जिसमें से चिकनाई निकलगई हो ऐसी खल आदि न खाय, अत्यन्त भोजन न करै, सूर्योदय के समय वा सूर्यास्त के समय भोजन न करै तथा पूर्वदिन में अतितृप्त होकर फिर सायङ्काल को न खाय ॥ ६२ ॥

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना

पिबेत् ॥ नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥

जिससे इस लोक, परलोक का कोई फल न हो ऐसी वृथा चेष्टा न करै, अञ्जलि से जल न पिये, जाँघपर रखकर कोई वस्तु न खाय, बिना प्रयोजन किसीसे कोई बात न बूझै ॥ ६३ ॥

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ॥ नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ ६४ ॥

शास्त्र से निषिद्ध नृत्य वा गान न करै, बाजे न बजावै, हाथ से भुजाओं पर ताल न देय वा दाँत से दाँत न बजावै, उत्कण्ठित होकर गर्दभ आदि की समान शब्द न करै६४॥

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥ न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥

काँसी के पात्र में कभी चरण न धोवै, टूटेहुए पात्र में वा जिस पात्र में खाने से ग्लानि होय उसमें भोजन न करै ॥ ६५ ॥

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥६६॥

दूसरे का बर्ता हुआ जूतेका जोड़ा, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, फूलों की माला और कमण्डलु (तुम्बई) धारण न करै ॥ ६६ ॥

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः ॥ न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥

बिनासधे, भूँख वा रोगसे पीडित, सींगटूटे, आंखफूटे, खुरटूटे वा पूँछकटे ऐसे बैल, घोड़े आदि की सवारीपर कहीं को न जाय ॥६७॥

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥

खूब सधेहुए, शीघ्रगामी, श्रेष्ठ लक्षणोंवाले, सुन्दरवर्णके, सुन्दर मूर्तिवाले बैल, घोडे आदि की सवारी परही सदा गमन करै, उसको चाबुक से अधिक पीड़ा न देय ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥

प्रातःकाल उदयहुए सूर्य के तेज, चिता के धुँए, फूटे टूटे आसन को त्यागदेय, बिना बढ़े नख रोम न कटावै और दाँतोंसे नख न उखाडै॥

न मृल्लोष्ठं च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम् ॥ न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥ ७० ॥

मट्टी वा ढेले को निष्प्रयोजन न मलै, नखों से तिनके न तोडै, कोई निरर्थक कार्य मन में न विचारै, जैसे अजीर्ण में भोजन करने से दुःख होता है ऐसा अन्तमें दुःख देनेवाले कोई काम न करै ॥ ७० ॥

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य, ढेले मलता है, नखों से तृण तोड़ता है, दाँतोंसे नख तोड़कर खाता है, दूसरे की चुगली खाता है वा भीतर बाहरसे मलिन रहता है वह शीघ्र नाशको प्राप्त होजाता है॥७१॥

न विगर्ह्यकथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ॥ गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

शास्त्र की वा व्यवहार की वार्ता गर्व के साथ न कहै, केशोंमें बाहर पुष्पमाला धारण

१ मल्लविद्या के अभ्यासियों को निषेध नहीं है।

न करै, गौओंकी वा बैलोंकी पीठपर चढकर जाना सर्वथा ही निन्दित है[1] ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वावृतम् । रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥

परकोटे से घिरे ग्राम में वा स्थान में, द्वार के सिवाय अन्य स्थान में को वा परकोटे को लाँघकर न जाय, रात में वृक्षों की मूलों को दूर से ही त्याग देय ॥ ७३ ॥

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् । शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥ ७४ ॥

फाँसों से कभी न खेलै, पहरीहुई जूती अपने आप लेकर न चलै, सोताहुआ वा हाथ में लेकर अथवा आसनपर रखकर भोजन न करै ॥ ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ । न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ७५ ॥

सूर्य के अस्त होनेपर तिल मिलाहुआ कोई पदार्थ न खाय, नंगाहोकर शयन न करै और जूठे मुख कहीं न जाय ॥ ७५ ॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् । आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

गीले पैर भोजन करै परन्तु गीले पैर शयन न करै, क्योंकि गीले पैर भोजन करनेवाला दीर्घ आयु पाता है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् । न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥

जहाँ आँख से दिखाई न देय ऐसे वृक्षलतादि से भरेहुए दुर्गमस्थान में न जाय, मलमूत्र पर दृष्टि न डालै और दोनों भुजाओं से तैरकर नदी के पार न होय ॥ ७७ ॥

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः । न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

दीर्घकाल जीने की इच्छा करनेवाला, केश, भस्म, हड्डी, मट्टी के पात्र का ठीकरा, कपास का बिनौला और भूसी के ऊपर न बैठै ॥ ७८ ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः । न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥

पतित, चाण्डाल, पुक्कस[2], मूर्ख, धनादिका घमण्डी, धोबी आदि नीचजाति और अन्त्यावसायी[3] इनके साथ वृक्षादिकी छायामें भी न बैठै ॥ ७९ ॥

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

शूद्र का मन्त्री न बनै, सेवकके सिवाय दूसरे शूद्र को जूठन और हविष्कृत[4] न देय, शूद्रको अपने आप कुछ धर्मोपदेश न देय अथवा किसी व्रतका भी उपदेश न देय ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् । सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥ ८१ ॥

जो पुरुष, ब्राह्मण के व्यवधान के बिना

१ परन्तु बैलों की खैंचीहुई गाड़ी आदि में बैठकर जाना निन्दित नहीं है ।

२ ब्राह्मण से शूद्रामें उत्पन्न हुई सन्तान का नाम निषाद और तिस निषादसे शूद्रा में जो सन्तान होती है उसको पुक्कस कहते हैं ।

३ निषाद की स्त्री में चण्डाल से उत्पन्न सन्तान को अन्त्यावसायी कहते हैं ।

४ जिस हव्य (साकल्य) का कुछ भाग होम करागया हो उसको हविष्कृत कहते हैं ।

स्वयं शूद्रको धर्मोपदेश वा प्रायश्चित्तादि व्रतका उपदेश देता है वह उस शूद्रके साथ असंवृत नामक नरक में निमग्न होता है ॥ ८१ ॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥ न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥ ८२ ॥

दोनों हाथ मिलाकर अपना शिर न खुजलावै, जूठे मुख शिरको न छुए, समर्थ होयतो नित्य नैमित्तिक कर्म में शिर से गोता लगाये बिना स्नान न करै ॥ ८२ ॥

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥

क्रोधमें होकर किसी के केश न पकड़े वा मस्तक पर प्रहार न करै, शिर में तेल लगाकर स्नान करनेवाला दूसरे किसी अङ्गको तेल से स्पर्श न करै ॥ ८३ ॥

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

जो क्षत्रिय की सन्तान न हो ऐसे राजा से प्रतिग्रह न लेय, पशु मारकर मांस बेचनेवाले का, तेलीका, शराब बेचनेवाले का और वेश्या की आमदनी से जीविका करनेवाले का प्रतिग्रह न लेय ॥ ८४ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ ८५ ॥

दश मांस बेचनेवालोंका दोष एक तेलीमें, दश तेलियों की समान दोष एक शराब बेचनेवाले कलाल में, दश कलालों की समान दोष वेश्या के अंश से जीविका करनेवाले एक पुरुष में, और वेश्याका धन खानेवाले दश पुरुषोंका दोष क्षत्रियभिन्न एक राजा में होता है ॥ ८५ ॥

दश सूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥ तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

जो पुरुष, अपनी जीविका के लिये दशसहस्र सूना (पशुमारने के स्थान) नियत करता है, अक्षत्रिय राजा को उसकी समान ही जानै अतएव उससे प्रतिग्रह लेना घोर पापकारी है॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः ॥ स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

कृपणस्वभाव, शास्त्रविरुद्ध मार्गको स्वीकार करनेवाले राजाके स्थान में जो पुरुष प्रतिग्रह करता है वह क्रम से इन इक्कीस नरकों को भोगता है ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ ८८ ॥

तामिस्र (अन्धकार), अन्धतामिस्र (घना अन्धकार) रौरव (तपोभूमि), महारौरव, कालसूत्र, (जहाँ कुम्हार के चाक के से डोरेसे काटाजाय) महानरक (जहाँ सबप्रकार की पीड़ा होय)॥

संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥ संघातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥

सञ्जीवन (जिसमें जीवित रखकर फिर मारतेहैं), महावीचि (जिस में अत्यन्त जल की तरङ्गें हैं), तपन (अग्नि से जलानारूप) सम्प्रतापन (कुम्भीपाक जिसमें घड़े में डालते हैं) संघात (थोड़ेस्थान में बहुतों का वास) काकोल (जिस में काकभक्षण करै), कुड्मल (जिसमें रस्सी से कसाजाय) पूतिमृत्तिक(जिसमें विष्ठाकी गन्ध कैसी मृत्तिका होय)॥८९॥

लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ॥ असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥

लोहशङ्कु (जिसमें सूई छेदीजायँ), ऋजीष (तपेहुए तवोंपर डालना), पन्थान (बारम्बार गमनागमन), शाल्मली (जिसमें सैमल के काँटेआदि छेदेजायँ), नदी (वैतरणी आदि जो नदियें दुर्गन्ध रुधिर से भरी हैं, जिनमें हड्डीकेशरूप तरङ्गें हैं, जल उष्ण है और वेगसे जाती हैं उनमें डूबना), असिपत्रवन (जिसमें तलवारके सी धार के पत्ते हों), और लोहदारक (जिसमें बेड़ी डाली जायँ) ॥ ९० ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥ ९१ ॥

खोटेदान के दोष को जाननेवाले ब्राह्मण, जो कि परलोक में परममङ्गल चाहते हैं वह खोटे दानको सकल नरकों का हेतु जानकर राजा से भी प्रतिग्रह न लें ॥ ९१ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ॥ कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

ब्राह्ममुहूर्त्त में जागे, उससमय परस्पर विरुद्ध न हों ऐसे धर्म अर्थके अनुष्ठानका विचार करे जैसे धर्म अर्थके अनुष्ठान में जैसा शरीरको क्लेश होता है उसकाभी विचार करे यदि थोड़े से धर्म के निमित्त शरीरको अधिक क्लेश हो या जिस अधिक क्लेशदायक सेवादिसे थोड़ासा धन मिले ऐसे धर्म और अर्थ को त्यागदेय अर्थात् बिना विचारे कुछ न करे और वेद के तत्त्वार्थरूप परब्रह्म का विचार करे ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ॥ पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९३ ॥

फिर उठकर वेगहोनेपर मलमूत्र का त्याग कर पवित्र होकर सावधानी से सूर्योदय से कुछ काल अनन्तरतक गायत्री का जप करता हुआ प्रातःकालकी सन्ध्या करे। (इसीप्रकार सायंसन्ध्याका भी योग्य समयमें आरम्भकरके तारों का उदय होनेपर समाप्तकरदेय)॥९३॥

ऋषयो दीर्घसंध्यात्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

ऋषि दीर्घकाल सन्ध्या करने से दीर्घ आयु बुद्धि, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज को प्राप्तहुए अतः दीर्घ आयु आदि चाहनेवाले अवश्य सन्ध्या करें ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ॥ युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥ ९५ ॥

श्रावणमास की पूर्णिमा वा भादों की पूर्णिमा के दिन उपाकर्म नामक गृह्य में कहा हुआ कर्म विधिपूर्वक समाप्त करके सावधानी से साढ़ेचार मासतक वेदों को पढ़े ॥ ९५ ॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ॥ माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ९६ ॥

---

१ रात्रिका नाम त्रियामा है अर्थात् तीन पहरकी रात होती है उसका पिछला पहर ब्राह्ममुहूर्त्त है, उसमें निद्राको त्यागदये क्योंकि-वह समय वेदाभ्यास का है जैसा कहा है--प्रदोष पश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् । यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

२ वृथा संकल्प विकल्प न करे, पुरुषोंका यह स्वभाव होता है कि--बाहरी व्यापार न होनेपर उनके मनमें पराये धनकी अभिलाषा आदि अनेकों संकल्प विकल्प होते हैं उनको न करे॥

इसप्रकार वेद अध्ययन करता हुआ द्विज साढ़ेचार मास के अनन्तर पुष्यनक्षत्र में ग्राम से बाहरजाकर वेदों का गृह्य में कहाहुआ उत्सर्ग नामक कर्म करे अथवा माघमास में शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन पूर्वाह्न में उत्सर्ग कर्म करै, अर्थात् भाद्र में उपाकर्म करनेवाला माघमें उत्सर्ग करे ॥ ९६ ॥

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ॥ विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥

इसप्रकार ग्राम के बाहर शास्त्रानुसार सब वेदों का उत्सर्ग कर्म करके पक्षिणी अर्थात् उत्सर्ग के दिनरात और उससे अगले दिन अथवा केवल उत्सर्ग के दिन रात वेद का अध्ययन न करै, विद्यार्थी के लिये दिन रातका अनध्याय जानै ॥ ९७ ॥

अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

उत्सर्ग के अनध्याय के अनन्तर मन्त्र ब्राह्मणरूप वेदको शुक्लपक्ष में और शिक्षा कल्प आदि वेद के अङ्गों को कृष्णपक्ष में पढ़ै ९८

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ॥ न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥ ९९ ॥

अप्रकटरूपसे वेद न पढ़ै, शूद्र के समीप में वेद न पढ़ै, रात्रि के अन्तिम पहर में उठकर वेदपाठ समाप्त होने पर फिर न सोवै ॥९९॥

यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्म छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥ १०० ॥

फिर प्रतिदिन जैसी विधि कही है उसके अनुसार उष्णिक् आदि छन्दोबद्ध सब मंत्रों को पढ़ै, किसी प्रकारकी विपत्ति न होय तो शक्ति होने पर मन्त्रभिन्न वेद और मन्त्ररूप वेद का द्विजाति विधिपूर्वक पाठ करै ॥१००॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १०१ ॥

जो शिष्य इस विधि से पढ़ै वा जो गुरु पढ़ावै यह दोनों आगे कहेहुए अनध्यायों के दिनों को सर्वथा त्याग देवैं ॥ १०१ ॥

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने ॥ एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ १०२ ॥

वर्षाकाल में रात्रि के समय वायु के चलने की सनसनाहट कानों में सुनाई देती हो, दिन में धूलि उड़ानेवाला वायु चलता हो उससमय को अनध्याय जानै ॥ १०२ ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ॥ आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ १०३ ॥

बिजली और गर्जन के साथ वर्षा होनेपर वा इधर उधर उल्कापात होनेपर जिस समय उसका आरम्भ हो तब से दूसरे दिनके उसी समय तक अनध्याय जानै ॥ १०३ ॥

एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ॥ तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ १०४ ॥

प्रातःकाल और सायंकाल होम के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करते समय यदि यह बिजली आदि एक साथ प्रकट होजावैं तो वर्षाकालमें अनध्याय जानै, वर्षा से भिन्नकाल में जिस समय होम की अग्नि को प्रज्वलित करै तब मेघ होनेपर भी अनध्याय जानै, वर्षाकाल में नहीं और वर्षा से भिन्नकाल में बिजली वज्र

युक्त वर्षामात्र में भी अनध्याय जानै ॥१०४॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतानकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ १०५ ॥

वर्षा और वर्षाभिन्न समय में आकाश में के उत्पात का शब्द होनेपर, भूकम्प होने पर चन्द्रसूर्यादि के उपसर्ग में अकालिक अनध्याय जानै ॥ १०५ ॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ यथा दिवा ॥ १०६ ॥

होम के लिये अग्नि जलने पर अर्थात् संध्या के समय बिजली और गर्जने का शब्द होय तो सज्योति अनध्याय होता है अर्थात् दिन होय तो दिनमात्र का और रात्रि होय तो रात्रिमात्र का अनध्याय होता है परन्तु वर्षाकालमें दिन रात्रि का अनध्याय जानै १०६

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ १०७ ॥

धर्मकी अत्यन्त इच्छा करनेवालों का ग्राम, नगर वा दुर्गन्धयुक्त स्थान में नित्य अनध्याय है अर्थात् वह ऐसे स्थान में न रहैं॥ १०७ ॥

अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ ॥ अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ १०८ ॥

जिस ग्राम में का मुरदा निकलकर न गया हो तिस ग्राम में, अधर्मी के समीप में, रोने का शब्द कान में पड़ने पर और बहुत पुरुषों का जमघट होने पर अनध्याय जानै ॥१०८॥

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ॥ उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥ १०९ ॥

जल में, मध्यरात्रि में, चार मुहूर्त्त तक, मल मूत्र का त्याग करते समय, जूठे मुख, अथवा श्राद्ध में भोजन करने के दिनरात्रि में मन में भी वेद का चिन्तवन न करै ॥ १०९ ॥

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ॥ त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११० ॥

विद्वान् ब्राह्मण एकोद्दिष्ट श्राद्ध का निमन्त्रण मानकर उस दिन से तीन दिन तक वेद न पढ़ै, राजा के पुत्र होनेपर वा सूर्य, चन्द्रमा का ग्रहण होनेपर तीन दिन अनध्याय होता है॥ ११० ॥

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥ विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥ १११ ॥

एकोद्दिष्ट भोजन करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण के शरीर में जबतक श्राद्ध के केशर चन्दनादि का गन्ध और लेपन रहै तबतक वेद न पढ़ै ॥

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥ नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ११२ ॥

शय्या पर पड़कर, आसन पर चरण रखकर, घुटुएडालकर, मांस भोजन करके वा जन्ममरणके अशौच का अन्न खाकर वेद न पढ़ै ॥ ११२ ॥

नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः ॥ अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ ११३ ॥

कुहर होने पर, बाण का शब्द होनेपर प्रातः और सायं संध्या के समय तथा अमावास्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी और अष्टमी इन सब तिथियों में अनध्याय जानै ॥ ११३ ॥

अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति

चतुर्दशी॥ब्रह्माष्टमीपौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ११४ ॥

अमावस्या वेद पढ़ानेवाले को नष्ट करती है, चतुर्दशी शिष्य को नष्ट करती है, अष्टमी और पूर्णिमा वेद को भुला देती हैं, अतः पढ़ने पढ़ाने में इन तिथियों को त्याग देय ॥११४॥

पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ॥ श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेद्द्विजः ॥ ११५ ॥

धूलि बर्षनेपर, दिशाओं का दाह होनेपर, गीदड़, कूकर, गदहा, ऊँट इनके शब्द करने पर और इनकी पंक्ति होने पर वेद का पाठ न करे ॥ ११५ ॥

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ॥ वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ११६ ॥

श्मशान में, ग्राम के समीप में, गोठ में, स्त्रीसंसर्ग में पहिरे हुए वस्त्रों को पहिन कर और श्राद्ध का पक्वान्न खाकर वेद न पढ़े ॥ ११६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥ ११७ ॥

श्राद्धका द्रव्य गौ घोड़ा आदि प्राणि हो वा वस्त्रमाला आदि अप्राणि सो उसको प्रतिग्रह के समय दाहिने हाथ में लेने सेही अनध्याय करे, क्योंकि हाथ ही ब्राह्मण का मुखरूप है अतः हाथ में लेना ही भोजन के समान होताहै ११७

चोरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते ॥ आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ ११८ ॥

चोरों की दुष्टतासे ग्राम के घबड़ानेपर, घर जलने आदि से व्याकुल होनेपर और अन्तरिक्ष के वा भूलोक के आश्चर्यकारी उत्पात होने पर उतने ही काल को अनध्याय जाने॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥ अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ ११९ ॥

उपाकर्म में और उत्सर्ग में तीन रात का अनध्याय कहा है[१], अष्टका[२] में एक दिन रात का अनध्याय और ऋतुओं के अन्तिम दिनों में भी एक दिनरात का अनध्याय जाने११९॥

नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥ १२० ॥

घोड़ेपर, वृक्षपर, हाथीपर, नौकापर, गदहे पर, ऊँटपर और गाड़ीमें बैठकर तथा ऊपर देश में स्थित होकर वेद न पढ़े ॥ १२० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे॥ न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूक्तके ॥ १२१ ॥

बातों का कलह होनेपर, दण्ड आदि से युद्ध होपर, सेना के समीप, संग्रामके स्थानमें, भोजन करतेही, भोजन करे अन्नका पाक बिना हुए वमन करके वा खट्टी डकार आने पर वेद न पढ़े ॥ १२१ ॥

अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ॥ रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ १२२ ॥

पढ़ने के निमित्त, अतिथि से अनुमति बिना लिये वा अतिवेग से पवन चलनेपर वा

१ पहिले उत्सर्गमें पक्षिणी अनध्याय है, विशेषता यह है कि-धर्मका अत्यन्त पुण्य चाहनेवालोंके लिये तीनरात्रि का अनध्याय है।

२ अगहनकी पौर्णमासीके अनन्तर कृष्णपक्षकी तीन अष्टमी का नाम अष्टका है।

शरीर में से खून बहनेपर अथवा शस्त्र से घायल होनेपर वेद न पढ़े ॥ १२२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन। वेदस्याधीत्य वाऽप्यन्तमारण्यकमधीत्य च

सामवेद के पढ़ने की ध्वनि होनेपर, ऋग्वेद वा यजुर्वेद कभी न पढ़े, एक वेदको समाप्त करके आरण्यक नाम वेदके अंशको पढ़कर उस दिन रात में दूसरे वेदको न पढ़े॥१२३॥

ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः॥ सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः[1] ॥ १२४ ॥

ऋग्वेद में प्रायः देवताओं की स्तुति है अतःवह देवदैवत्य (देवताप्रधान) है, यजुर्वेद में प्रायः मनुष्यों का कर्मानुष्ठान कहा है अतः वह मानुष (मनुष्यप्रधान) है और सामवेद में प्रायः पितृकर्म का वर्णन है अतः वह पितृदैवत कहाता है इसकारण सामवेदके पढ़ने के अनन्तर ऋग्वेद वा यजुर्वेद की ध्वनि अशुचि सी होती है अतः उसको न पढ़े ॥१२४॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमशः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ १२५ ॥

विद्वान् पुरुष, तीनों वेदों के इसप्रकार देवता, मनुष्य और पितरों को अधिष्ठाता जान कर पहिले तीनों वेदों की सारभूत प्रणव और व्याहृतियों सहित गायत्री को पढ़कर पीछे वेद को पढ़ते हैं तात्पर्य यह है कि–प्रणवव्याहृतिका उच्चारण विनाकरे अनध्याय होता है १२५॥

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः॥ अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥

वेद पढ़ने के समय शिष्य और गुरु के बीच में को गौ आदि पशु, मेंढक, बिलाव, कुत्ता, सर्प, नौला और चूहा निकलजाय तो एक दिन रातका अनध्याय जाने ॥ ११६ ॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः॥ स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥ १२७ ॥

अध्ययन का स्थान जूठ आदि से अपवित्र हो या आप स्वयं अपवित्र हो तो द्विज इन दो अनध्याय को प्रयत्न से त्यागे ॥ १२७ ॥

अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ १२८ ॥

स्नातक द्विज, अमावस्या, अष्टमी, पूर्णिमा, चतुर्दशी इन सब तिथियों में और ऋतुकाल में भी स्त्रीसमागम न करे ॥ ११८ ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥ न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १२९ ॥

भोजन करके अपनी इच्छा से स्नान न करे, पीडित होनेपर और रात्रि के बीच के दोपहरों में भी स्नान न करे, बहुत से वस्त्र पहिरे हुए स्नान न करे और जिसका हाल न मालूम हो उस जलाशय में भी स्नान न करे ॥ १२९ ॥

देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ॥ नाक्रामेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

पाषाण आदि की देवप्रतिमा, पिता, गुरु, राजा, स्नातक, आचार्य भूरा पुरुष और यज्ञ में दीक्षित इनकी और चाण्डाल आदि की छाया को जानकर न लाँघे ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च

[1] नात्र तदीयस्य ध्वनेरशुचित्वं परमार्थतो विज्ञेयं, किं तर्हि, यथाशुचिसन्निधाने नाध्येतव्यमेवं तत्सान्निधानइति सामान्यमशुचित्वावलम्बनम् । अयञ्चाध्ययनविधौ प्रकरणात् साम्नि गीयमान ऋग्यजुषोः प्रतिषेधो न यज्ञप्रयोगे तस्मात्तस्याशुचिरिव ध्वनिः स्वशुचिरेव अत तस्मिन् ऋग्यजुषी नाधीयीत ।

सामिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ १३१ ॥

मध्यदिन म, आधीरात में, अमिषसहित श्राद्ध का भोजन करके, प्रातःकाल और सन्ध्या के समय बहुत देर चौराहेपर खड़ा न होय ॥

उद्वर्त्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च। श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः ॥ १३२ ॥

उबटना, स्नान से बचा जल, विष्ठा, मूत्र, रुधिर, खखार, थूक और बमन इनको जानकर स्पर्श न करै ॥ १३२ ॥

वैरिणं नोपसेवेत सहायञ्चैव वैरिणः ॥ अधार्मिकं तस्करञ्च परस्यैव च योषितम् ॥ १३३ ॥

वैरी की और वैरी के सहायक की सेवा न करै, अधर्मी, चोर और दूसरे की स्त्री की भी सेवा न करै ॥ १३३ ॥

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ १३४ ॥

ऐसा आयुका नाश करनेवाला इस लोकमें और कुछ नहीं है, जैसा पुरुष का परस्त्री से समागम करना है ॥ १३४ ॥

क्षत्रियञ्चैव सर्पञ्च ब्राह्मणञ्च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ १३५ ॥

धनधान्यादि सम्पदा और दीर्घायु चाहनेवाला कभी-क्षत्रिय, सर्प और वेदपाठी ब्राह्मण, यह बदला लेने को असमर्थ हों तब भी इनका तिरस्कार न करै ॥ १३५ ॥

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ॥ तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ १३६ ॥

यह तीनों अपमानित होकर अपमान करनेवाले का नाश करदेते हैं, अतएव बुद्धिमान् इन तीनों का अपमान कभी न करै ॥ १३६ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ॥ आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ १३७ ॥

पहिले सम्पत्ति के निमित्त उद्यत होकर उसमें सफलता न होय तो (मैं भाग्यहीन हूँ, मुझ से कुछ नहीं होसकेगा ऐसा समझकर) अपना तिरस्कार न करै, मृत्युकाल पर्यन्त अपनी सम्पदा बढ़ाने की चेष्टा करै, उसको दुर्लभ न मानै ॥ १३७ ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १३८ ॥

जो देखा सुना हो वही सत्य कहै, तुम्हारे सन्तान हुई है इत्यादि प्रियवाद भी कहै, परन्तु सत्य होनेपर भी जो अप्रिय हो (जैसे पुत्रका मरण) न कहै, यह सनातन धर्म है १३८

भद्रंभद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ॥ १३९ ॥

किसीसे मिलनेपर भद्रं भद्रं (अच्छे हो) अच्छे हो ऐसा कहै, अथवा भद्रं ऐसाही कहै, निष्प्रयोजन वैर विवाद किसीसे न करै१३९॥

नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यन्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छेत् नैको न वृषलैः सह ॥ १४० ॥

अति प्रातःकाल वा घोर संध्याकालमें और ठीक दुपहर के समय, जिसका कुल शील न विदित हो उसके साथ बातभी न करै, इकला वा शूद्रोंके साथ कहीं न जाय ॥ १४० ॥

१ क्षत्रिय और सर्प ऐहिक बल से तथा ब्राह्मण परमार्थ फल से वञ्चित करसक्ते हैं।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान्॥ रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्॥ १४१॥

जो पुरुष अङ्गहीन वा अधिकाङ्ग हो, अत्यन्त मूर्ख, बूढ़ा, रूपहीन वा धनहीन अथवा जातिहीन हो उनकी काणा बूढ़ा आदि कह कर निन्दा न करे॥ १४१॥

न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्॥ न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि॥ १४२॥

भोजन करके वा मलमूत्र त्याग कर विना आचमन करे बुद्धिमान् ब्राह्मण हाथसे गौ, ब्राह्मण और अग्नि को स्पर्श न करै, अपवित्र वा अस्वस्थ शरीर होय तौ आकाशमें के सूर्य चन्द्रमा तारागण आदि ज्योतियों को न देखे॥

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत्॥ गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु॥ १४३॥

अपवित्र होकर गौ आदि को स्पर्श करने पर आचमन करै, और हाथ में जल लेकर उससे प्राण, नेत्रादि इन्द्रियें, मस्तक, कन्धे, जानु, चरण आदि सब अङ्ग और नाभि को स्पर्श करै॥ १४३॥

अनातुरःस्वानिखानि न स्पृशेदनिमित्ततः॥ रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत्॥

पीडित विनाहुए और विना कारण अपनी सब इन्द्रियों के छिद्रों को और गोपनीय रोमों को स्पर्श न करै॥ १४४॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः॥ जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः॥ १४५॥

गोरोचनादि मांगलिक पदार्थ धारण करै, गुरुसेवादि सदाचारयुक्त होय, सदा भीतर बाहर से शुद्ध रहै, जितेन्द्रिय और सदा निरालस होकर गायत्री आदि का जप और नित्य अग्नि में होम करै॥ १४५॥

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम्॥ जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते॥ १४६॥

नित्य मंगल और आचारयुक्त, शुद्धभाव से रहनेवाले, और प्रतिदिन जप तथा होम करने वाले को दैवी और मनुष्य की कीहुई पीड़ा नहीं होती है॥ १४६॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः॥ तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

नित्य निरालस होकर यथा समयपर वेदका अभ्यास करै, क्योंकि मनुआदिकों ने यही ब्राह्मणादिका श्रेष्ठ धर्म कहा है और सब उपधर्म कहाता है॥ १४७॥

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च॥ अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम्॥ १४८॥

सदा वेदका अभ्यास, भीतर बाहरकी शुद्धि, तपस्या और प्राणियों की अहिंसा, इन सब कर्मों से मनुष्य पूर्वजन्म की जातिका स्मरण करनेवाला होता है॥ १४८॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः॥ ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते॥ १४९॥

पूर्वजन्म की जातिका स्मरण करता हुवा फिरभी वेद का ही अभ्यास करता है तो निरन्तर वेद का अभ्यास करने से अनन्तसुख (मोक्ष) पाता है॥ १४९॥

सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः॥ पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च॥ १५०॥

पूर्णिमा अमावास्या आदि पर्वोंमें नित्य सूर्यदेवता के और शान्तिकारक होम करै। अगहन की पूर्णिमा के पर की तीन कृष्णाष्टमियों में अष्टका श्राद्ध और उनके अगले दिन कृष्णनवमी में अन्वष्टका श्राद्ध करै, इससे परलोक में पितरों की तृप्ति होती है॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ॥ उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च दूरादेवं समाचरेत् ॥ १५१ ॥

अग्निस्थान से एक तीर दूरी पर मलमूत्र त्याग, चरण धोना, जूठे अन्न और वीर्य का त्याग करै ॥ १५१ ॥

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ॥ पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ १५२ ॥

विष्ठात्याग, देह की सजावट, प्रातःस्नान, दतौन, नेत्रों में अंजन और देवपूजा यह सब पूर्वाह्ण (रात्रि के शेष और दिन के पहिले भाग) में समाप्त करै॥ १५२ ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ १५३ ॥

विपत्ति में रक्षा होने की इच्छा से पाषाणादिमय देवमूर्ति, धर्मात्मा, श्रेष्ठ द्विज, राजा और पिता आदि गुरुजनों का पर्व के दिन दर्शन करने को उनके सन्मुख जाय ॥ १५३॥

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४ ॥

घर आयेहुए वृद्धजनों को अभिवादन करै, और उनको बैठने के लिये अपना आसन देय। हाथ जोड़कर उनके सामने बैठे और जाने पर कुछ दूर उनके पीछे २ जाय ॥ १५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ १५५ ॥

श्रुतिस्मृति में कहेहुए, धर्म के मूल, अध्ययन आदि अपने कर्मों के सम्बन्धी ऐसे सदाचार को आलस्यरहित होकर सेवन करै ॥१५५॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५६ ॥

सदाचारवान् पुरुष, वेद में कहीहुई आयु, पुत्र पौत्रादि सन्तति और अक्षय धन पाता है और उसके शरीर में अशुभफलसूचक कुलक्षण होनेपर भी अनिष्ट नहीं होता है॥१५६॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ १५७ ॥

दुराचारी लोक में निन्दित होता है, सदा दुःख पाता है, सकलरोगों से पीड़ित होता है और अल्पायु होता है ॥ १५७ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १५८ ॥

जो पुरुष सदाचार, वेद में श्रद्धालु, और पराये दोष न कहनेवाला होता है वह सकल शुभ लक्षणों से हीन होकर भी सौ वर्ष जीता है ॥ १५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५९ ॥

जो २ पराई प्रार्थना करने से होसकै उसको यत्न के साथ त्यागै। अपने वशका परमात्मध्यान आदि जो २ कर्म है उसका ही यत्न से सेवन करै ॥ १५९ ॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥ एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

पराये वश का जो १ कार्य है वह सब दुःख है, अपने वश का सब सुख है, संक्षेप से इतना ही सुख दुःख का लक्षण जानै॥१६०॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ १६१ ॥

जिस कर्म को करतेहुए मनुष्य के अन्तरात्मा को सन्तोष हो उसको करै और जो मन के विपरीत हो उसको त्यागदेय॥१६१॥

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ॥ न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ १६२ ॥

यज्ञोपवीत देकर वेद पढानेवाला, वेद की व्याख्या कहनेवाला, पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गौ और सकलतपस्वियों की हिंसा न करै ॥ १६२ ॥

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ॥ द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥ १६३ ॥

परलोक में अविश्वास, वेद और देवताओं की निन्दा, मत्सरता, धर्म में ढील, अभिमान, क्रोध और क्रूरता इन सबको त्यागै ।१६३॥

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥ १६४ ॥

दूसरे के मारने को दण्डा न उठावै, क्रोध से दूसरे के ऊपर दण्डा न छोडै, परन्तु पुत्र, शिष्य को छोडकर अर्थात् इनको शिक्षा के निमित्त ताडना करै ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणायावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ॥ १६५ ॥

द्विज, ब्राह्मण के बध की इच्छा से दण्डा उठाकर ही एक सौ वर्ष तक तामिस्र नरक में घूमता है ॥ १६५ ॥

ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥ एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ॥ १६६ ॥

जानबूझकर, क्रोध के वश में होकर जो पुरुष तृण से भी ब्राह्मण को ताड़ना करता है वह इक्कीस जन्म तक श्वान आदि पापयोनियों में उत्पन्न होता है ॥ १६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ १६७ ॥

जो पुरुष युद्ध न करतेहुए ब्राह्मण के शरीर में से निष्कारण रुधिर गिराता है, शास्त्र को न जाननेवाला वह उस पाप से लिप्त होकर परलोक में परम दुःख पाता है ॥ १६७ ॥

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ १६८ ॥

अस्त्र से घायलहुए ब्राह्मण के शरीर में से निकलेहुए रुधिर से जितनी धूलि सनती है अस्त्र चलानेवाला परलोक में उतने वर्ष तक गीदड़ श्वान आदि से खायाजाता है॥१६८॥

न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥ १६९ ॥

तिससे जानकार मनुष्य, कभी ब्राह्मण के ऊपर दण्डा उठावे भी नहीं, तृण से भी ताड़ना न करै और उसके शरीर से रुधिर न टपकावै ॥ १६९ ॥

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ॥ हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ १७० ॥

जो मनुष्य अधर्मी है, जो झूठी गवाही देकर धन इकट्ठा करता है और जो हिंसा में तत्पर रहता है वह इसलोक में सुख नहीं पाता है ॥ १७० ॥

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ १७१ ॥

शास्त्रानुसार धर्म कर्म करके धन के न होने से दुःखित होता हुआ भी अधर्म में मन न लगावे, क्योंकि अधर्म से धन इकट्ठा करने वाले पापियों का धन नष्ट होता देखता है१७१

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १७२ ॥

जैसे गौ पालनेका शीघ्रही फल मिलजाता है तैसे अधर्म का फल शीघ्र नहीं मिलता है, किन्तु भूमि में बोये बीज की समान क्रम २ से बढ़कर अधर्मी के देह धनादि का नाश करता है ॥ १७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ॥ न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ १७३ ॥

यदि अधर्म करने से अधर्मी के देह धनादि का नाश न होय तो उसके पुत्र पौत्रादि में निःसन्देह वह पाप फलता है परन्तु कियाहुआ अधर्म करनेवाले को फल विना दिये नहीं छोड़ता है ॥ १७३ ॥

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥ ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १७४ ॥

अधर्म से पुरुष पहिले बढ़ता है, फिर ग्राम धन आदि सम्पदा पाता है, फिर शत्रुओं को जीतता है परन्तु अन्त में समूल नष्ट होजाता है॥ १७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा । शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥

सत्यधर्म, सदाचार और पवित्रता में सदा चित्त लगावे, शिक्षा करने योग्य शिष्य, स्त्री पुत्रादिको धर्मानुसार शिक्षा देय। सत्यभाषण से वाक्यसंयम, बाहुबल से किसी को पीड़ा न देकर बाहुसंयम और जो कुछ मिले वही खाकर उदरसंयम करै ॥ १७५ ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ॥ धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ १७६ ॥

जो धर्म से रहित हों ऐसे अर्थ काम को त्याग देय, जिससे अन्त में दुःख हो, ऐसा धर्म न करै और जिस धर्म को करने से लोक में निन्दा होय वह भी न करै ॥ १७६ ॥

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः॥ न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः॥

हाथों की चपलता, चरणों की चपलता, नेत्रों की चपलता और वाणी की चपलता, इन सब को त्याग, सरल स्वभाव होय और किसी की हिंसा न करै ॥ १७७ ॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पिता-

१ जैसे चोरी करके धनका संग्रह कभी न करै।

२ जैसे बहुत से पुत्रादिवाले को सर्वस्व दान करना उचित नहीं है।

३ जैसे अष्टकादि श्राद्धमें गोहिंसादि कभी न करै।

४ ग्रहण करने के अयोग्य वस्तु को लेना।

५ निष्प्रयोजन आनाजाना।

६ परस्त्री आदिको लुभिया कर देखना।

७ निरर्थक निन्दित बातें कहना।

महाः॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ १७८ ॥

शास्त्रों में नानाप्रकार की आज्ञा होने पर भी जिसको पिता पितामहादि ने ग्रहण किया हो उसपर ही चले, वह सत्पुरुषों का मार्ग है, उस मार्ग से चलता हुआ अनिष्ट नहीं पाता है १७८

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ॥ दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥१८०॥

ऋत्विक् (यज्ञादि कर्म का होता) पुरोहित (शान्ति आदि करने वाला) आचार्य, मामा, अतिथि, अनुजीवी, बालक, वृद्ध, पीड़ित, वैद्य, ज्ञाति, कुटुम्बी, माता पिता, बहिन के बेटे की बहू आदि, भ्राता, पुत्र, स्त्री, कन्या और सेवक इनके साथ विवाद न करै।१७९॥१८०॥

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ एभिर्जितैश्च जयति सर्वांल्लोकानिमान् गृही ॥ १८१ ॥

गृहस्थ पुरुष इनके साथ विवाद को त्यागने पर अज्ञान से करे हुए सब पापों से छूट जाता है और आगे कहे इन सब लोकों को जीतता है ॥ १८१ ॥

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ॥ अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥ १८२ ॥

आचार्य ब्रह्मलोक का, पिता प्राजापत्य लोक का, अतिथि इन्द्रलोक का और ऋत्विक् देवलोक का स्वामी है अर्थात् इनसे विवाद न करने से इन लोकों को पाता है ॥ १८२ ॥

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ॥ संबन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥ १८३ ॥

यामी अप्सरालोक की, बान्धव वैश्वदेव लोक के, सम्बन्धी जल लोक के, और माता तथा मामा पृथ्वीलोक के प्रभु हैं अर्थात् इनसे विवाद न करने से इन लोकों को पाता है।१८३

आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः ॥ भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥ १८४ ॥

बालक, वृद्ध, निर्धन, अनुजीवी और पीड़ित आकाश के अधिपति हैं अतएव इनसे विवाद न करने पर यह लोक अनायास में मिल जाते हैं। बड़ा भ्राता पिता की समान है, स्त्री और पुत्र अपना शरीर है,अतएव इन के साथ विवाद करना कैसे उचित होसकता है ॥ १८४ ॥

छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ॥ १८५ ॥

अपने दास अनुगामी होने से अपनी छाया ही के समान हैं,विवाद के योग्य नहीं हैं और पुत्री तो बहुत ही कृपा का पात्र है तिससे इन करके तिरस्कार कियाहुआ भी संताप न मानकर सहले विवाद न करै ॥ १८५ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत्॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥

विद्या तप और आचारयुक्त होने से दान लेने का अधिकारी होने पर भी उसमें बारम्बार प्रवृत्ति को छोड़देय अर्थात् दान न लेय। कारण यह है कि–दान लेने से वेदपठन आदि से उत्पन्न इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ १८६ ॥

१ बहिनकी पुत्रबहू आदि।

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ १८७ ॥

द्रव्यों के प्रतिग्रह में धर्मानुकूल विधि को विना जाने बुद्धिमान् पुरुष, यदि क्षुधा से व्याकुल होय तो भी प्रतिग्रह न लेय ॥१८७॥

हिरण्यं भूमिमश्वं गां मन्नं वासस्तिलान्घृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ १८८ ॥

द्रव्यों के प्रतिग्रह की विधिको न जाननेवाला जो मूर्ख पुरुष, सुवर्ण, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल और घृत को ग्रहण करता है वह काठ की समान भस्म होजाता है१८८

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥ १८९ ॥

मूर्ख प्रतिग्रहीता,सुवर्ण और अन्न का प्रतिग्रह करे तो आयु नष्ट होती है, भूमि और गौ को ग्रहण करे तो शरीर, घोडा लेय तो नेत्र, वस्त्र लेय तो त्वचा, घृत का प्रतिग्रह करे तो तेज और तिलोंका प्रतिग्रह करे तो उसकी सन्तान दग्ध होजाती है ॥ १८९ ॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः॥ अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥

जो ब्राह्मण तपस्या नहीं करता है,वेद नहीं पढता है और प्रतिग्रह का लोभी होता है, जैसे पत्थर की नौका से गहरे जल को तैरने वाला उस नौकासहित जल में डूबजाता है तैसे ही वह भी अयोग्यपात्र को दान देनेवाले दाता के साथ नरक में डूबता है ॥ १९० ॥

तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति ॥ १९१ ॥

तिससे प्रतिग्रह के दोष को न जाननेवाला जिस तिस प्रतिग्रह के लेने से भय माने,क्योंकि थोड़ासा भी प्रतिग्रह करने से कीच में गौ की समान दुःख में फँसजाता है ॥ १९१ ॥

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ॥ न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ १९२ ॥

जो काकों को दियाजाता है वहभी धर्मज्ञ पुरुष बिड़ालतपस्वी वा बकधर्मी (बगलाभगत) वा वेदके न जाननेवाले ब्राह्मणको न देय ॥ १९१ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्॥दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥

विधिके अनुसार इकट्ठा कराहुआ धन भी, इन तीनप्रकार के पुरुषों को दान करके दिया जाय तो दान देनेवाले और लेनेवाले दोनों को परलोक में महाअनर्थ का कारण होता है॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्॥ तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ

जैसे पत्थर की नौकासे पार होताहुआ पुरुष जल में डूबजाता है तैसे ही मूर्ख दाता और ग्रहण करनेवाला भी नरक में डूबता है ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः॥ बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥ १९५ ॥

परधन का लोभी, धर्मध्वजी, कपटवेशधारी लोकवंचक, हिंसक और परायेगुणों को न सह कर सब को तुच्छ समझनेवाला इनका नाम बैड़ालव्रतिक है, इनको दान न देय ॥ ११९॥

१ किससे प्रतिग्रह लेना चाहिये, किससे नहीं लेना चाहिये यह विना जाने ।

२ मैं बहुत पुरुषों के बीचमें धर्म का आचरण करके सदा अपना धार्मिकपना दिखानेवाला ।

३ धरोहर अपनेपास रखकर नटजाने वाला आदि ।

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥

अपनी नम्रता दिखाने के लिये सदा नीचे को दृष्टि रखनेवाला, निष्ठुरता से वर्त्ताव करने वाला, दूसरेके प्रयोजनको नष्ट करके अपना प्रयोजन साधने में तत्पर, शठ, मिथ्याविनीत ऐसे द्विज को बकव्रतधारी (बगलाभगत) कहते हैं ॥ १९६)

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ १९७ ॥

जो ब्राह्मण बकव्रती और बिडालव्रती हो वह उस पापकर्म से अन्धतामिस्र नामक नरक में पडते हैं ॥ १२७ ॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्॥ व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ १९८ ॥

पाप करके वास्तविक प्रायश्चित्तरूप प्राजापत्यादि व्रत करतेहुए प्रायश्चित्तको छुपाकर यह व्रत धर्मार्थ करता हूँ, ऐसे स्त्री और शूद्र तथा मूर्खादि पुरुषों को बहकाकर कुछ अनुष्ठान न करै ॥ १९८ ॥

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥ १९९ ॥

छल करके जो व्रतका आचरण कियाजाता है उसको राक्षस भोगते हैं, ऐसे व्रत करने वाले ब्राह्मण, परलोक और इसलोक में ब्रह्मवादियों से निन्दित होते हैं ॥ १९९ ॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ॥ स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

जो यथार्थ ब्रह्मचारी नहीं है। परन्तु ब्रह्मचारी के चिह्न मेखलादि धारण करके भिक्षासे जीविका करता है वह उस पापसे ब्रह्मचारियोंके सकल पाप हरण और कूकरआदि योनि में जन्म ग्रहण करता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ २०१ ॥

पराये सरोवरआदि जलाशय में कभी स्नान न करै, क्योंकि उसमें स्नान करके बनवाने वाले के पाप के अंश से लिप्त होता है ॥ २०१ ॥

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २०२ ॥

पराई सवारी, शय्या, आसन, कूप, उद्यान और घर बिनादिये न भोगै उसको भोगनेसे द्रव्य के स्वामी के पाप के चतुर्थांश का भागी होता है ॥ २०२ ॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्रवणेषु च ॥ २०१ ॥

नदी, देवखात (सोतोंवाला सरोवर), तड़ाग,सरोवर, सोत जो चारकोस से कम में हो और झरना इन सबके जल में प्रति दिन स्नान करै ॥ २०१ ॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥ यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ २०४ ॥

१ अतएव जहां नदी आदि नहो तहां दूसरे की वावडी आदि में स्नान करे तो उसमें से पाँच पिण्ड कीचके निकालकर किनारेपैडालकर स्नान करै ।

सदा यमों[1] काही सेवन करै, केवल नियमों[2] मेंही सदा न लगारहै। यमों के सेवन को छोड़कर केवल नियमों के सेवन से पतित होता है अतएव पण्डित यम नियम दोनों का सेवन करते हैं ॥ २०४ ॥

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिहुते तथा ॥ स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥ २०५ ॥

बिना वेद पढ़े ब्राह्मण जिस यज्ञ का प्रारम्भ करते हैं, जिस यज्ञ में बहुयाजक ब्राह्मण होम करते हैं, जिस यज्ञ में स्त्री वा नपुंसक होता है उसमें ब्राह्मण कभी भोजन न करै २०५

अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ॥ प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ २०६ ॥

जिस यज्ञ में पूर्वोक्त ब्राह्मणादि होम करैं वह यज्ञसाधुओं की श्री का नाशक होता है और देवताओं के प्रतिकूल होता है इस कारण ऐसा यज्ञ न करै ॥ २०६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ केशकीटावपन्नञ्च पदा स्पृष्टञ्च कामतः ॥ २०७ ॥

मत्त, क्रोध के वशीभूत और व्याधियुक्त, इनका अन्न कभी न खाय, बाल कीड़े आदि युक्त अन्न वा इच्छानुसार चरण से छुआहुआ अन्न कभी न खाय ॥ २०७ ॥

भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया ॥ पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ २०८ ॥

भ्रूण वा गौकी हत्या करनेवाले आदिका देखाहुआ, रजस्वला का स्पर्श कराहुआ, काक आदि का जूठा कराहुआ तथा कुत्तेका छुआहुआ अन्न कभी न खाय ॥ २०८ ॥

गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुषा च जुगुप्सितम् ॥ २०९ ॥

गौका सूँघा हुआ अन्न विशेषतः 'कौन भोक्ता है ? ऐसाकहकर दियाहुआ' अन्न, बहुत से एकत्रहुए मठवासियों का अन्न, वेश्याका अन्न और पण्डितों का निन्दा कराहुआ अन्न कभी न खाय ॥ २०९ ॥

स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्द्धुषिकस्य[3] च ॥ दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥ २१० ॥

चोर, गान से जीविका करनेवाले का, बढ़ई की वृत्तिवाले का और ब्याजखानेवाले का अन्न, अग्निषोमीय यज्ञ बिनाकरे यज्ञ में दीक्षित और कृपण तथा बेड़ियों से बँधेहुए का अन्न न खाय ॥ २१० ॥

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ॥ शुक्तं[4] पर्युषितञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥ २११ ॥

महापातकी, नपुंसक, व्यभिचारिणी, और पाखण्डी का अन्न तथा शुक्त और बासी, शूद्र का और गुरुसे अन्यका झूठा अन्न कभी नखाय॥

चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्ट-

१ ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, ध्यान, सत्यभाषण अकल्कता (निष्पाप अन्तःकरण) हिंसा, चोरी न करना और मधुरभाव इनको यम कहते हैं।

२ स्नान, मौनधारण करना, उपवास, यज्ञकार्य, वेदपढ़ना, इन्द्रियों का संयम, गुरुसेवा, शुद्धभाव, क्रोध को जीतना और सावधानी इन सबको नियम कहते हैं।

३ यहां ब्याज खानेवाले वैश्य का निषेध न समझना क्योंकि उसका विहित कर्म है।

४ स्वाभाविक मीठापदार्थ, दधि आदिके योगसे खट्टा होजाय तो उसको शुक्त कहते हैं।

भोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्य्याचान्तमनिर्दशम् ॥ २१२ ॥

चिकित्सक, व्याधा, क्रूर, जूठन खानेवाला और निष्ठुरकर्म करनेवाला, इनका अन्न, सूतिकाके लिये तयार हुआ, पर्य्याचान्त और दशदिनके भीतर सूतिकाका अन्न भोजन न करै॥

अनार्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः॥ द्विषदन्नं नगर्य्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥

पूज्यका तिरस्कार करके दियाहुआ अन्न, वृथा मांस, पति-पुत्रहीन अवीरा स्त्रीका अन्न, शत्रुका, नगर का, पतितोंका और जिसके ऊपर छींकादिया हो ऐसा अन्न न खाय२१३॥

पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥ शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१४ ॥

चुगली करनेवालेका और मिथ्या गवाही देनेवाले का अन्न, अपने यज्ञका फल धन लेकर बेचनेवाले का, नटकी जीविका करने वालेका, वस्त्रादि सीकर जीविका करनेवाले का और उपकारीका, अपकार करनेवालेका अन्न कभी न खाय ॥२१४॥

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ २१५ ॥

लुहारका, ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न हुई सन्तान का, बहुरूपियेका, सुनारका, बांस चीरनेवालेका और लोहा बेचनेवालेका अन्न कभी न खाय ॥२१५॥

श्ववतां शौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य च ॥ रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥२१६॥

कुत्ता पालनेवालेका, शराब बेचनेवालेका, कुम्हारका, रङ्गरेजका, कठोरहृदयवाले का और जिसकी स्त्रीका उपपति हो उसका अन्न कभी न खाय ॥ २१६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥२१७॥

जो जानकर स्त्रीके जारको सहता है, जो स्त्रीकी बुद्धिसे ही सब कर्मोंको करता है इन का अन्न, मरणाशौचवालेका अन्न और जिस को खानेसे सन्तोष न हो ऐसा अन्न न खाय॥

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्॥आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्त्तिनः ॥२१८॥

राजाका अन्न तेजको हरता है, शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरता है, सुनारका अन्न आयुको हरता है और चमारका अन्न यशका नाश करता है ॥२१८॥

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥ गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥ २१९ ॥

रसोइये आदि का अन्न सन्तान को नष्ट करता है, धोबीका अन्न बल को नष्ट करता है, बहुतसों का और वेश्याका अन्न स्वर्गादि लोक से बञ्चित रखता है ॥ २१९ ॥

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥ विष्ठां वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥ २२० ॥

चिकित्सक का अन्न पीव समान, व्यभिचारिणी का अन्न वीर्य के भोजन समान है, व्याज खानेवाले का अन्न विष्ठा समान और

१ सूतिका के निमित्त तयार हुआ अन्न उसके कुलवालोंके सिवाय और कोई न खाय।

२ एकपंक्तिमें बैठेहुए बहुतसे ब्राह्मणोंके भोजन करने से आगे भोजन करनेके लिये आचमन करलेपर उस अन्नको पर्य्याचान्त कहते हैं।

लोहिये का अन्न मलसमान है ॥ २२० ॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ॥ तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २२१ ॥

इस प्रकरण में कहेहुए जिन लोकों का अन्न निषिद्ध कहा है उस अन्न को पण्डितों ने उन का चर्म, अस्थि और रोम कहा है ॥२२१॥

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ॥ मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥ २२२ ॥

इनमें से किसी का अन्न भूल से खाकर तीनरात उपवास करै। जानकर भोजन करै तो कृच्छ्र (प्राजापत्यव्रत) करै और धोखे से वीर्य, विष्ठा वा मूत्र मुख में चला जाय तो भी यही प्रायश्चित्त करै ॥ २२२ ॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥ आददीतामेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २२३ ॥

वेदवेत्ता ब्राह्मण श्राद्धआदि पञ्चयज्ञ से रहित शूद्र का पकायाहुआ अन्न न खाय, यदि और अन्न न मिले तो उससे एकदिन के योग्य कच्चा अन्न लेलेय ॥ २२३ ॥

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २२४ ॥

जो वेदपढकर कृपण है और जो व्याज खाकर दान करता है, इन दोनोंके गुण और दोष विचार कर देवताओंने दोनोंका अन्न एक समान कहा है ॥ २२४ ॥

तान्प्रजापतिराहैत्य मा कृध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥ २२५ ॥

ब्रह्माजी ने देवताओं के पास आकर कहा। इन दोनों को समान न जानो, इनमें यह विशेषता है कि—व्याजखानेवाले दाता का अन्न श्रद्धा के साथ दान करा हो तो पवित्र होता है और कृपण वेदवेत्ता का अश्रद्धासे दूषित अन्न अपवित्र होता है अतएव त्याज्य है ॥२२५॥

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २२६ ॥

सावधानहो मोक्षादि की लालसा को त्यागकर, श्रद्धासे नित्य इष्ट[1] और पूर्त[2] कर्म करै, सुकर्म से आयेहुए धन से श्रद्धाके साथ यह कर्मकरे तो अक्षय होते हैं ॥ २२६ ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥

विद्या और तपस्यावान ब्राह्मण मिले तो प्रसन्न अन्तःकरणके साथ शक्ति के अनुसार दान तथा अन्तर्वेदिक और बहिर्वेदिक यज्ञ करै ॥ २२७ ॥

यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ॥ उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २२८ ॥

कोई कुछ मांगै तो उसके ऊपर क्रुद्ध न होकर यथाशक्ति दानदे, ऐसा होनेसे दाता के पास कभी यथार्थ दानपात्रभी आवेगा कि जो दान लेकर दाता को सकल पापों से मुक्त करेगा ॥ २२८ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २२९ ॥

जलदान करने से तृप्तिसुख मिलता है, अन्नदान से अक्षयसुख मिलता है, तिलदान से मनानुकूल सन्तान होती है और दीपदान से

१ वेदियुक्त यज्ञकर्म को इष्ट कहते हैं।
२ पुष्करिणी कूप खुदवाने आदिको पूर्त कहते हैं।

उत्तम नेत्र मिलते हैं ॥ २२९ ॥

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥ गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

भूमिदान से बहुतसी भूमि की प्रभुता,सुवर्णदान से दीर्घ परमायु, घरके दान से उत्तम अटारी और चांदी के दान से उत्तम रूप मिलता है ॥२३०॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ॥ अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ २३१ ॥

वस्त्रदान से चन्द्रमाकी समान ऐश्वर्ययुक्त होकर चन्द्रलोक में बास, घोडे के दान से अश्विलोकका वास,वृषभदान से अतुलसम्पदा और गोदान से ब्रह्मलोक मिलता है॥२३१॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः॥ धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥ २३२ ॥

सवारी वा शय्या के दान से मनोनुकूल स्त्री-लाभ, अभय दान से ऐश्वर्यलाभ, धान्य दान से निरन्तर सुख और वेद के दान से ब्रह्मभाव प्राप्त होता है ॥ २३२ ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥ वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ २३३ ॥

जलदान, अन्नदान, गोदान,भूमिदान, वस्त्रदान, तिलदान, सुवर्णदान और घृतदान इन सब दानोंसे वेदका दान विशेष है ॥ २३३ ॥

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति॥ तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः॥

स्वर्ग वा मोक्ष आदि जिस२ भावना से जो जिस फलकी कामना करके जो दान देता है जन्मान्तर में उस पुण्य के फल से युक्त होकर पूजितरूप से समय को बिताता है ॥ २३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ॥ तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ २३५ ॥

जहां दाता पूजन के साथ दान देता है, गृहीता भी पूजाके साथ ग्रहण करता है तहां देने लेनेवाले दोनों स्वर्ग को जाते हैं, नहीं तो दोनों नरकको जाते हैं ॥ २३६ ॥

न विस्मयेन तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् ॥ नार्त्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत् ॥ २३६ ॥

तप करके अभिमान न करै, यज्ञ करके मिथ्या भाषण न करै, ब्राह्मण पीड़ा दें तो भी उनकी निंदा न करै और दान करके कहता न फिरै॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥ आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्त्तनात् ॥ २३७ ॥

मिथ्याभाषण से यज्ञ का फल नष्ट होता है,गर्वसे तप नष्ट होता है,ब्राह्मणों की निंदा से आयु क्षीण होती है और कहने से दानका फल नष्ट होता है ॥ २३७ ॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ॥ परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥

चीटियें जैसे बल्मीकको इकट्ठा करती हैं तैसे ही परलोककी सहायता के लिये, किसी को कष्ट न देकर धीरे२ धर्मका संग्रह करे॥२३८॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥

क्योंकि-परलोक में पिता, माता, पुत्र, स्त्री, जाति इनमें से कोई भी सहायता करने को नहीं होगा, एक धर्म ही सहायक होगा, अतः

पुत्रादि से भी अधिक उपकार करनेवाले धर्म का संग्रह करै ॥ २३९ ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते॥ एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

प्राणी इकला ही उत्पन्न होता है, इकला ही लीन होता है और इकला ही अपने पुण्य पाप का फल भोगता है ॥ २४० ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ॥ विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ २४१ ॥

बान्धव मरेहुए शरीर को काठ वा मट्टी के ढेले की समान भूमिमें छोडकर चलेजाते हैं, केवल धर्मही उसके साथ गमन करता है।२४१॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ॥ धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥

क्योंकि-धर्म की सहायता से प्राणी दुरन्त नरक से निस्तार पाते हैं अतः धर्म को सहायक जानकर प्रतिदिन उसका धीरे धीरे संचय करै ॥ २४२ ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥ परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २४३ ॥

धर्मपरायण पुरुष यदि दैवात् कोई पापकर्म करलेय तो प्राजापत्यादि व्रत से निष्पाप होने पर धर्म, उसको शीघ्र ब्रह्मस्वरूप स्वर्गादि परलोक में पहुँचाता है ॥ २४३ ॥

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सह॥ निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत्॥

अपने कुल की उन्नति की इच्छा करनेवाला नित्य, उत्तम २ कुलीन आचारवान् पुरुषों से कन्यादानादि सम्बन्ध करै, नीच नीच कुलों का त्याग करै ॥ २४४ ॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २४५ ॥

उत्तम २ पुरुषों से सम्बन्ध करने पर ब्राह्मण श्रेष्ठता पाता है, और नीच २ से सम्बन्ध करने पर हीनता पाकर शूद्रसमान होजाता है ॥ २४५ ॥

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ॥ अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ २४६ ॥

प्रारब्ध कर्म के लिये शरीर धारण है ऐसे दृढविश्वासवाला, शान्तस्वभाव, सहनशील, निष्ठुर पुरुषों से संसर्ग न करनेवाला और हिंसा न करनेवाला यह सब मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम तथा दान के द्वारा सुरपुर में गमन करते हैं ॥ २४६ ॥

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥ २४७ ॥

काठ, जल, फल, मूल, मधु, बिनामांगा, बिना पकाया अन्न, यह शूद्रपर्यन्त सबसे ग्रहण करलेय, परन्तु वेश्या, नपुंसक, पतित और शत्रुसे न लेय; शूद्र से बिना पकाया अन्न और अभयदान चाण्डाल आदि सेभी ग्रहण करसक्ता है ॥ २४७ ॥

आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ॥ मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २४८ ॥

दान करने के स्थान में लाकर ग्रहण करने के सन्मुख स्थापित, अपने आप वा किसी के द्वारा, लेनवाले के बिनामांगे, तुम को दान दूँगा ऐसा कहकर पहिले न कहाहुआ ऐसा सोने चांदी आदि का दान पतितादि को छोड़

कर सब से ग्रहण करे, ऐसा दान पापियों से भी लेलेय, यह ब्रह्माजी का मत है ॥२४८॥

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च ॥ न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ १४९ ॥

जो पुरुष, इसप्रकार के दान को ग्रहण नहीं करता है, वह पितरों को जो कुछ देताहै उसको पन्द्रह वर्षतक पितर भोजन नहीं करते हैं और अग्नि में जो आहुति देता है, देवता अग्नि के मुख में उसको ग्रहण नहीं करते हैं॥

शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पं मणीन्दधि ॥ धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ॥ २५० ॥

शय्या, घर, कुशा, कर्पूर आदि गन्धके पदार्थ जल,फूल,हीरा आदि मणि,दही,खीलें,मत्स्य, दूध, मांस और शाक यह सब भी बिना माँगे आवें सो इनको निषेध न करै ॥ २५० ॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ २५१ ॥

माता पिता आदि गुरु और स्त्री पुत्रादि पोष्य(पालन करने योग्य)इनके भरण पोषण के लिये और देवता तथा अतिथियों के पूजन के लिये, पतित आदि को छोड़कर अधम शूद्र से भी ग्रहण करै, केवल अपनी जीविका के लिये ग्रहण न करै ॥ २५१ ॥

गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ २५२ ॥

माता पिता आदि के मरने पर वा जीवित होतेहुए योगधारणा से अन्यस्थान में बसने पर अपनी जीविका के लिये चाहे जिस सज्जन पुरुष से सदा दान लेलेय ॥ २५२ ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २५३ ॥

आर्द्धिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिस का गोपाल है और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है, काम करता है और जो मैं दुर्गति में हूँ तुम्हारी सेवा करता हुआ तुम्हारे ही समीप बसता हूँ ऐसे कहकर अपना निवेदन करै ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न अर्थात् यह शूद्रोंमें भोज्यान्न हैं ॥ २५३ ॥

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ॥ यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् ॥ २५४ ॥

शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहते हैं, इस शूद्रका कुलशील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूप है और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उसप्रकार आपको कहै॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ॥ स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ २५५ ॥

जो कोई कुल आदिमें और है और आपको सज्जनोंमें और ही कहता है वह लोकमें बड़ा ही पापी है और अपनेको चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराता है यह तौ सब में प्रधान आपही को चुराता है॥२५५॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥ तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २५६ ॥

सब अर्थ शब्दों ही में वाच्यभावसे नियत हैं और शब्दोंका मूल वाणी है क्योंकि सब बातें शब्दों ही से जानकर कीजाती हैं इससे

वाणीसे निकले कहेजाते हैं इससे जो उस वाणीको चुराता है अर्थात् अन्यथा कहता है वह मनुष्य सबभांति चोरी करनेवाला होता है॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि॥ पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः॥ २५७॥

गृहस्थीका संन्यासप्रकार कहते हैं—वेद पढने से महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करने से पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूर कर सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित कर, मध्यस्थताका आश्रय ले, पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोड, ब्रह्मबुद्धिसे सर्वत्र समदृष्टिहो घरहीमें रहै॥२५७॥

एकाकी चिंतयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः॥ एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति॥ २५८॥

काम्यकर्मोंका और धन के जोडने का त्याग कर, पुत्र की कीहुई जीविका से शरीर निर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें अपने हितकारी वेदान्तमें कहेहुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करै जिससे उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कार से मोक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होता है॥ २५८॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती॥ स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः॥ २५९॥

यह ऋतु आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही है, आपत्ति में तौ अनित्य कहैंगे और सतोगुणका बढानेवाला, अच्छा स्नातक के व्रतका कल्प कहिये विधि कहागया॥ २५९॥

अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रवित्॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते॥ २६०॥

इति मनुस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस शास्त्र में कहेहुए आचारसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्य कर्म करने से क्षीणपाप हो, ब्रह्मज्ञानकी अधिकता से ब्रह्मही लोक हुआ उसमें लीन हो सब से अधिक महिमा को प्राप्त होता है॥ २६०॥

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहितश्चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान्॥ इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम्॥ १॥

ऋषियोंने स्नातक के कहेहुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थ में तत्पर और अग्निसे उत्पन्नहुए भृगुजी से यह कहा कि-यद्यपि पहिले अध्याय में दश प्रजापतियों में 'भृगुंनारदमेव च' इस वचन से भृगुकीभी सृष्टि मनुही से कही तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहेजाते हैं, इसमें श्रुति प्रमाण है जैसे 'तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद्यद् द्वितियमासीत्तद्भृगुरिति' इसीसे यह व्युत्पत्ति कीगई कि 'भ्रष्टात्रेतसः उत्पन्नत्वाद्भृगुः' अर्थात् गिरेहुए वीर्यसे उत्पन्न होनेसे भृगु हुए॥ १॥

एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम्॥ कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो॥ २॥

हे प्रभो! इसप्रकार यथोक्त अपने धर्म के करनेवाले और श्रुति तथा शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है?॥ २॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥

वह मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगुने, जिस दोष से थोड़े कालमें मृत्यु ब्राह्मणोंको मारनेका इच्छा करता है उस दोषको सुनो ऐसा उन महर्षियोंसे कहा ॥ ३ ॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥ आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४

वेदोंका अभ्यास न करने से, आचार के छोड़ने, सामर्थ्यहोनेपर अवश्य करने योग्य कामोंमें उत्साह न होना रूप आलस्य से और अभक्ष्य अन्न भोजन करने से मृत्यु ब्राह्मणों को मारने की इच्छा करता है ॥ ४ ॥

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥ ५ ॥

लशुन, गाजर, प्याज आदि धरती के फूल और अशुद्ध विष्ठा आदि में उत्पन्न चौलाई आदि द्विजातियों को अभक्ष्य हैं ॥ ५ ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा। शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥६॥

वृक्षों के लालरंग के गोंद और काटने से उत्पन्न सब रंग के गोंद, शेल (लहसौड़ा) और नवीन ब्याईहुई गौ के दूध का खीस इन सब को यत्न से त्यागे ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च॥७

वृथा (देवताओं के निमित्त से न करके केवल अपने लिये करेहुए) तिल मिलाकर पकाया हुआ अन्न, संयाव (घी, दूध, गुड़ और गेहूँ के चून से बनीहुई लपसी) खीर और पुवे, और यज्ञ आदि में जो अभिमंत्रित नहीं ऐसे पशु का मांस और देवताओं के लिये कियेहुए अन्न भोग लगाने से पहले और पुरोडास आदि होम से पहले न खाय ॥ ७ ॥

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा॥ आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ ८ ॥

दश दिन के भीतर ब्याईहुई गौका दूध, ऊँटनी का और एक खुरवाले घोड़ी आदि का तथा भेड़ का और संधिनी गौ का दूध और जिसका बछड़ा मरगया हो वा जिसका बछड़ा पास नहो उसका दूध न पिये ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥ स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥

भैंस को छोड़कर सब जंगली पशुओं का, मृगों का और स्त्री का दूध तथा सब शुक्त भी वर्जित हैं ॥ ९ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् ॥ यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

शुक्तों में दही और दही से उत्पन्न सब पदार्थ भक्ष्य हैं, और शुभ(नशा न करनेवाले) पुष्प, फल, मूल एवं जल मिलाकर भपके में खेंचेहुए (अर्क आदि) पदार्थ भी भक्ष्य हैं ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं

१ द्विजातिग्रहणंशूद्रपर्युदासार्थम्-इति कुल्लूकभट्टः । अर्थात् इस श्लोक में द्विजाति शब्द का ग्रहण करने से शूद्रके निषेध नहीं है।

२ आनिर्दशाहं गोः क्षीरमाजं माहिषमेव च, इस यम बचन के प्रमाणसे यहां गौ शब्दसे वह सब पशु लिये जाते हैं जिनका दूध शास्त्र में पीने योग्य कहा है, जैसे कि-भैंस, बकरी आदि।

३ जो गौ ग्याभन होनेको वृषभ की इच्छासे रंभाती हो, उसको सान्धिनी कहते हैं।

चं विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

क्रव्यादे (कच्चे मांस के खानेवाले गिद्ध आदि कबूतर आदि ग्राम के सब पक्षी, नहीं कहेहुए एक खुरवाले पशु तथा टिटिहरी पक्षी को त्यागै ॥ ११ ॥

कलविंकं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटम् ॥ सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥ १२ ॥

चिरौंटा, प्लव, हंस, चकवा, गांव का मुरगा, सारस, रज्जुवाल, पपैया, तोता और मैना यह सब अभक्ष्य हैं ॥ १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्यादान् सौनं वल्लूरमेवं च ॥ ११ ॥

जालपाद (जिनके पंजों में महीन खाल का जाल होता है जैसे बत्तक आदि) कोयष्टि पक्षी नखविष्किर (जो पंजे से कुरेद २ कर खाते हैं और जो जल में डुबकी मारकर मछलियों को खाते हैं और सूना (मारने का स्थान) में स्थित मांस और वल्लूर (सूखा मांस) यह सब वर्जित हैं । ११ ॥

वकं चैव वलाकां च काकोलं खंजरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

बगला, वलाका, द्रोण, काक, खंजन और मछलियों के खानेवाले तथा विड्वराह (विष्ठा खाने वाले सुअर) और सब प्रकार की मछलियों को न खाय ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसादउच्यते ॥ मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥ १५ ॥

जो जिसके मांस को खाता है वह उसके मांस का खानेवाला कहा जाता है जैसे कि बिलाव मूषिकका मांस खानेवाला ऐसेही मत्स्याद कहने से वह सब प्रकार के मांसका खानेवाला होगा तिससे मछलियों को न खाय ॥ १५ ॥

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः ॥ राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

पढीन मछली और रोहू मछली आद्य कहिये खाने योग्य कही हैं और हव्य कव्य में नियुक्त हैं और आगे कहे हुए लक्षणों से युक्त राजीव, सिंह तुंड और शल्कसमेत सब प्राणात्यय होता होयतो आद्य कहिये भक्षण करनेयोग्यहैं॥१६॥

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥

अकेले विचरनेवाले सर्प आदि, और नाम तथा जातिके भेदसे जिनको नहीं जानते हैं ऐसे मृग और पक्षियों को न खाय और भक्ष्यों में कहेहुए भी सब पंचनखों को अर्थात् वानर आदिको न खाय ॥१७॥

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

श्वाविध (सेध नामक जीवभेद) शल्यक, गोह, गैंडा, कछुआ, और शशा इनको पंच

१ यहां से लेकर जो मांसप्रकरण चला है उसमें मनुजी का अभिप्राय पूर्व मीमांसा की परिसंख्याविधि के अनुसार निवृत्ति में हैं अर्थात् जो नित्य और सब प्रकारका मांस खाते हैं उनकी प्रवृत्ति कम करने के लिए नियम करा है और जो मांस नहीं खाते उनके लिए विशेष-विधान नहीं है, क्योंकि 'प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्' इस आगे कहे हुए मनुजी के वचन से मनुजी का सिद्धान्त सर्वथा मांस भोजन से बचने मेंही प्रतीत होता है अतः जो मांसभक्षी हैं वह इस प्रकरण के अनुसार धीरे २ त्यागने का नियम करें और जो मांसभोजी नहीं है वह सर्वदा मांसभक्षण से बचे रहें ।

नखों में और एकओर दाँतवालों में ऊँटको छोड़ औरों को मनुआदि भक्ष्य कहते हैं॥१८॥

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम्॥ पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः॥ १९॥

धरतीका फूल, विष्ठाखानेवाला सुअर, लहसुन, गांवका मुरगा, प्याज, गाजर, इनको जानकर खाय तो द्विजाति पतित होय॥ १९॥

अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥ यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः॥ २०॥

इन छत्राक आदि छः अनजान में खायतो कृच्छ्रसांतपन व्रत अथवा यतिचान्द्रायण करै, और इन से भिन्न वृक्षोंके लाल गोंद आदि के खाने में दिनरात्रिका उपवास करै॥२०॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः॥ अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥ २१॥

द्विजाति विनाजाने खायेहुए की शुद्धि के लिये एकबर्ष में एक कृच्छ्रप्राजापत्यनामक व्रत करै और जानेहुए अभक्ष्यभक्षण के दोषकी शुद्धि के लिये विशेष प्रायश्चित्तको करै॥२१॥

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः॥ भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा॥ २२॥

ब्राह्मण यज्ञके लिये अथवा भृत्यों के लिये और कुछ न मिले एवं भूखकी पीड़ासे प्राणान्त होता होय तो शास्त्रमें कहेहुए मृग तथा पक्षीका वध करसक्ते हैं, अगस्त्यजीने पहिले एकबार ऐसा करा है॥ २२॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च॥ २३॥

जिससे पुराने यज्ञोंमें और ऋषियों के यज्ञोंमें भक्ष्य मृग पक्षियों के मांसके पुरोडास हुएथे।

यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम्॥ तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत्॥ २४॥

जो कुछ भोज्य वा भक्ष्य वस्तु घी तेल आदि स्नेह से पकीहुई किसी दूषित वस्तु के पड़ने से बिगड़ी न होय वह बासीभी खाय तथा पुरोडाश आदिका शेषभागभी बासीभोजनकरै॥

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः॥ यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः॥२५॥

घी तेल की चिकनाई से रहित भी जौ गेहूँ और दूध के पदार्थ अनेक रात्रि के बसे भी द्विजाति भक्षण करै॥ २५॥

एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः॥ मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने॥ २६॥

द्विजातियों का यह सम्पूर्ण भक्ष्य, अभक्ष्य कहा। अब आगे मांस के खाने और छोड़नेकी विधि कहते हैं॥ २६॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया॥ यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥ २७॥

यज्ञ के अङ्गीभूत पूजित पशुका मांस भक्षण करै, प्राणान्त होता होय तो ब्राह्मणों के आज्ञा देने पर नियम के साथ एकबार मांस भक्षण करलेय॥ २७॥

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्॥ स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ २८॥

प्रजापति ने यह सब प्राण का अन्न बनाया है, जङ्गम पशु आदि, स्थावर धान जव आदि

यह सब भोजन है तिससे प्राणोंकी रक्षा के लिये प्राणान्त होय तो जीव मांस को खाय ।.२८॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥ २९ ॥

चरों के अचर (तृण घास आदि) भक्ष्य हैं और दाढ़वाले, बाघ आदिकों के बिना दाढ़ वाले हरिण आदि भक्ष्य हैं और हाथोंवालों के बिना हाथोंवाले मछली आदि भक्ष्य हैं और शूर जो सिंह आदि हैं उनको भीरु कहिये डरपोक जो हाथी आदि भक्ष्य कहिये आपत्ति-काल में प्राण धारण के साधन हैं ॥ २९ ॥

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि। धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥

खाने योग्य प्राणियों को आपत्तिकाल में प्रतिदिन खाताहुआ भी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होता है जिससे विधाताही ने खानेयोग्य और खानेवाले बनाये हैं ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१ ॥

यज्ञ के लिये मांसका खाना वह दैवविधि कही है और इससे अन्यथा अर्थात् बिना यज्ञ के मांस खाना राक्षसविधि कहीजाती है ३१

क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा ॥ देवान्पितॄंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥ ३२ ॥

मोल लेकर वा आप उत्पन्न करके अथवा और किसी का लाकर दियाहुआ मांस देवता तथा पितरोंको देकर शेष खाय तो पुरुष दोष को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ॥ जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥

मांस खाने की विधि का जाननेवाला द्विज बिना आपत्तिकाल के देवादि की पूजनविधि के बिना मांस न खाय, क्योंकि—बिना विधि के मांस खाकर जिनका मांस वह खाता है उन करके परलोकमें वह परवश होकर उन पशुओं से खायाजाता है ॥ ३३ ॥

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥

धन के लिये मृगों को मारकर जीविका करनेवाले बहेलिये आदिकोंको वैसा पाप नहीं होता है जैसा देवता तथा पितरों के बिना दिये हुये मांस के खानेवाले को परलोक में होता है ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ॥ स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥

जो प्राणान्त होतेहुए विधिपूर्वक देवार्चन नहीं करता है और मांस खाता है वह पुरुष मरकर इक्कीस जन्मोंतक पशु होता है ॥ ३५ ॥

असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

वेदमें कहेहुए मंत्रों से प्रोक्षण आदि संस्कार न कियेहुए पशुओं को विप्र आदि कभी न खाय और शाश्वत कहिये प्रवाह की अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित विप्र आदि आपद्दशा में संस्कार किये हुए मांसों को खाय और जिनके वैदिक आज्ञाका पालन वेदपाठ यज्ञ करना कराना आदि नहीं

१ यह नियम मांसलोलुपों के लिये ही है, जो नहीं खाते हैं उनके लिये विधि नहीं है, ऐसाही आगे भी समझना।

होता है वह कभी न खावैं ॥ ३७ ॥

कुर्याद्घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा। न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥

सर्वथा मांस से निवृत्त होनेके निमित्त मनुजी उपदेश करते हैं कि अथवा यज्ञ में भी घी का अथवा चून का पशु बनावै, और वृथा पशुओं के मारने की इच्छा कभी न करै ॥३७॥

यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोह मारणम्। वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

देवताके उद्देशविना अपने लिये जो पशुओं को मारता है वह वृथा पशु मारनेवाला मरकर जितने पशुके रोम हैं उतनेही जन्मों में मारा जाता है तिससे पशुको वृथा न मारै ॥३८॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा। यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥

यज्ञकी सिद्धि के लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न कियेहैं और यज्ञ कहिये अग्निमें डालीहुई आहुति इस सब जगत्की वृद्धि के लिये होती है तिससे यज्ञ में जो वध हैं, अवध है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा। यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

औषधी, पशु, वृक्ष और पक्षी यज्ञ के लिये नाशको प्राप्त हुए फिर दूसरा जन्म होनेपर ऊँची जाति में उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥

यज्ञकर्म और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा दैवकर्म में ही मांसभक्षियों को पशु माननेयोग्य हैं अन्यत्र नहीं ऐसा मनुजीने कहा है ॥ ४१ ॥

एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः। आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४१ ॥

इन मधुपर्क आदि पदार्थों में पशुओं को मारता हुआ वेदके अर्थका तत्त्व जाननेवाला द्विज अपने को तथा पशुको उत्तमगति में पहुँचाता है ॥ ४२ ॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः। नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥

गृहस्थाश्रम में तथा ब्रह्मचर्य आश्रम में और वानप्रस्थ आश्रम में वसताहुआ प्रशस्त आत्मा वाला द्विज आपत्तिकालमें भी हिंसाको न करै क्योंकि-उसकी वेद में आज्ञा नहीं है४१

या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे। अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

वेद में कहीहुई कर्मविशेष में तथा देशकाल आदि में नियमित हिंसा को इस स्थावर जंगमरूप जगत् में अहिंसा जानै क्योंकि-वेद उस को अहिंसा कहता है और वेदसेही सब धर्मों का प्रकाश होता है ॥ ४४ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया। स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥

जो अपने सुख की इच्छा से हिंसा न करनेवाले जीवों को मारता है वह इस लोक में तथा परलोक में सुख नहीं पाता है ॥ ४५ ॥

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते

जो प्राणियों के बांधने तथा मारने के क्लेश को नहीं किया चाहता है और सब के सुख

का चाहनेवाला है वह अनन्त सुख को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥ ४७ ॥

धर्म आदि मुझ से होय ऐसा जो चिंतवन करता है और जो कल्याण करनेवाले कर्म को करता है और जिस परमार्थ के ध्यान आदि में धीरज को बांधता है उस सबको वह सहज ही में प्राप्त होता है जो कि दुःख देनेवाले डांस मच्छड़ आदिकोंको भी नहीं मारता है ॥ ४७ ॥

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

प्राणियों के मारे विना कहीं मांस नहीं उत्पन्न होता है और प्राणियोंका मारना स्वर्ग का कारण नहीं है किन्तु नरक ही कारण है तिससे मांस को छोड़देय ॥ ४८ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् । प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥

शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिर रूप घिन उपजाने वाली मांस की उत्पत्तिको जानकर और प्राणियों के मारने तथा बांधने को क्रूरकर्म जानकर सर्वप्रकार के मांस को अर्थात् कहेहुए भी मांस को न खाय तो विना कहे का क्या कहना है ॥ ४९ ॥

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् । स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥ ५० ॥

जो मनुष्य कहीहुईविधि छोड पिशाच के समान, मांस को नहीं खाता है वह लोकका प्यारा होता है और रोगोंसे भी पीडित नहीं होता है ॥ ५० ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥

अनुमंता जिसकी (सम्मति से माराजाय) विशसिता (अंगों को काटकर जुदा २ करने वाला) क्रयविक्रयी (जो मोलले और बेचै) संस्कर्त्ता (जो पाक करै) उपहर्त्ता (परोसने वाला) और खादक (खानेवाला) यह सब घातक हा हैं ॥ ५१ ॥

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

अपने शरीर के मांस को दूसरे के शरीरके मांस से जो बढाना चाहता है और देवता पितरों की पूजा नहीं करता है उससे अधिक और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥

जो सौवर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेध से यजन करता है और जो जो जन्मभर मांसको नहीं खाता है उन दोनों के पुण्यका फल समान है ॥५३॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः। न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

पवित्र फलफूलों के और वानप्रस्थों के खाने योग्य तृण धान्य समा आदि के खाने से भी वह फल नहीं मिलता है जो फल शास्त्र में नियम कियेहुए भी मांस के न खानेवाले को मिलता है ॥ ५४ ॥

मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥

इस लोक में जिसके मांस को मैं खाताहूँ परलोक में वह मुझ को खायगा, पंडित मांसशब्द का यही भाव कहते हैं ॥५५॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

मांसभक्षण में दोष नहीं है, मद्य में दोष नहीं है और मैथुन में दोष नहीं है, ऐसी प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, परन्तु शुभाशुभ कर्मों का परिणाम देखकर मनुजी कहते हैं कि छोड़ने का तो बड़ा फल है, इसका अभिप्राय यह है कि-मांसभक्षण, मदिरापान और मैथुन इन तीनों के विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वह प्रवृत्ति करानेवाले नहीं हैं क्योंकि प्रवृत्ति तो स्वयं प्राणियों को अपनी इच्छा से होतीही है अतः यह सब वाक्य प्रवृत्ति अर्थ में व्यर्थ होकर यह सूचित करते हैं कि-विहित मांसादि का भी त्याग करने से परमफल मिलता है ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ५७

ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के पिता आदिके मरनेपर, उनकी शुद्धि जैसे होती है और सुवर्ण आदि धातु की जैसे शुद्धि होती है, सो सब क्रम से आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते

बालक के दांतोंके उत्पन्न होनेपर और मुण्डन तथा यज्ञोपवीत के होनेपर जो बालककी मृत्यु होजाय तो सपिंड और समानोदक सब अशुद्ध होते हैं तैसे ही उत्पन्न होने में अशुद्ध होना कहा है ॥ ५८ ॥

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥

सपिंडोंमें मरनेका अशौच ब्राह्मणों में दश दिनका कहा है और अस्थिसंचयनके पीछे तीन दिन का अथवा एक दिन का अशौच होता है ॥ ५९ ॥

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ॥ समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥

सातवें पुरुषमें सपिंडता दूर होजाती है और समानोदक भाव तो फिर हमारे कुल में अमुक नाम का हुआ इसप्रकार जन्म और नाम दोनों के ज्ञान न होने में दूर होता है ॥ ६० ॥

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥ ६१ ॥

जैसे यह सपिंडों में दश दिन आदिका अशौच मरने में होता है तैसे ही अच्छी प्रकार शुद्धि चाहनेवाले सपिंडों को जन्म होनेपर भी दश दिनका ही सूतक होता है ॥ ६१ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६२ ॥

सकल मरणशौचमें स्पर्शन करनेका अशौच

१ क्योंकि-'मादकञ्च स्त्रियश्चैव ह्यपस्तम्भनमायुषः', अर्थात् नशीलेपदार्थ और स्त्री यह आयु के स्तम्भक हैं अतः शरीर स्थिति के लिये प्राणियों की इनमें स्वयं प्रवृत्ति होती है ॥

२ अर्थात् वेदके मंत्र ब्राह्मण दोनों भागोंको जाननेवाला होय और अग्निहोत्र भी करता होय उसका एक दिनका तथा जो केवल वेदही पढा होय और अग्निहोत्र न करता होय तो उसका तीन दिनका और जो वेदपाठ तथा अग्निहोत्र दोनों से रहित हो परन्तु स्मृति में कहीहुई अग्नि से युक्त हो तो उसका चार दिनका और सब गुणोंसे हीन होय तो उसका दश दिन का अशौच होता है ॥

समान होता है, परन्तु जन्म होने के अशौच में केवल माता पिता ही स्पर्श न करने योग्य होते हैं, यह अस्पृश्य होनेका अशौच माताको दश रात्रि का होता है परन्तु पिता स्नान करने से ही स्पर्श करने योग्य होजाता है ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्धयति ॥ वैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥

पुरुष इच्छा से वीर्यका पात करने से स्नान से शुद्ध होसक्ता है परन्तु स्वयं ही स्वप्न आदि में स्खलित होजाय तो विना स्नान के भी शुद्ध होता है, वीजका सम्बन्ध होनेसे ही जन्म और मरण में तीन दिनका अशौच जाने ॥ ६३ ॥

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥ शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ६४ ॥

तिगुने तीन दिन अर्थात् नौ दिन और एक दिन ऐसे दश दिनमें अशौच समाप्त होता है, जिनको जन्म वा मरण में तीन रात्रि वा एक रात्रि का अशौच होता है वह प्रेम के कारण शवका स्पर्श करें तो दश दिन में और जल देने वाले तीन दिन में शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ॥ प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ ६५ ॥

शिष्य आचार्य आदि असपिण्डों की मृत्यु में अन्त्येष्टि कर्मकरनेवाला होय तो शवलेजाने सपिण्डों की समान दशरात्रिमें शुद्धहोताहै ६५॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ॥ रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

स्त्रियों का तीनमास से छःमासतक का गर्भपात होजाय तो जै मास का पात होय उतने ही दिन अशौच होता है, पतिव्रता स्त्री रजस्वला होय तो रज दूर होनेपर चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होजाती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥ निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥

जिसका मुण्डन न हुआ हो ऐसे बालक के मरनेपर सपिण्डों की एक दिनरात में शुद्धि होती है और मुण्डन होकर यज्ञोपवीत से पहिले मरण होय तो तीनरात्र का अशौच होताहै ॥ ६७ ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ॥ अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

दो वर्ष पूर्ण विनाहुए बालक का मरण होय तो उसके बान्धव, शवको नगर के बाहर लेजाकर पुष्पमाला चन्दन आदि से अलङ्कृत कर के, जहां किसीका अस्थिसञ्चयन न हुआ हो ऐसी शुद्ध भूमिमें रक्खें ॥ ६८ ॥

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥ ६९ ॥

दोवर्ष से कम के बालक का अग्निसंस्कार न करें, जलदान न करें, केवल जङ्गल में काठ की समान गाड़कर किसी प्रकार का शोक न करके तीनरात्रि अशौच में बितावें ॥ ६९ ॥

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ॥ जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ ७० ॥

पिता आदि सपिण्ड पुरुष, तीनवर्ष से कमके बालक का जलदान न करें, जिसके दाँत निकल आयेहों यानामकरण होगयाहो उसका जलदान आदि कर्म करने से प्रेत सुखी होता है और

न करने से कुछ हानि नहीं है ॥ ७० ॥

"सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते" ॥ ७१ ॥

साथ पढ़नेवाले का मरण होनेपर एक रात्रिका अशौच, समानोदक के सन्तान होनेपर तीन रातका अशौच मानते हैं ॥ ७१ ॥

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥ यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः ॥ ७२ ॥

वाग्दान होकर विवाह संस्कार से पहिले स्त्रियों का मरण होनेपर पति आदि बान्धवों को तीन रातका अशौच होता है और उसके पिता की ओर के सनाभि भी इसी प्रकार तीन रात का अशौच ग्रहण करके शुद्ध होते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ॥ मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ" ॥ ७३ ॥

मरण के अशौच में मनुष्य, जो बनावटी न हो, ऐसे सैंध आदि के साथ अन्नखायं, तीन दिनतक नदी आदिमें स्नान करैं, मत्स्य मांस का भोजन न करैं और भूमिपर अलग सोवैं ॥ ७३ ॥

संनिधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः ॥ असन्निधावयं ज्ञेयो" विधिः सम्बन्धिबान्धवैः ॥ ७४ ॥

अपने नगर में हो मृतक के मरणका दिन जाननेपर मृतकाशौच की यह व्यवस्था कही, परन्तु परदेश में रहनेवाले पुरुष का मरण होने पर मरने के दिनको न जाननेपर सपिण्ड आदि की आगे कहीहुई अशौच की विधि जाननी ॥ ७४ ॥

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवा शुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥

परदेश में रहनेवाले सपिण्ड का मरण यदि दशदिन के भीतर सुनने में आवै तो दशाह में जो दिन शेष रहे हों उनमेंही अशौच समाप्त होजाता है, सपिण्ड के जन्म में भी यही विधि जाननी ॥ ७५ ॥

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

यदि विदेशी सपिण्ड का मरण दशदिन बाद सुनने में आवे तो सुनने के दिनसे तीनरात का अशौच होता है परन्तु मरने से वर्षभर के अनन्तर सुनने में आवे तो केवल स्नान सेही शुद्धि होजाती है ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ॥ सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥

दश दिन बीतनेपर ज्ञातिका मरण वा पुत्रका जन्म सुनने में आवे तो जिसमें शरीर का स्पर्श न कियाजाय ऐसा अशौच होता है उसमें पहिरे हुए वस्त्रसहित स्नानकरने से शुद्धि होतीहै ॥

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ॥ सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

देशांतर में हो, जिसके दांत न निकले हों उस बालकका वा किसी समानोदक का मरण होजाय तो पहिरेहुए वस्त्र सहित स्नान करने से तत्काल शुद्धि होजाती है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ७९ ॥

दश दिनतक के अशौच के बीच में यदि फिर किसी का जन्म वा मरण होजाय तो

प्रथम अशौच के साथमेंही उसका भी अशौच समाप्त होजाता है ॥ ७९ ॥

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ॥ तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

आचार्य के मरनेपर शिष्यको तीनरात का अशौच होता है, आचार्य के पुत्र वा स्त्री के मरने पर केवल दिनरात का अशौच होता है, यही शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥ ८१ ॥

बान्धवकी समान एक घरमें रहनेवाले वेदपाठी मनुष्य का मरण होनेपर तीन रातका अशौच होता है; माता, पुरोहित, शिष्य आदि का मरण होनेपर पक्षिणी अशौच होता है ८१

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥ अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

जिसके अधिकार में ब्राह्मणादि बसै उस अभिषिक्त राजाका मरण होनेपर सज्योति अर्थात् दिन में मरै तो दिनभें और रातमें मरै तो रातमें अशौच होता है और अश्रोत्रिय वा साङ्गोपाङ्ग वेदपाठी गुरु के मरनेपर एक दिनका अशौच होता है ॥ ८२ ॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८३ ॥

जिसका यज्ञोपवीत होगया है वह वा सपिण्ड का मरण होनेपर ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होते हैं, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है ॥ ८३ ॥

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ॥ न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

अशौचके दिनको बढ़ावै नहीं अर्थात् जो अशौच तीनदिन में समाप्त होता होय उसको दश दिनतक ग्रहण न करै, श्रौतस्मार्त्त अग्निहोत्रमें व्याघात न करै, क्योंकि–ऐसा अशौच ग्रहण करने में होम आदि में विघ्न पड़ता है, यदि पुत्रादि कोई सपिण्ड प्रतिनिधि होकर होम आदि करै तो उसमें वह अशुद्ध नहीं होता है ८४॥

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ॥ शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥ ८५ ॥

चण्डाल, ऋतुमती स्त्री, ब्रह्मवध आदि के कारण पतित, दश दिनतक जच्चा स्त्री और जिसने मुर्देको स्पर्श करा हो, इनको स्पर्श करने से स्नान करके शुद्धि होती है ॥ ८५ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ॥ सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥ ८६ ॥

प्रतिदिन श्राद्ध वा देवपूजन करने के लिये स्नान, आचमन करके पवित्र होनेपर यदि चाण्डाल आदि अशुद्ध पुरुष दीखजाय तो उत्साह के साथ, 'उदुत्यंजातवेदसं' देवंवहन्ति इत्यादि सूर्यमन्त्र और पावमानि सूक्त का यथाशक्ति जप करै ॥ ८६ ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥ आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥ ८७ ॥

मृतककी गीली हड्डी छूनेपर द्विज स्नान से शुद्ध होता है, सूखी हड्डी छूकर आचमन करके

(१) आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी— अर्थात् आनेवाले और वर्त्तमान दिनसे युक्त रात्रि को पक्षिणी कहते हैं ।

गौका स्पर्श वा सूर्यका दर्शन करने से शुद्धि होती है ॥ ८७ ॥

आदिष्टी नोदकं कुर्यादा व्रतस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ८८ ॥

माता, पिता वा आचार्य के सिवाय और सपिण्डों का मरण होनेपर, ब्रह्मचारी, जबतक अपने ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त न करै तबतक अशौच को ग्रहण करके पिण्डदान आदि प्रेत-कार्य न करै, व्रत पूरा होनेपर प्रेतकार्य के समाप्त होनेपर तीन रात्रिपर्यंत अशौच को ग्रहण करके शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥ ८९ ॥

वृथाजात (अपने धर्म को त्यागनेवाला) उत्तम वर्ण की स्त्री में नीचवर्ण के पुरुषसे उत्पन्न वर्णसङ्कर, वेदबाह्य गेरुआ वस्त्र आदि धारण करनेवाला, फाँसी आदि लगाकर प्राण त्यागनेवाला उनका जलदानादि कर्म न करै ॥

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ॥ गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

जो स्त्रियें वेदबाह्य पाखण्डधर्मधारिणी, इच्छानुसार अनेकों परपुरुषोंसे व्यभिचार करनेवाली, गर्भपात करनेवाली, पतियों का मारण करने वाली और द्विजाति की स्त्री होकर मद्यपान करनेवाली हों, इनकी ऊर्ध्वक्रिया न करै ॥९०॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९१ ॥

यज्ञोपवीत देकर सकल वेदकी शाखा पढ़ाने वाला, वेदका एकभाग पढ़ानेवाला, एक वा कई वेदों की व्याख्या बतानेवाला यह और पिता, माता इनका दाह वा शवको उठाना यह करके ब्रह्मचारी का व्रत भङ्ग नहीं होता है इनके सिवाय और का दाह आदि करने से व्रत नष्ट होजाता है ॥ ९१ ॥

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥ पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२

शूद्रका मरण होयतो उसको नगर के दक्षिण की ओर के द्वारमें को निकालकर श्मशान में लेजाय, वैश्य का शव पश्चिम की ओर के द्वारमें को, क्षत्रिय का शव उत्तर की ओर के द्वार में को और ब्राह्मण का शव पूर्व की ओर के नगरद्वार में को श्मशान में लेजाय ॥ ९२ ॥

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ ९३ ॥

राजा, ब्रह्मचारी, चान्द्रायण आदि व्रत करने वाले, यज्ञ करनेवाले, इनको सपिण्ड आदि के मरण में अशौचदोष नहीं होता है, क्योंकि उससमय राजा अभिषेकरूप इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मचारी चान्द्रायण आदि व्रतरूप आधिपत्य तथा यज्ञकरनेवाला गोसेवा आदि यागरूप आधिपत्य को प्राप्त होकर ब्रह्म की समान निष्पाप होते हैं॥९३॥

राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ॥ प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

राज्यपद पर स्थित राजा को सद्यःशौच कहा है, क्योंकि-राजा दुर्भिक्ष में अन्नदान, उत्पात के समय शान्ति हवन आदि करके जगत् का उपकार करता है, सिंहासन पर बैठकर प्रजाओं की रक्षा आदि करता है अतः

सिंहासन पर चढ़नाही सद्यःशौच का कारण है॥

डिंबाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥

राजारहित युद्ध में मरेहुए, बिजली गिरने से वा राजदण्ड से मरण को प्राप्तहुए अथवा गौ ब्राह्मण के निमित्त मरण को प्राप्तहुए वा राजा जिसको अशौच न होना चाहता है इन सब का सद्यःशौच होता है ॥ ९१ ॥

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ॥ अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

राजा चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, कुबेर, वरुण और यम इन आठ दिक्पालों की मूर्ति को धारण करता है ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥

राजा दिक्पालों के अंश से शरीर धारण करता है इस कारण उसको अशौच का विधान हैही नहीं, क्योंकि—जो दूसरे को शौच अशौच का विधान करने की शक्ति रखता है उसको अशौच नहीं होता, शौच अशौच तो पराधीन मनुष्यों को होता है ॥ ९७ ॥

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ॥ सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

जो क्षत्रिय संग्राम में उठेहुए शस्त्रों से नहीं डरता और सन्मुख होकर तहाँ प्राण छोड़देता है वह तत्काल ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों का फलपाता है और तत्काल शुद्ध होजाता है, यही शास्त्र का तात्पर्य है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ॥ वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥

ब्राह्मण अशौच के अन्त में श्राद्धादिकके अनन्तर जल का स्पर्श करके, क्षत्रिय हाथी, घोड़ा आदि वाहन वा धनुषबाण का स्पर्श करके, वैश्य चाबुक या लगाम का स्पर्श करके और शूद्र बंश आदि के दण्डको स्पर्श करके शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ॥ असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥ १०० ॥

हे द्विजोत्तमो ! यह सपिण्डों के मरण का अशौच तुमसे कहा अब सब असपिण्डों के मरण में का अशौच कहते हैं,सुनो ॥१००॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ॥ विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥ १०१॥

विप्र असपिण्ड द्विज का बन्धु की समान दाह आदि करके तीन रात में शुद्ध होता है और माता के बान्धवों का दाह आदि करके भी तीन रातका ही अशौच होता है ॥ १०१ ॥

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति ॥ अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ १०२ ॥

असपिण्ड ब्राह्मण, यदि किसी के शव का दाह करने आदि पर उसका अन्न खाकर उसके घर रहे तो दशदिन का अशौच होता है, गोत्रवाले का दाह आदि करके तीनरात का अशौच कहा है अन्न भोजन आदि का दोष बढ़कर दशदिन का अशौच उचित ही है, यदि अन्न भोजन न करके उसके घरमें न रहै तो एक दिन रात में ही शुद्ध होजाता है ॥ १०२ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञाति-

मेव च॥स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ १०३ ॥

ज्ञाति का हो या अन्य ज्ञाति का हो, स्नेहवश इच्छा से सब के साथ जाकर वस्त्रसहित स्नान करके अग्निका स्पर्शकर घी चाटने से शुद्धि होती है ॥ १०३ ॥

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ॥ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥ १०४ ॥

अपनोंके होते हुए मृत ब्राह्मणको शूद्रों से न उठवावै, क्योंकि-शूद्रके स्पर्शसे दूषित होने पर उसको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती है॥१०४॥

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ॥ वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥१०५॥

ब्रह्मज्ञान, तप, अग्नि, हविष्यान्न, मृत्तिका, जल, मन, लीपना, सत्कर्म, सूर्यदर्शन और समय यह सब प्राणियोंको शुद्ध करनेवाले हैं॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ॥ योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥१०६॥

मृत्तिका जल आदिसे शरीरकी शुद्धिकी अपेक्षा अर्थका शौच (अन्यायसे पराया धन न लेना) उत्तम कहा है। जो धनके विषयमें शुचि है वही शुचि है, मृत्तिका जल आदि से शरीरको धोलेनेवाला शुचि नहीं है १०६॥

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥१०७॥

पण्डित किसीका अपकार करनेपर उसका बदला न लेकर क्षमा करते हैं उससे ही उनकी शुद्धि होती है, जो अकर्त्तव्यकर्म करते हैं वह दानसे शुद्ध होते हैं, जो छुपाकर पाप करते हैं वह जपसे शुद्ध होते हैं, वेदज्ञ ब्राह्मण तपस्यासे शुद्ध होते हैं ॥१०७॥

मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति ॥ रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥१०८॥

मलिन वस्तु मट्टी और जल आदिसे शुद्ध होती है, नदीमें कफ आदि पड़जाने पर प्रवाह से बहजाने पर शुद्धि होती है, मनमें परपुरुष का चिन्तवन करनेवाली स्त्री रजस्वला होनेपर शुद्ध होती है,ब्राह्मण संन्यास से शुद्ध होता है॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥१०९॥

शरीरमें मैल आदि लगजाय तो जलसे शुद्धि होती है,मन खोटे विचारसे दूषित होय तो सत्यभाषणसे शुद्ध होता है, और विपरीत ज्ञानसे नष्टहुई बुद्धि तत्त्वज्ञानसे शुद्ध होती है॥

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ॥ नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥११०॥

यह शरीरकी शुद्धिका विशेष निर्णय तुमसे कहा, अब नानाप्रकार के द्रव्योंकी शुद्धिका निर्णय सुनो ॥ ११० ॥

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ १११ ॥

सुवर्ण आदिके बने तैजस पदार्थ, मरकत आदि मणि, और सकल पत्थरकी वस्तु भस्म, जल वा मट्टीसे शुद्ध होती है ऐसा मनु आदिकोंने कहा है ॥ १११ ॥

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति ॥ अब्जमश्ममयं चैव राजतं

चांनुपस्कृतम् ॥ ११२ ॥

जूठनके लेपसे रहित सुवर्णका पात्र जलसे शुद्ध होता है, शंख आदि जलमें की वस्तु, पत्थरकी वस्तु और चांदीके पात्र यादि नकासीदार नहों तो केवल जल से ही शुद्ध होजाते हैं ॥ ११२ ॥

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥ ११३ ॥

क्योंकि-जल और अग्निके संयोग से सुवर्ण और चाँदी की उत्पत्ति हुई है अतएव यादि सुवर्ण और चाँदी की उत्पत्तिके कारण हुए तो इन दोनोंसे इनकी शुद्धि करना श्रेष्ठ है॥११३॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ॥ शौचे यथार्हं कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ ११४ ॥

ताँबा, लोहा, काँसी, पीतल, राँग और सीसा इनकी भस्म, खटाई और जल से शुद्धि होती है अर्थात् लोहा जल से, काँसी भस्म से, ताँबा और पीतल खटाई से शुद्ध होता है ॥ ११४ ॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ॥ प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥ ११५ ॥

सब द्रवपदार्थ (घीआदि) किसी प्रकार दूषित होजायँ तो प्रादेशनापके दोकुशों से बिलोडित करने पर शुद्ध होते हैं, शय्या आदि स्थूल वस्तु जल छिड़कने से शुद्ध होती है, काठ का पात्र आदि किसीप्रकार उतरजाय तो छिलने से शुद्ध होता है ॥ ११५ ॥

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ११६ ॥

यज्ञकर्म में चमसा आदि तथा औरभी यज्ञ के पात्र, पहिले हाथ से रगड़कर पीछे जल से धोने पर शुद्ध होते हैं ॥ ११६ ॥

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥ ११७ ॥

चरु, स्रुक्, स्रुव, स्फय (तलवार के आकार का काष्ठ) सूप, गाडा, मूसल और ऊखल आदि यज्ञ की वस्तु, चिकनी होनेपर गरम जल से शुद्ध होती हैं और चिकनी न हों तो केवल जल से ही शुद्ध होजाती हैं ॥ ११७ ॥

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ ११८ ॥

अन्नका ढेर और बहुत से इकट्ठे वस्त्र, जिनको कि एक पुरुष न उठासके वह चण्डाल आदि से छूजायँ तो जल छिड़कने से शुद्ध होजाते हैं और इससे थोड़े हों तो धुलवाने पर ही शुद्ध होते हैं, मनुआदिका ऐसा कथन है ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ ११९ ॥

छूनेयोग्य पशुका चमड़ा, बाँसकी बनी वस्तु इनकी शुद्धि वस्त्र की समान जाननी और शाक, मूल तथा फलों की शुद्धि अन्न के समान जाननी ॥ ११९ ॥

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ॥ श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥

रेशमी और ऊनी वस्त्र खारी मट्टी से शुद्ध होते हैं, नेपाल के कम्बलों की शुद्धि रीठों से होती है, अण्डी की शुद्धि बेलके फलों से और सन के वस्त्रों की शुद्धि सफेद सरसों के चूरेसे होती है ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥

शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेनवा ॥

शङ्ख, सींग, हड्डी और हाथीदांत के पदार्थ इन सबकी शुद्धि सनके वस्त्रकी समान गोमूत्र से अथवा जलयुक्त सफेद सरसों के चूरे से होती है ॥ १२१ ॥

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पैलालं चैव शुध्यति ॥ मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ १२२ ॥

तृण (पियाल) और काठ चाण्डाल आदि से छूजायँ तो जल छिडकने से शुद्ध होजाते हैं, घर रजस्वलाके निवास से दूषित होय तो बुहारने और गोबर आदि के लीपने से शुद्ध होता है तथा मट्टीका पात्र जूठन के स्पर्श से दूषित होजाय तो फिर अग्निमें पकाने से शुद्ध होता है ॥ १२२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैवं शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ १२३ ॥

मट्टीका पात्र यदि मद्य, पेशाब, विष्ठा,पीव वा रुधिरसे छूजाय तो वह फिर पकानेसे शुद्ध नहीं होसक्ता ॥ १२३ ॥

संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ॥ गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः ॥ १२४ ॥

बुहारना, गोबर आदि से लीपना, गोमूत्रसे छिडकना, छीलडालना और एक दिनरात गौ को रखना, इन सबसे भूमि की शुद्धि होती है अर्थात् जूठन, विष्ठा, मूत्र और चण्डाल आदि के वाससे जितनी भूमि अपवित्र होती है वह कहीं पूर्वोक्त पांचों युक्ति करने से और कहीं इनमें से एक ही उपाय करने से शुद्धि होती है ॥ १२४ ॥

पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ॥ दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥

पक्षीका जूठा कराहुआ, गौ का सूँघाहुआ, चरण से ठुकरायाहुआ और जिसके ऊपर छींकदिया हो या जिसमें केश, कीडा आदि पडगया हो ऐसा भक्ष्य 'चबैना' मट्टी डालने से शुद्ध होता है ॥ १२५ ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ॥ तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ १२६ ॥

जिस किसी वस्तुमें मलमूत्र आदि अपवित्र वस्तु लगजाय उसका गन्ध वा लेप जबतक दूर न हो तबतक सकल वस्तुओं के शुद्ध करने में मट्टी और जल से शुद्ध करै ॥१२६॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ १२७ ॥

प्रथम जिस वस्तुका किसीप्रकार का दूषित होना देखा न हो, दूसरे जिसको दूषित होनेके सन्देह के कारण जल से धोलियाहो, तीसरे दूषित होने का सन्देह होनेपर जिसकी ब्राह्मणों ने पवित्र कहकर प्रशंसा की हो, देवताओं ने ब्राह्मणों को यह तीन पवित्र कर दिये हैं ॥ १२७ ॥

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ॥ अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ १२८ ॥

जिसका जल पीने से गौ की पिलास की शान्ति हो उतना जल यदि पवित्र भूमि में होय और गन्ध, वर्ण तथा रसयुक्त होय तथा अपवित्र वस्तु उसमें न पडी होतो पवित्र होता है ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ १२९ ॥

माली यदि हाथ विनाधोये भी देवता ब्राह्मणों के लिये माला बनावै तो वह शुद्ध होती है, क्योंकि-कारीगरों का हाथ इस विषय में स्वाभाविक पवित्र होता है, पकेहुए अन्नके सिवाय दूकान पर बेचने के लिये रक्खेहुए सब पदार्थ अनेकों के हाथों का स्पर्श होने पर भी शुद्ध होते हैं। ब्रह्मचारी का भिक्षान्न, स्त्रियों के आचमन विना करे देने पर और मार्ग में को लेजाने पर भी शुद्ध रहता है, यह शास्त्र की मर्यादा है॥ १२९॥

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने। प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥ १३०॥

स्त्रियों का मुख सदा पवित्र है, काक आदि की चोंच से कटाहुआ फल सदा पवित्र है, गौको दुहते में बछडे का मुख पवित्र है और मृगया में श्वान का मुख पवित्र है॥ १३०॥

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत्। क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः॥ १३१॥

श्वानों के मारेहुए पशु का मांस, हिंसक पशु पक्षी को मारकर लायाहुआ मांस, चण्डाल आदि व्याध का लायाहुआ मांस, यह सब मांस, मांसाहारियों के लिये पवित्र हैं, ऐसा मनुजी ने कहा है॥ १३१॥

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः। यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः॥ १३२॥

नाभिसे ऊपर जो इन्द्रियोंके छिद्र हैं वह सब पवित्र हैं, और जो नाभिसे नीचे हैं वह इन्द्रियें तथा देहसे निकले हुए सब मल अपवित्र हैं॥ १३२॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः। रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत्॥ १३३॥

मक्खी अपवित्र वस्तुको स्पर्श करने परभी पवित्र है, मुखमें से निकले हुए छोटे २ जल के कण, पतित आदिकी छाया, गौ, घोड़ा, सूर्यकी किरणें, धूलि, भूमि, वायु, और अग्नि यह सब चण्डाल आदिसे छूने परभी पवित्र रहती हैं॥ १३३॥

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत्। दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि॥ १३४॥

बिष्ठा मूत्रसे लिप्त गुदा आदिको मट्टी और जलसे शुद्ध करै, अगले श्लोकमें कहेहुए देहमें के वसा आदि बारह प्रकारके मलोंमें पहिले छै की मट्टी और जलसे शुद्धि होती है तथा पिछले छै की केवल जलसे शुद्धि होती है॥ १३४॥

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विट् घ्राणकर्णविट्। श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥ १३५॥

चर्बी, वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र, बिष्ठा, नाकका मल, कानका मैल, कफ, नेत्रका जल, नेत्रका मल और पसीना यह बारह प्रकारका शरीरका मल है॥ १३५॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश। उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता॥ १३६॥

बिष्ठा, मूत्र का त्याग करके लिङ्ग में एक बार, गुदा में तीनबार, बायेंहाथ में दसबार और दोनों हाथ में सातबार मृत्तिका और

१ नापणीयमन्नमश्नीयात्–दुकान पर बिकताहुआ पक्वान्न न खाय, इस शास्त्र के वचनानुसार बाजार का पक्वान्न खाना निषिद्ध है।

जल से शुद्धि करे॥ १३६॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥ त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्॥ १३७॥

गृहस्थ पुरुष, पूर्ववचन में कहे अनुसार शुद्ध होय, ब्रह्मचारी को इससे दूना शौच कहा है, वानप्रस्थ को तिगुना और संन्यासी को चौगुना कहा है॥ १३७॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत॥ वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा॥ १३८॥

विष्ठा मूत्र को त्यागकर विधिपूर्वक शुद्ध होय, और आचमन करके सकल इन्द्रियों के छिद्रों को छुवै, वेदाध्ययन की इच्छा होय तो दूसरे अध्याय में जो आचमन करने की विधि कही है उसको व्रत का अङ्ग जानै और अन्न भोजन करके सदा इसीप्रकार आचमन करै॥ १३८

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्॥ शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत्॥ १३९॥

जो देह की शुद्धि चाहै वह पहिले तीनवार जल का आचमन करै, दोबार मुख धोवै, स्त्री और शूद्र शरीरशुद्धि की इच्छा करके एक बार आचमन करै॥ १३९॥

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्॥ वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम्॥ १४०॥

ब्राह्मण की सेवा करताहुआ शूद्र, प्रतिमास केश मुड़वावै, जन्म और मरण में वैश्य की समान अशौच ग्रहण करै और ब्राह्मण का जूठा खाय॥ १४०॥

१ यद्यपि एकवार धोने से ही दुर्गन्ध जासक्ती है तथापि इतना ही बार मट्टी मलकर जल से धोना चाहिये।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं पतन्ति याः॥ न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम्॥ १४१॥

मुखमें से जो शरीर पर छींटें पडती हैं वह जूठा नहीं करती हैं, मूछों के बाल जो मुख में जाते हैं वह भी जूठापन नहीं करते हैं और दांतों के छेदों में के अन्नादि से भी जूठन नहीं होती है॥ १४१॥

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्॥ भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ १४२॥

दूसरे को आचमन के लिये जल देने में जो जल की बूँदें जल देनेवाले के पैरों पर गिरती हैं वह शुद्ध भूमि में के जल की समान होती हैं उनसे अशुद्धता नहीं होती है॥ १४२॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन॥ अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्॥ १४३॥

कन्धेपर रक्खेहुए बोझे को उठानेवाला किसी जूठे मुखवाले से छूजाय तो उस बोझसहित, आचमन करके शुद्ध होता है॥ १४३॥

वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्॥ आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्॥ १४४॥

दस्त वा वमन होनेपर स्नान करके घी चाटै, यदि भोजन करके वमन करै तो आचमन करके ही शुद्ध होजाता है, ऋतुमतीके साथ समागम करके स्नान करना कहा है॥ १४४॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च॥ पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन्॥ १४५।

सोकर, छींककर, भोजन करके, खखार

थूककर, झूठ बोलकर और जल पीकर और वेद पढ़नेको होय तो शुद्ध होनेपर भी आचमन करै ॥ १४५ ॥

एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च॥उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥ १४६ ॥

सब वर्णोंके जन्म मरण के अशौचकी विधि और सब वस्तुओंकी शुद्धि की विधि तुमसे कही अब स्त्रियोंके धर्म सुनो ॥ १४६ ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ १४७ ॥

स्त्री बालिका होय वा युवती होय अथवा वृद्धा होय, घर में भी पति आदि की आज्ञा विना स्वतन्त्रता से कोई कार्य न करै ॥१४७

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥ १४८ ॥

बालकपनमें पिताके वशमें, यौवनमें पति के वशमें और पतिका मरण होनेपर पुत्र के वशमें रहै, स्त्री कदापि स्वाधीन रहने योग्य नहीं है ॥ १४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥ १४९ ॥

पिता, पति, पुत्र इनसे स्त्री कभी अलग न होय, क्योंकि—स्त्री इनसे अलग होनेपर पति के कुलको और पिताके कुलको निन्दित करती है ॥ १४९ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

पतिके रूठने परभी स्त्री सदा पतिसे प्रसन्न रहै, घरके काममें चतुरता सीखै, घरकी सामग्री सफा सुथरी रक्खै और खर्च करनेमें हाथको रोकै ॥ १५० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥ १५१ ॥

जिसको पिता अपने आप देदेय वा पिता की सम्मतिसे भ्राता जिसको देय, उस पति की जीवतेमें सेवा करे और पतिका मरण होजाय तोभी उसका तिरस्कार न करै किन्तु ब्रह्मचर्य से रहै ॥ १५१ ॥

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ १५२ ॥

स्त्रियोंके विवाहके समय जो स्वस्तिवाचन वा प्रजापतियाग (प्रजापति के निमित्त होम) कियाजाता है वह स्त्री पुरुषकी अभीष्टसिद्धि के लिये मङ्गलकर्म है और विवाहसे पहिले वाग्दान जो कियाजाता है उससे ही स्त्री के ऊपर पतिका स्वामित्व होजाता है ॥१५२॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः

विवाह करनेवाला जो पति ऋतुकालमें और ऋतुसे अन्यकाल में भी स्त्रीसे समागम करै, वह स्त्रीको इसलोक में और परलोकमें सदा सुखसम्पदा देनेवाला है ॥ १५३ ॥

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥ उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ १५४ ॥

पति सदाचारहीन, अन्य स्त्रीमें आसक्त वा विद्यादि गुणहीन होय तोभी पतिव्रता स्त्री सदा देवसेवाकी समान उसकी सेवा करै॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं ना-

प्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥

जैसे पुरुषका यज्ञ ऋतुमती स्त्रीके बिना अन्य स्त्रीके साथ भी होसक्ता है तैसे स्त्रीका यज्ञ पुरुषके बिना नहीं होसक्ता, स्वामीकी आज्ञाके बिना व्रत नहीं होसक्ता, उपवास नहीं होसक्ता, केवल पतिकी सेवासे ही स्त्री स्वर्गलोकको जासक्ती है ॥ १५५ ॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥ १५६ ॥

जो स्त्री पतिके साथ इकट्ठे करेहुए पुण्यसे स्वर्गको जाना चाहती है वह पतिव्रता स्त्री स्वामीकी जीवितदशामें स्वामीकी इच्छाके प्रतिकूल कोई कार्य न करे और पतिके मरने पर, पत्यन्तर ग्रहण आदि पतिका अप्रिय कार्य न करै ॥ १५६ ॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १५७ ॥

पतिका मरण होनेपर स्त्री पवित्र पुष्प,फल, मूल आदि अल्पाहार करके शरीरको क्षीण करै परन्तु अन्य पुरुषका नाम भी न लेय ॥

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ १५८ ॥

एक पतिपरायण स्त्रियोंके परमधर्मको चाहनेवाली, क्षमागुणयुक्त, नियम से रहनेवाली, पतिव्रता स्त्री, मधु-मांस मैथुनका त्यागरूप ब्रह्मचर्य धारणकर देहपातपर्यन्त सदाचरण में रहै ॥ १५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥ १५९ ॥

सन्तान न होनेसे स्वर्ग नहीं होता है ऐसा नहीं है । बालखिल्यादि अनेकों सहस्रों ब्रह्मचारी भी सन्तान उत्पन्न न करके ब्रह्मचर्यके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्तहुए, तैसेही पतिव्रता स्त्रीको सन्तान न होनेपरभी स्वर्ग मिलता है॥

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

सदाचारसे रहनेवाली स्त्री, स्वामीकी मृत्यु होनेपर ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करै, अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न न करै, तो वह पुत्रहीन होनेपर भी पूर्वोक्त ब्रह्मचारियोंकी समान स्वर्ग को जाती है ॥ १६० ॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ॥ सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ १६१ ॥

पतिके मरनेपर, सन्तानके लोभसे जो स्त्री अन्यसे सन्तान उत्पन्न करती हुई पतिका तिरस्कार करती है वह इसलोकमें निन्दित होती है और पतिलोकको भी नहीं पाती है॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ १६२ ॥

पतिसे अन्यके द्वारा उत्पन्न करी हुई संतान शास्त्रानुकूल उस स्त्रीकी नहीं होती है और विवाहितासे अन्य स्त्री में उत्पन्न करी हुई प्रजा उत्पन्न करनेवालेकी भी नहीं है, अतएव सदाचारवती स्त्रियोंके लिये कभी किसी शास्त्रमें भी दूसरे पतिका उपदेश नहीं है॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥ १६३ ॥

जो स्त्री समानजातिके पतिको त्यागकर उत्तम जाति ब्राह्मणादिको ग्रहण करती है,वह लोकमें निन्दित ही होती है और उसको सब परपूर्वा अर्थात् पहिले यह दूसरेकी थी ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥ शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ १६४ ॥

पतिके सिवाय दूसरेसे समागम करे तो स्त्री इसलोकमें निन्दित होती है, फिर गीदड़ीका जन्म पाती है और पापियोंको प्राप्त होनेवाले रोगोंसे पीड़ित होती है ॥ १६४ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ १६५ ॥

जो स्त्री काया-वाणी-मनको वशमें रखकर पति का उल्लंघन नहीं करती है वह पतिलोक में जाती है और सत्पुरुष उसको साध्वी कहते हैं ॥ १६५ ॥

अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ॥ इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ १६६ ॥

जो स्त्री काया-वाणी-मनको वशमें रखकर इसप्रकार की स्त्रियों के चरित्रानुसार बर्त्ताव करके समयको बिताती है वह इसलोक में सबसे अधिककीर्त्तिपाती है और मरकर पतिलोक में जाती है ॥ १६६ ॥

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १६७ ॥

इसप्रकार के सदाचार में तत्पर स्त्री यदि पति के मरण से पहिले मरजाय तो धर्मात्मा द्विजपति, अग्निहोत्र की अग्नि से और यज्ञके पात्रों से उसकी दाहादि क्रिया करै ॥ १६७ ॥

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ॥ पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १६८ ॥

सुशीला स्त्री का प्रथम मरण होजाने पर उसका दाह आदि अन्त्येष्टिकर्म करके यदि पुरुष गृहस्थाश्रम की इच्छा करे तो पुत्रवान्हो वा पुत्रहीन हो फिर विवाह करके श्रौतस्मार्त्त अग्नि को ग्रहण करै ॥ १६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

इति मनुस्मृतौ पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तृतीय आदि अध्याय में कहीहुई इस विधि के अनुसार प्रतिदिन पञ्चयज्ञको न छोड़े, और स्त्री को विवाहविधि से ग्रहण करके परमायु के दूसरे भाग में घर बसै १६९ ॥

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहितः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ॥ वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥

स्नातक द्विज, इस विधि से गृहस्थाश्रम में बसकर निश्चय करके आगे कहेहुए धर्म के अनुसार विषयवासनाहीन होकर वानप्रस्थ आश्रमको स्वीकार करै ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

(१) अनाश्रमी न तिष्ठेत क्षणमेकमपि द्विजः-अर्थात् ब्राह्मण को एकक्षण भी विनाआश्रम के रहना निषिद्ध है।

गृहस्थ जिस समय अपने शरीर के चर्म में सकोड़ने, केशो में सफेदी और पुत्र के पुत्र हुआ देखै उस समय वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करै ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ॥ पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

गेहूं आदि ग्रामके आहार और घोड़ा हाथी आदि सामग्रीको त्यागकर यदि स्त्री बनको न जानाचाहे तो उसे पुत्रोंको सौंपकर और जाना चाहे तो साथही लेकर बनको चलाजाय ॥३॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ॥ ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

श्रौत और आवसथ्य अग्नि तथा स्रुक्स्रुव आदि अग्नि की सामग्री को लेकर, ग्राम से वनमें जाकर इन्द्रियोंको वसमें करेहुए तहाँ वसै॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ॥ एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

नीवार आदि नानाप्रकार का पवित्र अन्न और फलमूल आदि भोजन करके विधिके अनुसार पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञ का अनुष्ठान करै॥

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ॥ जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

मृगछाला कौपीन वा भोजपत्र आदि पहिनै और प्रातःसायङ्काल को स्नान करै,सदा जटा, डाढ़ीमूछ,नख और लोम धारण करै ॥ ६ ॥

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ॥ अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ७ ॥

जो भोजन करे उसमें से बलिवैश्वदेव करै, नित्य श्राद्ध करै, भिक्षुकको भिक्षादेय, आश्रम में आयेहुये अतिथियोंका जल, फल, मूलादि से सत्कार करै ॥ ७ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ॥ दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

सदा वेद पढ़ने में लगार है, सरदी गरमी आदि द्वन्द्वोंको सहे, सबका उपकार करै, मन को बस में रक्खै, नित्यदान करै, किसीसे दान नलेय, सब प्राणियोंपर दयाकरै ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥

वैतानिक अग्निहोत्र का हवन करै, श्रुति और स्मृति में कहेहुए दर्श पौर्णमास यज्ञको ठीक समयपर यथा शक्ति अवश्य करै ॥ ९ ॥

ऋक्षेष्ट्याग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ॥ उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षायणमेव च ॥ १० ॥

नक्षत्रयाग, नवशस्येष्टि, चातुर्मास्ययाग, उत्तरायणयाग और दक्षिणायनयाग इन सब श्रुतिमें कहेहुए यागों को विधिपूर्वक करै ॥१०॥

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥

बसन्त और शरदृतु में उत्पन्न पवित्र नीवार आदि अन्न अपने आप लाकर उसका

(१) विधि के अनुसार प्रतिदिन गृहस्थ-अवस्थामें जो अग्नि होम के लिये घर में स्थापित करीजाती है उसको 'गार्हपत्याग्नि' कहते हैं, इस कुण्ड में की अग्निको आवहनीय और दक्षिणाग्नि के कुण्डमें मिलाने को 'वितान' कहते हैं, उसमें जो अग्निहोत्र होम कियाजाय उसका नाम 'वैतानिक' अग्निहोत्र है।

पुरोडाश और चरु बनाकर शक्तिके अनुसार अलग २ याग आदि करै ॥ ११ ॥

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ॥ शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

वनमें उत्पन्नहुए नवार आदि से बनाये हुए उचित हविका देवताओं के निमित्त होम करके शेषरहा हवि आप खाय, लवण अपना बनाया हुआ खाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ १३ ॥

जल थल में उत्पन्नहुए सब शाक, बनमें के पवित्रवृक्षों के फूल, मूल, फल, इंगुदी (जियापोते) आदि के फल का तेल भक्षण करै ॥

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ॥ भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

मधु, मांस, भूमि और वृक्षों में के छत्रक, मालवादेश का भूस्तृण नामक शाक, सैंजने का शाक, लहसौडे के फल यह सब त्यागदेय ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥

वानप्रस्थ यदि सालभर के योग्य भोजन का पदार्थ इकट्ठा करै तो आश्विनमें पहिले का इकट्ठा करा नीवारादि अन्न, पुरानेवस्त्र, शाक फलमूलादि सब त्यागदेय ॥ १५ ॥

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ॥ न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

हल जोती हुई भूमिमें से उत्पन्न अन्न आदि यदि किसीने त्याग दिया हो तथापि उसको वानप्रस्थ न खाय, भूँखसे कातर होकर भी ग्राममें उत्पन्न हुए फल मूलादि न खाय॥

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ॥ अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥

वनके अन्नको अग्निमें पकाकर खाय, वा समयपर पके हुए फलादि खाय,अथवा पत्थरों से कुचलकर खाय अथवा दांतों को ही ओखली मूसल बनाकर खाय ॥ १७ ॥

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्मासंसंचयिकोऽपि वा ॥ षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ १८ ॥

एक दिनके खाने योग्य अथवा एकमास के योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा एक वर्षके निर्वाह योग्य नीवार आदि इकट्ठा करै ॥ १८ ॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥

सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लाकरके सांयंकाल भोजन करै अथवा दिनही में अथवा चौथे कालमें भोजन करनेवाला होय,सायंकाल, प्रातःकाल का भोजन मनुष्यों का देवताओं का बनाया हुआ है वहां एकदिन व्रत करके दूसरे दिन संध्याको भोजन करै अथवा अष्टमकालिक कहिये तीन रात व्रत करकै चौथे दिन की रात में भोजन करै ॥ १९ ॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥ २० ॥

कृष्णपक्षमें एक एक पिंड घटावै और शुक्ल पक्षमें एक एक बढ़ावै इत्यादि ग्यारहें अध्याय

मे वक्ष्यमाण चांद्रायण व्रतोंसे जीवै ॥२०॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा॥ कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः॥

अथवा कालसे पकेहुए, अग्निसे नहीं पके और वृक्षोंसे आप गिरे हुए फलोंसे जिये, और वानप्रस्थ के धर्मको प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थिर रहै ॥ २१ ॥

भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्॥ स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः २२

केवल भूमिमें लोटता हुआ आवै जाय अर्थात् स्थान आसन आदि परसे एकवार उठै,एकवार घूमै, आवश्यक भोजन आदिको छोड़कर यह नियम है, अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिनभर खडा रहै और कुछकाल बैठा रहै बीचमें फिरै नहीं और संध्या, प्रातः तथा मध्याह्न में स्नान करै ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥ आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥

ग्रीष्मऋतुमें चारों ओर रक्खी हुई चार अग्नियों के और ऊपर सूर्य के तेज से अपने को तपावै और वर्षाऋतु में वर्षा के समय खुले स्थान में शरीरको विनाढके स्थित होय और हेमंतऋतु में गीला वस्त्र पहिरे इसप्रकार क्रम२ से तपस्याको बढ़ावै ॥ २३ ॥

उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत्॥ तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः॥२४॥

तीनोंकाल में स्नान करके देवता ऋषि और पितरोंका तर्पण करै तथा और भी पक्ष तथा मासके व्रत आदि रूप तीव्रतप करता हुआ अपने शरीर को सुखावै ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ॥ अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥

वानप्रस्थ शास्त्र के विधान के अनुसार भस्म आदि को पीकर तथा श्रौत अग्नियों को अपने भीतर स्थापित करके अर्थात् भोजन करके मौनव्रती हो, फलमूल भोजन करके छः मास नियम के अनन्तर अग्नि और घर से रहित होजाय ॥ २५ ॥

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः॥शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः॥

सुख के कारणों में उपाय न करै, स्त्री सम्भोग आदि न करै, भूमि में सोवै और निवास के स्थानों में ममता न करके वृक्षों के नीचे रहै ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥

फलमूल न मिलै तो वानप्रस्थ ब्राह्मणों से प्राणों की रक्षाके योग्य भिक्षा लावै और उनसे न मिलनेपर अन्य वनके बसनेवाले गृहस्थ-ब्राह्मणों से लावै ॥ २७ ॥

ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शर्कलेन वा ॥ २८ ॥

ऐसी भिक्षा न मिलने पर ग्रामसे पत्तोंके दोनेमें वा सरवे आदिके टुकड़ेमें अथवा हाथों ही में भिक्षा लाकर वानप्रस्थ आठ ग्रास भोजन करै ॥ २८ ॥

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ॥ विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥

वानप्रस्थ इन नियमोंको तथा वानप्रस्थ के शास्त्र में कहेहुए अन्य नियमों काभी सेवन करै और विद्या तपकी वृद्धि के लिये तथा

शरीर की शुद्धि के लिये उपनिषदों में पढ़ीहुई ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवालीं अनेकों श्रुतियों का अभ्यास करै ॥ २९ ॥

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ॥ विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

क्योंकि यह उपनिषद् ऋषियों, संन्यासियों तथा वानप्रस्थों करके अद्वैत ब्रह्म के ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये एवं शरीर की शुद्धि के लिये सेवन कियेगये हैं अतः इनका सेवनकरै॥३०॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः॥ आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥

जिसकी चिकित्सा न होसकै ऐसे रोग आदि के उत्पन्न होनेपर अपराजिता (ईशाणकोण की दिशा) का आश्रय करके योगनिष्ठ होकर जल तथा पवनका आहार करता हुआ शरीर के गिरनेतक सीधा चलाजाय यह मरण शास्त्र में कहा है इसमें दोष नहीं है ॥ ३१ ॥

आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ॥ वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

इन पहले कहेहुए महर्षियों के अनुष्ठानोंमें से किसी एक से शरीरको छोड़कर दुःख के शोक और भयसे रहित होकर विप्र ब्रह्मलोक में पूजाको प्राप्तहोता है अर्थात् मोक्ष पाता है ॥

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥

ऐसे वनमें विहार करके ऐसे आयु के तीसरे भाग में कुछ कालतक वानप्रस्थों के आश्रम में विहार करके अर्थात् विषयानुरागदूर होनेपर आयु के चौथे भागमें अर्थात् आयुके शेष समय में सकल विषयों के संगको छोड़कर संन्यास आश्रम को स्वीकार करै ॥३३॥

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ॥ भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

पहले पहले आश्रमसे आगे आगेके आश्रम में जाकर अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम में और गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थाश्रम में जाकर शक्ति के अनुसार बीतहुए आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसी भिक्षा तथा बलिदान के बहुतदिनों तक करने से थककर संन्यास आश्रम का अनुष्ठान करता हुआ परलोक में मोक्षके लाभ से ब्रह्मरूप ऋद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ ३५ ॥

ऋषि-ऋण, देव-ऋण, पितृ-ऋण इन तीन ऋणों को दूर करके मोक्ष के साधन संन्यास में मन लगावे, उन ऋणों को दूरकिये बिना जो मोक्ष के साधन चौथे आश्रम को धारण करता है, वह नरक में जाता है ॥ ३५ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः॥ इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

विधि के अनुसार वेदोंको पढ़कर और पर्वोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मसे पुत्रोंको उत्पन्न करके और सामर्थ्य के अनुसार ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकोभी करके मोक्षके साधन चौथे आश्रममें मनको लगावै ॥३६॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ॥ अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ ३७ ॥

वेदोंको विनापढे, पुत्रों को बिना उत्पन्न करे और यज्ञोंसे यजन विना करे द्विज मोक्ष को चाहताहुआ नरक में जाता है ॥ ३७ ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ ३८ ॥

यजुर्वेद के उपाख्यान ग्रंथोंमें कहेहुए, जिस में सर्वस्व दक्षिणा है और प्रजापति जिस का देवता है ऐसे यज्ञको करके अपने में अग्नियोंको स्थापित करके ब्राह्मण, चौथे आश्रम को स्वीकार करै, ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥ तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥

जो सब स्थावर जंगम प्राणियों को अभय देकर संन्यास को धारण करता है, ब्रह्म के प्रतिपादन करनेवाले तथा उपनिषद् में निष्ठा वाले उस पुरुष के तेज से सूर्यआदि के प्रकाश से रहित हिरण्यगर्भ आदि लोक प्रकाशितहोते हैं अर्थात् उसको प्राप्तहोते हैं ॥३९॥

यस्माद‌ण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ॥ तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन

जिस द्विजसे भूतोंको थोडासी भय नहीं होता उसको वर्त्तमान् देह से विमुक्त होनेपर किसीसे भी भय नहीं होता है ॥ ४० ॥

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥

घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कमंडलु आदि से युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामों में अर्थात् किसी के पहुँचाये हुए स्वादिष्ट अन्नआदि में इच्छारहित होकर संन्यास धारण करै ॥ ४१ ॥

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

सब संगरहित एक पुरुष को मोक्षकी प्राप्ति होती है इससे अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरै और असहायवान् हो अर्थात् किसीकी सहायता न लेय, जो एकाकी, विचरता है वह किसी को नहीं छोडता है और न किसी के छोडने का दुःख पाता है न किसी से वह छोडा जाता है, और न कोई इसके छोडनेके दुःख को अनुभव करता है तिससे सर्वत्रममतारहित होकर सुखसे मोक्षको प्राप्तहोता है ॥४२॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ उपेक्षकोऽशंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥

लौकिक अग्नि के तथा घरसे रहित और उपेक्षक कहिये शरीरमें रोग आदि के उत्पन्न होनेपर उसके दूर होनेका उपाय न करै, अशंकुसुक (स्थिरबुद्धि) रहै और मौनी होय भाव जो ब्रह्म है तिसमें मनको एकाग्रता से लगाकर वनमें दिनरात बसता हुआ केवल भिक्षाके लिये ही ग्राम में जाय ॥ ४३ ॥

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्॥

मट्टीका ठीकरा आदि भिक्षाका पात्र, बसने के लिये वृक्षोंकी मूल, मोटा फटा वस्त्र, असहायपना और सबोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रका न होना यह मुक्तिके लक्षण हैं ॥४४॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्॥ कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा॥

जीवन और मरणकी इच्छा न करै, किन्तु जैसे सेवक अपने सेवन कालकी प्रतीक्षा करता है तैसे अपने कर्माधीन कालकी प्रतीक्षा करै॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥

आंखोंसे देखकर भूमिमें पैर रक्खे, वस्त्रसे छानकर जल पिये तथा सत्यसे पवित्र बाणी बोले और मनको निषिद्ध संकल्पोंसे रहित रखकर सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥

दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहलेय, किसी का अपमान न करै, और रोग आदिकोंके स्थान इस चंचल देहको आश्रय करके इसके लिये किसीसे बैर न करै ॥ ४७ ॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

क्रोध करनेवाले के ऊपर क्रोध न करै, दूसरा निंदा करै तो मधुर बाणी बोले, और सप्तद्वारावकीर्णा, अर्थात् चक्षु आदि पांच बुद्धीन्द्रिय और मन तथा बुद्धि इन सातोंसे ग्रहण किये हुए पदार्थोंके विषयमें कुछ न कहै किन्तु ब्रह्मविषयक ही कहै, अनृत कहिये नाश होनेवाले कार्योंके विषयमें बाणीको उच्चारण न करै किन्तु अविनाशी ब्रह्मके विषयमें प्रणव तथा उपनिषद्रूप बाणीका उच्चारण करै ४८

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥

सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ, स्वस्तिक आदि योगके आसनसे बैठा हुआ, दंड कमंडलु आदिमें भी विशेष अपेक्षा रहित और निरामिष कहिये विषयोंकी इच्छासे रहित होय और अपने देहके सहाय से ही मोक्षके सुखका चाहनेवाला होकर संसारमें विचरै४९

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

भूकंप आदि उत्पात और नेत्रोंके फड़कने आदि निमित्त से अश्विनी आदि नक्षत्र तथा सामुद्रिकसे हाथों के रेखाओंकी फल कहनेसे नीतिमार्गके उपदेशसे तथा शास्त्रका अर्थ कहने से कभी भिक्षा पानेकी इच्छा न करै५०

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥

वानप्रस्थ, अन्य खानेवाले ब्राह्मण, पक्षी; तथा कुत्तोंसे युक्त घरमें भिक्षाके लिये नजाय

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ॥ विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

केश, नख, तथा डाढ़ी मूछोंको रखाये हुए भिक्षाका पात्र, दंड, तथा कमंडलुको धारण किये हुए सब प्राणियोंको पीडा न देता हुआ सदा विचरै ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥

सुवर्ण आदि धातुओंको छोड़कर, छेदों से रहित संन्यासीके भिक्षाके पात्र होय और उन पात्रोंकी शुद्धि, यज्ञमें चमसोंके समान जलसे होती है ॥ ५३ ॥

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा ॥ एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

तुंबी, काठ, मृत्तिका, तथा बांस आदिके खडसे बने हुए संन्यासियोंके भिक्षाके पात्र होते हैं यह स्वयंभुव मनुने कहा है ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे॥

भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥

एकसमय आहारके लिये भिक्षा करै, अधिक में रुचि न करै क्योंकि बहुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतिकी प्रधान धातुके बढ़ने से स्त्री आदि विषयोंकी भी इच्छा होती है ॥५५॥

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

रसोईका धुआं दूर होनेपर, और मूसलके कूटनेका शब्द बंद होनेपर, रसोई की अग्नि बुझ जानेपर और सबोंके भोजन करलेनेपर, त्यागकरे हुए सरावोंमें यति सदा भिक्षाकरै ५६

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ ५७ ॥

भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय, प्राणोंके निर्वाह योग्य भोजन करै और दंड कमंडलु आदि मात्राओंमें भी यह बुरा है इसको छोड़ूँ, यह अच्छा है इसको लेऊँ ऐसी इच्छाको छोड़देय॥

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

आदर से भिक्षा मिलने की सदा निंदा करै अर्थात् ग्रहण न करै क्योंकि सत्कारपूर्वक भिक्षा लेने से देनेवाले में स्नेह ममता आदि होकर आसन्नमुक्ति वालाभी यति जन्मरूप बंधनको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥ ५९ ॥

थोड़े आहार के खाने से, एकांत स्थान में रहनेसे, रूप आदि विषयोंसे खींची हुई इंद्रियों को निवृत्त करै अर्थात् विषयोंसे हटावै॥५९॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥ अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

इन्द्रियों के रोकने से, रागद्वेष के दूरहोने से और प्राणियों की हिंसा न करने से मोक्ष के योग्य होता है ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नॄणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ६१ ॥

शास्त्र में कहेहुए को न करने और निंदित कर्मको करने से उत्पन्न हुई मनुष्यों की पशु आदि योनिकी प्राप्तिका, नरकमें गिरने का और यमलोक में की तीव्र पीड़ाओं का चिंतवन करै ॥ ६१ ॥

विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाप्रियैः ॥ जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

प्यारे पुत्र आदि के वियोग को तथा अप्रिय कहिये न चाहेहुए हिंसक आदि के मिलनेको और बुढ़ापे के तिरस्कार को तथा रोग आदि से पीडित होने आदिको कर्मके दोषों से उत्पन्न हुआ जाने ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥ योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥

इस देहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मभेद करनेवाले बड़ेरोगों से घिरेहुए और कफ आदि दोषों से घिरेहुए कंठ से प्राप्त बड़ीभारी व्यथाको तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बड़े भी दुःखयुक्त कुत्ता आदि की नीच करोड़ों योनियों में जानेको अपने कर्मका जानै॥

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरि

णाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैवं सुखसंयोग-
मक्षयम् ॥ ६४ ॥

जीवात्माओं को अधर्म के कारण दुःख होने को और धर्म जिसका कारण है ऐसा अर्थ जो ब्रह्मका साक्षात् होना तिससे उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुख के मिलने को चिंतवन करै । ६४ ॥

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥ देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥

योग से अर्थात् विषयों से चित्तकी वृत्तिको रोकनेसे स्थूलशरीर आदि सबके अंतर्यामी भावसे, परमात्मा की सूक्ष्मता कहिये अवयवरहित होनेको, उसके त्याग से ऊँचनीच देव पशु आदि शरीरोंमें जीवों के शुभ अशुभ फल भोगने के लिये उत्पन्न होनेको चिंतवनकरै६५

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

जिस किसी आश्रम में स्थित हो उस आश्रम के विरुद्ध आचार से दूषित होनेपर भी और आश्रम के चिह्नों से रहित भी सब भूतो में ब्रह्मबुद्धि से समदृष्टि होता हुआ धर्म को करै । दंड आदि चिह्नोंका धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु शास्त्र में कहेहुएका करना है ॥ ६६ ॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥

यद्यपि निर्मली के वृक्षका फल अलका निर्मल करनेवाला है तथापि उसके नाम लेने मात्र से जल निर्मल नहीं होता है किंतु फल के डालनेसेही होता है ऐसे ही केवल चिह्न धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु कहे हुए का करना है ॥ ६७ ॥

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ॥ शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

शरीर को दुःख होनेपर भी छोटी चीटी आदि की रक्षा के लिये रातमें अथवा दिन में सदा भूमिको देखकर विचरै ॥ ६८ ॥

अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ॥ तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ ६९ ॥

यदि रातदिन में अज्ञान से जिन प्राणियों को मारता है उनके मारने से उत्पन्न पापको दूर होने के लिये स्नान करके छः प्राणायामों को करै ॥ ६९ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ॥ व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७० ॥

सात व्याहृति और प्रणवसे युक्त पूरक कुम्भक रेचक विधिसे कियेहुये तीन प्राणायाम ब्राह्मण का श्रेष्ठतप है ऐसा जानना चाहिये ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ॥ तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥

जैसे घडिया में रखकर तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओं के मल जल जाते हैं तैसे ही प्राणायाम के करने से इन्द्रियों के सब दोष भस्म होजाते हैं ॥ ७१ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७२ ॥

प्राणायामोंसे राग आदि दोषोंको जलावै और परब्रह्म आदि में मनकी धारणासे पापका नाश

करै, प्रत्याहार कहिये विषयों से इन्द्रियों के खींचने से विषयोंके संयोगको निवारण करै और ब्रह्मके ध्यान से, जो ईश्वरविषयक नहीं हैं ऐसे क्रोध, लोभ, असूया आदि गुणों को दूर करै ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः॥

शास्त्रके अनुसार जिसका अंतःकरण संस्कारयुक्त नहीं है ऐसे पुरुषोंकरके दुःखसे जानने योग्य ऐसी इस जीवकी ऊँची नीची देव पशु आदि योनियों में जन्मकी प्राप्ति को ध्यान योगसे कारणसहित भलीभांति जानै फिर ब्रह्मज्ञान में निष्ठ होय ॥ ७३ ॥

सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

तत्त्व से ब्रह्मका साक्षात् करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नहीं बंधता है और कर्म फिर उसके जन्मके लिये नहीं होते हैं, कारण यह है कि पहले इकट्ठे कियेहुए पाप पुण्यका ब्रह्मज्ञान से नाश होजाता है और दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात्कार से रहित पुरुष संसार कहिये जन्ममरण के प्रबंध को प्राप्त होता है ॥७४॥

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ॥ तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥

निषिद्ध हिंसा के बचानेसे, विषयों के संगसे इंद्रियों को रोकने से, वेद में कहेहुए नित्य कर्मोंके करने से, और उपवास चांद्रायण आदि तप के करने से इस लोक में तत्पद अर्थात् ब्रह्म में अत्यंत लयको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

यह शरीर हड्डी ही जिसमें थूनी के समान हैं, स्नायुरूपी रस्सियों से बंधा हुआ, मांस तथा रुधिरसे लिपाहुआ है और चर्मसे मढा हुआ, मूत्र तथा विष्ठासे भराहुआ है अतः दुर्गंधयुक्त है ॥ ७६ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥

बुढ़ापे तथा शोकसे युक्त, नानाप्रकार के रोगों के स्थान, आतुर कहिये क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण आदि में घबड़ानेवाले तथा रजोगुण से युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भूतोंसे बनेहुए इस आवास कहिये जीवके घररूप देहको छोडदेय जिससे कि फिर देह धारण न करना पड़े वैसा करै ॥ ७७ ॥

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ॥ तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥ ७८ ॥

जो कर्माधीन देह के पातको देखता है वह जैसे नदी के किनारे को वृक्ष छोडदेता है, अर्थात् अपने गिरने को नहीं जानता हुआ नदीके वेगसे गिराया जाता है तैसे देह को छोडता हुआ ज्ञान तथा कर्म की अधिकता से भीष्म आदिकों के समान स्वाधीनमृत्यु होय तो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छा से वृक्षको छोडदेता है तैसे इस देहको छोड़ताहुआ ग्राहसमान संसारके कष्ट से छूटजाता है ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ७९ ॥

ब्रह्म के जानने रूप अपने प्रिय के हित करने वालों में सुकृतको और अप्रिय कहिये अनहित करनेवालों में दुष्कृत जो पाप है तिसको छोड़कर ध्यानयोग से नित्य ब्रह्ममें लीन होता है ॥ ७९ ॥

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥

जब परमार्थ से विषयों में दोषों की भावना करके सब विषयों में अभिलाषरहित होता है तब इस लोक में संतोष से उत्पन्न सुख पाता है और परलोक में अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान् शनैःशनैः ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥

पुत्र स्त्री धन आदि में ममतारूप सब संगों को छोड़कर द्वन्द्व जो मान अपमान आदि हैं उनसे छूटकर इस कहे हुए ज्ञानकर्म के करने से ब्रह्म में आत्यंतिक लयको प्राप्त होता है अर्थात् तद्रूप होजाता है ॥ ८१ ॥

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ॥ न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ ८२ ॥

जो यह पुत्र पौत्र आदि की ममता को त्यागकर और मान अपमान आदि की हानि कही सो सब ध्यानिक है अर्थात् आत्माका परमात्मारूप से ध्यान करने से होता है जब आत्माको परमात्मा यह जानता है तब सब सत्वों से विशेष नहीं होता है अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होता है और जो जीवका परमात्मापन कहा है उसको जो नहीं जानता है वह ममता का त्याग तथा मान अपमान आदि की हानिको और मोक्षरूप ध्यान के फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ॥ आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥

यज्ञ के विषय में जो कर्मकाण्डीय वेद, तथा यज्ञ के देवता प्रतिपादक और जीव के विषय में जो वेदांत में सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म इत्यादिक ब्रह्म के प्रतिपादन करनेवाला वेद है उस सबका पाठ करै ॥ ८३ ॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

यह वेदरूप परब्रह्म वेदका अर्थ न जाननेवालों की भी परमगति है क्योंकि इसका पाठ मात्रभी पापक्षय करनेवाला है फिर जो स्वर्ग तथा मोक्षकी इच्छा करनेवाले उसके अर्थ के ज्ञाता हैं उनकी परमगति होने में क्या संदेह है ? ॥ ८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥ स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

इस क्रमसे जो द्विज संन्यासको धारण करता है वह इसलोक में पापको नष्ट कर फिर परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ॥ वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६ ॥

नियतात्मा कहिये कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस है संज्ञा जिनकी ऐसे चारों

१ यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त्येवमेतद्विदि पापकर्म न श्लिष्यति।

२ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरञ्च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति ॥

संन्यासियों का साधारण धर्म तुम से कहा अब यतिविशेष जो कुटीचर नाम हैं जो वेद में कहेहुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागी हैं उन के कर्मयोग को सुनो ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा । एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थ और संन्यासी यह पृथक् २ चारों आश्रम गृहस्थ से उत्पन्न हैं ॥

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

शास्त्रके अनुसार क्रमसे सेवन कियेहुए यह चारों आश्रम कहेहुए के अनुसार करनेवाले ब्राह्मण को मोक्षरूप गति को पहुँचादेतेहैं ८८॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः॥ गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥ ८६ ॥

इन ब्रह्मचारी आदि सबो में ही गृहस्थ वेद और धर्मशास्त्र के अनुसार अग्निहोत्र आदि के करने से श्रेष्ठ कहाता है क्योंकि यह ब्रह्मचारी, बानप्रस्थ और यति इन तीनों का भिक्षा देकर पालन करता है ८९ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ९० ॥

जैसे गंगा सोनभद्र आदि सब नदी नद समुद्रमें जाकर मिलजाते हैं तैसेही सब आश्रमी गृहस्थके समीप अवस्थिति को प्राप्त होते हैं९०

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः॥ दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥

इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के द्विज दशप्रकार के धर्मका यत्न से सदा सेवन करें ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

धृति (सन्तोष), क्षमा (अपकार करने वाले से बदला न लेना), दम (विषय के निकट होनेपर भी मनका चलायमान नहीं होना), अस्तेय (अन्याय से पराये धनका न लेना), शौच (मिट्टी तथा जलसे देहको शुद्ध करना), इंद्रियनिग्रह (विषयों से चक्षु आदि को रोकना), धी (शास्त्र आदिके तत्त्व का ज्ञान),विद्या (आत्मज्ञान), सत्य (यथार्थ कहना), और अक्रोध (क्रोधका कारण होने पर भी क्रोध न करना), यह दशप्रकारका धर्मका स्वरूप है ॥ ९२ ॥

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ॥ अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥

जो ब्राह्मण इन दशप्रकार के धर्म के स्वरूपों को पढ़ते हैं और पढ़कर इनके अनुसार अनुष्ठान करते हैं वह मोक्षरूप परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः॥ वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥

दशप्रकार के धर्मको सावधानता से करता हुआ गृहस्थ विधिपूर्वक उपनिषद् आदि के अर्थरूप वेदान्त को गुरु के मुख से सुनकर देवआदि के तीन ऋणों को चुकाकर संन्यास को धारण करै ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ॥ नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥

गृहस्थ के करने योग्य अग्निहोत्र आदि सब कर्मों को छोड़कर, विनाजानेहुए जीवों के बध आदि से उत्पन्नहुए पापों को प्राणायाम आदि से नाश करताहुआ, जितेन्द्रिय हो, वेद का अभ्यास करके पुत्रके दियेहुए भोजन वस्त्र से जीविका की चिन्ता से रहित हो सुख से वसे ॥ ९५ ॥

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः। संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

इसप्रकार से अग्निहोत्र आदि गृहस्थ के कर्मों को त्यागकर आत्मा का साक्षात्कार स्वरूप अपने कार्य में तत्पर और स्वर्ग आदि की भी इच्छारहित हो संन्यास से पापों का नाश करके ब्रह्म के साक्षात्कार से मोक्षरूप परम गति को प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः। पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥ ९७ ॥

इति मनुस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे ऋषियो ! तुम से यह ब्राह्मणों का चार प्रकार का पवित्र और परलोक में अक्षय फल देनेवाला धर्म कहा अब राजाओं के धर्मों को सुनो ॥ ९७ ॥

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहितः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

❀अथ सप्तमोऽध्यायः❀

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः। संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥

जैसे आचारवाला राजा होय उसके करने योग्य धर्मों को, और जिसप्रकार से राजा को प्रभुने उत्पन्न किया सो तथा जैसे दृष्ट अदृष्ट फल की संपत्ति है उस सबको कहूँगा ॥ १ ॥

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि। सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्ति के लिये शास्त्र के अनुसार उपनयन आदि संस्कार को प्राप्त हुए क्षत्रिय को शास्त्र के अनुसार अपने सब देश की रक्षा नियम से करनी चाहिये ॥ २ ॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ ४ ॥

क्योंकि राजारहित और सब ओर से भय के कारण चलायमान इस सब चर अचर जगत् की रक्षा के लिये इन्द्र, पवन, यम, सूर्य, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन सबों के सारभूत अंशों को लेकर प्रभुने राजा को बनायाहै॥३।४॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः। तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥ ५ ॥

क्योंकि–इन इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओं के अंशसे राजा उत्पन्न कियागया है तिससे राजा तेजसे सब प्राणियों का तिरस्कार करता है॥५॥

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च। न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

यह राजा अपने तेजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आँखों और मनको तपाता है, पृथिवी में इस राजाको कोई सामने होकर नहीं देख सकता है ॥ ६ ॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्। स कुबेरः स वरुणः स

महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥

ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओं के अंशसे उत्पन्न होनेके कारण और उनका कर्म करने से वह राजा प्रभाव करके अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, धर्मराज, कुबेर, वरुण, और महेन्द्र का रूप है ॥ ७ ॥

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महती देवता ह्येषा नृपरूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

राजा बालक होय तो भी मनुष्य मानकर अपमान करने के योग्य नहीं है क्योंकि-यह कोई बड़ी देवता मनुष्य के रूप से स्थित है ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ॥ कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयम् ॥

जो असावधानी से अग्निके अतिसमीप जाता है अग्नि उस एकको ही जलाता है और क्रोधित हुआ राजारूप अग्नि, अपराधी को पुत्र, स्त्री भाई आदि सब कुल और गौ घोड़ा आदि पशु, और सुवर्ण आदि धनसंचय-सहित नष्ट करता है ॥ ९ ॥

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

वह राजा कार्य, देश, काल तथा अपनी शक्तिको देखकर धर्मकी सिद्धिके लिये तत्त्व से वारंवार बहुतसे रूपोंको धारता है ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥ ११ ॥

जिसके प्रसन्न होनेपर बहुतसी लक्ष्मी मिलती है, जिसके पराक्रम से शत्रुका नाश होकर विजय प्राप्त होता है और जिसके क्रोधमें मृत्यु बसता है क्योंकि वह राजा सूर्य, अग्नि और चंद्रमा आदि सब देवताओं के तेजको धारण करता है ॥ ११ ॥

तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्य-संशयम् ॥ तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

जो मूर्खताके कारण उस राजासे द्वेष करता है वह निःसन्देह राजाके क्रोधसे नाशको प्राप्त होता है क्योंकि राजा उसके नाशमें शीघ्रही मन लगाता है ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नरा-धिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥

तिससे राजा, इष्टों के अर्थात् शिष्टोंके लिये शास्त्रोक्त वा शास्त्रके अविरुद्ध जिस नियम को स्थापन करै, और अनिष्ट कहिये दुष्टोंके लिये जैसा नियम स्थापित करै उसका उल्लं-घन न करै ॥ १३ ॥

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममा-त्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्व-मीश्वरः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी ने पहिले उस राजाके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करने-वाले धर्मस्वरूप पुत्र दंडको केवल ब्रह्मतेज से बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मा-न्न चलन्ति च ॥ १५ ॥

उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणी भोग करनेको समर्थ होते हैं और अपने धर्म से चलायमान नहीं होते हैं, यदि दंड न होता तो बलवान् दुर्बलको भोग नहीं करने देता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटने से भी भोग

की सिद्धि न होती तैसे ही सज्जनोंको भी नित्य नैमित्तिक अपने धर्मका अवश्य करना भी यमयातनारूप दण्डके भयसे ही हुआ है॥

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः॥ यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु॥ १६॥

दंड देश, काल,शक्ति और विद्याको विचार कर जैसे अपराधमें जो दंड देना योग्य होय शास्त्रके अनुसार यथार्थरूप से उस सबको समझ कर अपराधियोंको दंड देय ॥१६॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः॥ चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ १७॥

वह दंड राजा पुरुष है, वही नेता (सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला) वही शासिता (आज्ञा देनेवाला) और उसीको, चारों आश्रमोंका जो धर्म है तिसके प्रतिपादन करने में मुनियोंने प्रतिभू (ज़मानत करनेवाला) कहा है॥ १७॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति॥ दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ १८॥

दंड सब प्रजाओंका शासन करता है, दंड ही सब ओरसे रक्षा करता है और दण्ड ही सबोंके सोनेपर जागता है अर्थात् उसके भय से चोर आदि नहीं आते हैं तथा दंडही को पण्डित धर्म जानते हैं॥ १८॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः॥ असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ १९॥

शास्त्रकी रीतिको भलीप्रकार विचारकर अपराधके अनुसार देह धन आदिमें किया हुआ दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करता है और बिना विचारे लोभ आदिसे किया हुआ दण्ड सब देश, धन, पुत्र आदिकों का नाश करदेता है॥ १९॥

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः॥ शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः॥ २०॥

यदि राजा आलस्यरहित होकर अपराधियोंको दंड न देय तो बलवान् दुर्बलोंको ऐसे खा जायँ जैसे शूल में छेदकर मछलियोंको खाते हैं॥ २०॥

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा॥ स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तताधरोत्तरम्॥ २१॥

जो राजा दंड न देता तौ यज्ञों में सब प्रकार से अयोग्य काक पुरोडाश को खाजाता और कुत्ता खीर आदि हवि को चाटजाता, तथा किसी का कहीं अधिकार न रहता अर्थात् बलवान्की ही जीत होती और ब्राह्मणों के ऊपर शूद्र प्रधान होबैठते॥ २१॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः॥ दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते॥ २२॥

दंड से नियम में स्थापित कराहुआ सबलोक सन्मार्ग में स्थित रहता है, स्वभाव से शुद्ध मनुष्य दुर्लभ है यह सब जगत् दंडके भयसे ही आवश्यक भोजन आदि के भोगमें समर्थ होता है॥ २२॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः॥ तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः॥ २३॥

इंद्र आदि देवता,दानव, गंधर्व, राक्षस, पक्षी और सर्पभी जगदीश्वर के परमार्थरूप दण्डके भय से पीडित होकर ही वरसने आदि के उपकार करने में प्रवृत्त होते हैं॥ २३॥

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसे-

तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

दंड के न होने से अथवा अनुचित दण्ड करने से ब्राह्मण आदि चारों वर्ण परस्पर में स्त्रीगमन करने से वर्णसंकर होजायँ और शास्त्रों की सब मर्यादा नष्ट होजाय तथा चोरी साहस आदि से दूसरे का अपकार करने से सब लोक में उपद्रव भी होने लगे ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ २५ ।

जिस देश में श्यामवर्ण, लाल नेत्रवाला, पाप नाशक जिसका अधिष्ठात्री देवता है ऐसा दंड विचरता है तहां प्रजा व्याकुल नहीं होती है यदि दंड देनेवाला न्यायानुसार दण्डदेय तो!

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

सत्यबोलनेवाले, देखभालकर कार्य करने वाले, तत्त्व अतत्त्व के बिचार में उचित बुद्धि वाले, और धर्म अर्थ तथा कामके जाननेवाले राजाको तिस दंडका प्रवर्त्तक (चलानेवाला) कहते हैं।

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ॥ कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥

उस दंडको भलीभांति प्रवृत्त करता हुआ राजा, धर्म, अर्थ और कामसे वृद्धिको प्राप्त होता है, और विषय की इच्छा रखनेवाला, विषम (क्रोधी) तथा क्षुद्र (छिद्रका ढूंढनेवाला) राजा अपने करेहुए दंडसेही (मंत्री, आदि के कोपसे अथवा अधर्म से) नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ॥ धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ २८ ॥

दण्ड परमतेजःस्वरूप है और राजनीति से जिसके आत्मा का संस्कार नहीं हुआ है ऐसे पुरुष से कठिनता करके धारण कियाजाता है इस कारण दण्ड राजधर्म रहित राजाको पुत्र बंधु समेत नष्ट करदेता है ॥ २८ ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥ अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥

तदनन्तर दुर्ग को राष्ट्र (देश) को, स्थावर जंगम लोक को और हवि न देने के कारण आकाश में स्थित ऋषियों तथा देवताओं को पीडित करता है ॥ २९ ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ॥ न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

मंत्री, सेनापति और पुरोहित आदि की सहायता से हीन, मूर्ख, लोभी, जिसकी बुद्धि का शास्त्रसे संस्कार नहीं हुआ है और जो बिषयोंमें आसक्त है वह राजा शास्त्रानुसार दंड नहीं देसक्ता है ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥

द्रव्य आदिकी शुद्धता से युक्त, सत्यप्रतिज्ञ, शास्त्रके अनुसार व्यवहार को करनेवाला और मंत्री आदि सहायकों से युक्त तथा तत्त्वको जाननेवाला राजा दंड करसक्ता है ॥ ३१ ॥

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥

अपने देशमें शास्त्रकी रीतिसे व्यवहार करनेवाला, शत्रुओं में प्रायः दण्डदेनेवाला, स्वाभाविक स्नेही मित्रों में कुटिलता रहित और ब्राह्मणों में क्षमायुक्त होय ॥ ३२॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ॥ विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥

इसप्रकार बर्त्ताव करते हुए शिलोञ्छवृत्तिसे भी जीविका करनेवाले (जिसके द्रव्यका भंडार खाली होगया है) राजा का यश जल में तेलकी बिंदु की समान लोक में फैलताहै॥

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः ॥ संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिंदुरिवाम्भसि

इस कहेहुए आचारसे विपरीत व्यवहार करनेवाले,अजितेंद्रिय राजा की कीर्त्ति जलमें घीकी बिंदुकी समान लोकमें संकुचित हो जाती है ॥ ३४ ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः॥ वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥

क्रम से अपने अपने धर्मोंमें स्थित, ब्राह्मण आदि सब वर्णों तथा ब्रह्मचर्य आदि सब आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न किया है ॥ ३५ ॥

तेन यद्यत्सभृत्येन कर्त्तव्यं रक्षता प्रजाः॥तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

जिससे प्रजाओं की रक्षा करतेहुए मंत्री समेत राजाको जो जो कर्त्तव्य है वह सब मैं तुम से क्रमशः यथावत् कहूँगा ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ॥ त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥

राजा प्रतिदिन प्रातःकाल के समय उठकर ऋक्, यजु, साम नामक तीनों विद्याओं के जाननेवाले और नीतिशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों का सेवन करै और उनकी आज्ञामें स्थित रहै।

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् ॥ वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

अवस्था तथा तपस्या में वृद्ध, वेद के जाननेवाले और बाहर भीतर शुद्ध ऐसे ब्राह्मणों का सदा सेवन करै, क्योंकि वृद्धों का सेवन करने वाला हिंसा करनेवाले राक्षसों से भी सदा पूजा जाता है ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः ॥ विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥

स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदि के ज्ञान से विनीत भी, अधिक शिक्षाके लिये उन से विनय का अभ्यास करै क्योंकि शिक्षित राजा कभी नष्ट नहीं होता है ॥ ३९ ॥

बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः॥ वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥ ४० ॥

हाथी घोड़े धनके भंडार आदि सामग्री सहित बहुत से राजे विनय रहित होने के कारण नष्ट होगये और सामग्रीहीन वन के रहनेवाले भी विनय से राज्यको प्राप्त हुए४०

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ॥ सुदासो यावनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ४१ ॥

वेण तथा नहुष, राजा यवनका पुत्र सुदास, सुमुख और निमि यह अविनय से नाश को प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव

च ॥ कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥

पृथु तथा मनुने विनय से राज्य पाया और कुबेर ने विनय से धनका ऐश्वर्य पाया तथा गाधि के पुत्र विश्वामित्रने विनय से ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥ जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ ४४ ॥

तीनों वेदरूपविद्या के जाननेवाले ब्राह्मणों से तीनों वेदोंको अर्थ सहित अभ्यास करै और सदासे चली आनेवाली नीतिविद्या (अर्थशास्त्र) को उसके जाननेवालों से सीखै तथा युक्ति और प्रत्युत्तर में सहायता देनेवाली आन्वीक्षिकी विद्याको तथा उदय और दुःख में हर्ष विषादको शांत करनेवाली ब्रह्मविद्या को भी सीखै और वाणिज्य पशुपालन आदि वार्त्ताको तथा उसके आरंभक धनके उपायोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदिकों से सीखै । चक्षु आदि इंद्रियों को विषयों में आसक्त होने से रोकने में रातदिन यत्न करै, क्योंकि जितेन्द्रिय राजाही प्रजाओंको बशमें रखनेको समर्थ होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ॥ व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

दशप्रकार का कामज और आठ प्रकार का क्रोधज यह अठारह प्रकार का व्यसन है, जो पहिले सुखदायी और पीछे अतिकष्टकारी है, ऐसे दुरन्त व्यसन को राजा अवश्य त्यागदेय, क्योंकि–व्यसनासक्त पुरुष को व्यसन से हटाना कठिन है ॥ ४५ ॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥ वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

राजा यदि काम से उत्पन्नहुए विषयों में आसक्त होय तो धर्म अर्थ इन दोनों से बञ्चित रहता है और यदि क्रोधोत्पन्न व्यसनों में पड़जाय तो वह नष्ट होजाता है ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥

मृगया (बाण आदि से शिकार खेलकर पशुओं का नाश), फाँसों का खेल, दिन में सोना, पराये दोष कहना, स्त्रीसम्भोग में अति आसक्ति, मद्य आदि से मत्त रहना, नाचना, गाना, बजाना, वृथा घूमने जाना, सुख की इच्छा के वश में रहना, यह दश प्रकार का कामज व्यसन है ॥ ४७ ॥

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

पिशुनता (विनाजाने दूसरे के दोष कहना), साहस (निरपराधी सज्जनों को बन्धन आदि से बश में करना), द्रोह (धोखा देकर मारडालना), ईर्षा (किसी में भले गुण हैं ऐसा जानकर उनको न सहना), असूया (दूसरे के गुणों में दोष लगाना), अर्थदूषण (पराया धन छीनलेना वा अवश्य देनेयोग्य धन न देना), (वाक्पारुष्य (दूसरे के ऊपर कठोर वचनों से चिल्लाना वा हाथ खेंचने को झपटना) और दण्डपारुष्य (दूसरे को निरर्थक

मारना) यह आठ प्रकार का व्यसन क्रोध से उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥

पुरातन पण्डितों ने जिस लोभ को इन कामज और क्रोधज अठारह व्यसनों का उत्पादक निश्चय करा है उस लोभ को उद्योग करके जीतना चाहिये, लोभ को जीतते ही अठारह पापों का पराजय होगा, क्योंकि–धन आदि के लोभ में पडकरही अनेकों इन पापों को करते हैं ॥ ४९ ॥

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याचतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

मद्य पीना, पाशों से खेलना, स्त्रियों में आसक्ति, शिकार में आसक्ति, इन चार को कामज व्यसनों में परमदूषित और दुःख का हेतु जाने ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥

क्रोधज व्यसनों में निष्ठुरता से प्रहार करना, नीरस बात कहना, किसी का आताहुआ धन न देना इन तीनों को सदा कष्टकारी जाने।५१।

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

मद्य पीना, पाशों से खेलना, स्त्रियों में आसक्ति, शिकार, दण्डपातन, वा कलह, परधनापहरण यह सात काम और क्रोध से उत्पन्न हुए व्यसन, प्रायः सब राजमण्डल में आ पहुँचते हैं, इन में पहिला२ व्यसन अति क्लेशकारक है, इस बात को राजा जानता रहै; द्यूत की अपेक्षा मद्यपान अतिकष्टदायक है, क्योंकि–मद्यपान से मत्तहुए पुरुष को चेतनता का नाश होने के अनन्तर अपने धनादि से विरोधरूप दोष होता है, पाशक्रीड़ा में जीत होजाय तो धन मिलता है, स्त्रीव्यसन की अपेक्षा द्यूत का व्यसन अतिकष्टदायक है, क्योंकि द्यूत में शत्रुता और पराजय होने पर धन का नाश है तथा खेलने की आसक्ति के कारण मलमूत्र का वेग रोकने से रोग उत्पन्न होजाते हैं, और स्त्रीव्यसन में सन्तान उत्पन्न होना रूप गुण है; मृगया की अपेक्षा स्त्रीव्यसन दूषित है, क्योंकि स्त्री में आसक्त पुरुष का किसी कार्य को न देखना रूप दोष तथा सन्ध्यावन्दनादि का समय बीतजाने से धर्मलोप होता है और मृगया में घूमने के परिश्रम से नीरोगता आदि गुण हैं ; यह चारों कामज व्यसन हैं; क्रोधज तीनों व्यसनों में वाक्पारुष्य की अपेक्षा दण्डपारुष्य कष्टदायक है क्योंकि–दण्डपारुष्य में जिस का उपाय नहीं ऐसा अङ्ग टूट कटजाना आदि दोष हैं । वाक्पारुष्य में तो दान, मान, सत्कार आदि से दूसरे के कोप की शान्ति करी जासकती है, धनापहरण की अपेक्षा वाक्पारुष्य कष्टदायक है, क्योंकि–वाक्पारुष्य मर्मभेदी है उसका शान्त करना कठिन है परन्तु किसी का धन हरलेने पर बहुत सा धन देने से उसकी शान्ति होसक्ती है ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते॥ व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥

कामज, क्रोधज व्यसन और मृत्यु इनमें

व्यसन अधिक दुःखदायी है, क्योंकि व्यसनी पुरुष मरकर परलोक में भी दुःख पाता है, और जो व्यसनहीन महात्मा हैं वह स्वर्गलोक में विराजमान होते हैं ॥ ५३ ॥

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ॥ सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

राजा सात वा आठ मन्त्री नियत करै, जो कि वंशपरम्परा से मन्त्री होनेवाले, राजकार्य में चतुर, नीतिशास्त्र के जाननेवाले, शूर, शस्त्रविद्याको भलीप्रकार सीखेहुए, श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए और देवताकी साक्षी आदि शपथ से परीक्षा करेहुए हों ॥ ५४ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसहायेन किंतु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥

जो कार्य अनायास में होसक्ता हो वहभी कभी एक पुरुष से होना कठिन होजाता है, फिर विशेषतः महाफलदायक राज्यपालन असहाय पुरुष किसप्रकार करसक्ता है ॥ ५५

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

सन्धि, विग्रह, यान आदि सबविषय की उन मन्त्रियों के साथ प्रकटरूप से सदा सम्मति करै, खजाना, नगर, देश, हाथी, घोड़े, रथ, सारथी, प्यादे आदि की रीतिपूर्वक किस प्रकार सुरक्षा और प्रतिपालना होगी इसकी उनके साथ उत्तमता से सम्मति करै, सोने आदिकी खानवाली भूमि के कर आदि का विचार के साथ निर्णय करै और प्राप्तहुए धन आदिका किसप्रकार सत्पात्रों में व्ययकरना होगा इसका भी विचार करै ॥ ५६ ॥

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् ॥ समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ५७ ॥

एकान्त स्थान में मन्त्रियों में से प्रत्येककी सम्मति अलग २ वा एकसाथ जानकर जो अपना हितकारी प्रतीत होय वही कार्य करै ॥

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

मन्त्रियों में से परमधार्मिक, विद्वान् ब्राह्मण मन्त्री के साथ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, आश्रय रूप षड्गुण युक्त विशेष सम्मति करै ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥

राजा जिन कार्यों को करना चाहै विश्वास के साथ उस ब्राह्मण को वह सब अर्पण कर देय अर्थात् उसके साथ निश्चय करलेय तब कार्य का आरम्भ करै ॥ ५९ ॥

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ॥ सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥

इस के सिवाय धन आदि के विषय में शुद्ध स्वभाव, सुबुद्धिमान, कार्यकुशल, न्यायानुसार, धनसञ्चय करने में समर्थ, धर्मादि परीक्षा में परीक्षित और भी मंत्री नियत करै ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥

जितने पुरुषों से राजा का कार्य भली प्रकार चलसकै उतने, आलस्य रहित, साहसी और समझदार पुरुषों को नियत करै॥६१॥

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

उन में से पराक्रमी, पूर्णचतुर, कुलीन, धन में निःस्पृह चारपुरुषों को धन की आमदनीके कामपर नियुक्त करे, सुवर्ण आदि की खानोंके कामपर, गुड़ अन्न कपास आदिके भण्डारों पर तथा भोजन-शयन और स्त्रियों के स्थानों पर पाप से डरनेवालों को नियत करे॥ ६२॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्॥ इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥

सकल शास्त्रों में प्रवीण, नेत्रकी भङ्गी (इशारा) आदि समझनेवाले, मुखकी प्रसन्नता मलिनता आदि से राजा की प्रीति और अप्रीतिको समझनेवाले, अङ्गुलि हिलाने आदि सेही मन का भाव समझनेवाले, शुद्धस्वभाव, कार्य में बिलक्षण चतुर और कुलीन पुरुषको दूत बनावे ॥ ६३ ॥

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ॥ वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥ ६४ ॥

राजा का दूत सब से अनुराग रखनेवाला,[1] धन और स्त्री के विषय में शुद्ध (अलोभी),[2] चतुर (कार्य के समय को न बितानेवाला), स्मरण रखनेवाला, देशकाल का जाननेवाला, रूपुष्मान् (रुआबदार), निर्भय और वावदूक होय तो प्रशंसा के योग्य होता है ॥ ६४ ॥

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ॥ नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६५ ॥

हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे आदि दण्ड अमात्य (सेनापति) के अधीन होता है अतः उस दण्ड को शिक्षादेने का कार्य भी उसके ही अधीन रहे, खजाना और देश राजा के अधीन होता है अतः उसको पराधीन न करे, सन्धि और विग्रह दूत के अधीन होता है अतएव दूत ऐसे गुणों से युक्त होय ॥ ६५ ॥

दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ॥ दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ ६६ ॥

क्योंकि दूत ही विरोधी राजाओं की सन्धि और मिलेहुए राजाओं में भेद करासक्ता है, दूत वह कर्म करता है कि जिससे मिले हुओं में भेद होजाता है ॥ ६६ ॥

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ॥ आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥

दूत, शत्रुराजाओं के अनुचरों की इङ्गित और चेष्टाओं से, शत्रुराजा के कर्त्तव्य में उस का कैसा अभिप्राय, इङ्गित और चेष्टा है इस को जाने, क्षोभको प्राप्तहुए, लोभी और अपमान करे हुए भृत्यों से शत्रुराजा का अभिप्राय जाने ॥ ६७ ॥

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

ऐसे दूत से शत्रु राजा के कर्त्तव्य के विषय में ऐसा अभिप्राय यथार्थरूप से जानकर ऐसा सावधान होजाय जिससे अपनेको कोई पीड़ा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम्॥ रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥

---

१ दूत के सब से अनुराग रखने पर शत्रुराजा के यहां भी उसका आनाजाना होसक्ता है।

२ जो दूत धन और स्त्री का लोभी नहीं होता है उसको धन और स्त्री का लोभ देकर शत्रु वश में नहीं करसक्त हैं।

राजा ऐसे स्थान में बसे जहाँ जल और तृण बहुत अधिक न हों, वायु उत्तम होय तथा धूपका ताप खूब होय, बहुतसे अन्नादि की उत्पत्ति होय, और जहाँ सञ्चित अन्न सम्पदा होय, अनेकों धार्मिकोंका वास होय, और जहाँ सकल प्रजा रोग शोकादि से रहित रहै, जो स्थान फलों से पूर्ण हो, वृक्ष लता आदि से परम रमणीय हो, जहाँ सामन्त मण्डल राजा का परम प्रेमी होय और खेती व्यापार आदिका भी सुभीता होय ॥ ६९ ॥

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा॥ नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥

धन्वदुर्ग (जिस के चारों ओर पाँच योजन तक जल न मिले), महीदुर्ग (जो पत्थर अथवा ईंटोंका विस्तार से दुगना अर्थात् चौबीस हाथ से भी अधिक ऊँचा और युद्ध के निमित्त फिरने को बारह हाथ चौडा और किवाड झरोखे आदि से युक्त परकोटे से घिराहुआ), जलदुर्ग (चारोंओर अगाध जलकी खाई से घिराहुआ), वार्क्षदुर्ग (बाहर चारों ओरसे एक योजनतक बाँसी आदि कटीले वृक्षों से घिरा हुआ), नृदुर्ग (चारों ओर से हाथी घोड़े रथ आदि बहुतसी सेनासे घिराहुआ) और गिरिदुर्ग (पर्वतके ऊपर मनुष्योंको दुर्गम केवल एक गुप्त दुर्गम मार्गयुक्त नीचे नदी झरने आदि के जल से युक्त, उर्वराभूमि में होनेवाले बहुत से धान्य आदि से सम्पन्न और श्रेष्ठ वृक्षों से शोभित) ऐसे किसी दुर्ग का आश्रय करके राजा बसे ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥ एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥

राजा सबप्रकार यत्न के साथ गिरिदुर्ग का आश्रय करे, और दुर्गोंकी अपेक्षा गिरिदुर्ग में अनेकों गुण हैं क्योंकि थोड़े ही से उद्योग से पर्वत के ऊपर से एक पत्थरकी शिला फेंकने से विपक्षियों की बहुतसी सेना का नाश होजाता है ॥ ७१ ॥

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्चराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

इन छः प्रकारके दुर्गोंमें धन्वदुर्ग मृगों करके आश्रित, महीदुर्ग चूहोंका आश्रय कराहुआ जलदुर्ग नाके आदि का आश्रय कराहुआ, शेष तीनोंमें वृक्षदुर्ग वानर आदि से आश्रित, नृदुर्ग मनुष्योंसे आश्रित और गिरिदुर्ग देवताओं का आश्रय कराहुआ होता है ॥ ७१ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः॥ तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७२ ॥

जैसे इन सब दुर्गों का आश्रय करनेवाले मृगादिको व्याधा आदि नहीं मारसक्ते हैं तैसे ही दुर्ग का आश्रय करनेवाले राजा को, शत्रु राजे किसी प्रकार नहीं मारसक्ते हैं ॥ ७३ ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

दुर्ग (किले) में स्थित एक योधा शत्रुओं के सौ सैनिकों के साथ युद्ध करसक्ता है, और एकसौ योधा दशसहस्र योधाओं के साथ युद्ध करसक्ते हैं अतएव राजा किला अवश्य बनवावे ॥ ७४ ॥

तत्स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥

वह किला अनेकों शस्त्रों से युक्त होय, धन

धान्य, सवारी, ब्राह्मण, कारीगर, फूल, घास और जल से युक्त होय ॥ ७५ ॥

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ७६

उसमें सबप्रकार से सुखदायक, गुप्त, सब ऋतु के फल पुष्पादि से युक्त, चूने से पुता और कूप तालाब आदि तथा उत्तम २ वृक्षों से युक्त अपना घर बनवावै ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्। कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥

ऐसे घरमें रहकर समानवर्णकी, सुलक्षणा, बड़े कुलमें उत्पन्न हुई, मनोहारिणी, सुरूपा और गुणवती स्त्री से विवाह करै ॥ ७७ ॥

पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ ७८ ॥

अथर्ववेद की विधि से पुरोहित करै, यज्ञादि के निमित्त ऋत्विज् का वरण करै, वह राजा के गृह्य और वैतानिक कर्म करैं ॥ ७८ ॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ॥ धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥

राजा, बहुत दक्षिणावाले अनेकों यज्ञों से यजन करै, और ब्राह्मणों को धर्मार्थ स्त्री, घर, शय्या, सुवर्ण, वस्त्र आदि देय ॥ ७९ ॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥ स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥

राजा, राज्य की प्रजाओं से श्रेष्ठ मंत्रियों के द्वारा वार्षिक कर ग्रहण करै और वह कर शास्त्रानुसार लेय, अपने राज्य की प्रजाओं के साथ पिता की समान व्यवहार करे ॥८०॥

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ॥ तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ ८१ ॥

जहां २ हाथी घोड़े सेना हो राजा उसका कार्य देखने को नानाप्रकार के कार्य चतुर पुरुषों को उनके ऊपर अध्यक्ष (अफसर) नियुक्त करै, वह नीचे के कर्मचारियों के सकल कार्यों को देखैं ॥ ८१ ॥

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ॥ नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो ऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

जो यज्ञोपवीत के अनन्तर विद्या के निमित्त गुरुके घर बसकर विद्या पढ गृहस्थाश्रम को धारण करै, उचित धनधान्यादि से राजा उसका सत्कार करै ॥ ८२ ॥

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥ ८३ ॥

और खजाने की समान, ब्राह्मण को दीहुई भूमि आदिरूप खजाने को चोर नहीं लेसक्ते, शत्रु नहीं छीनसक्ते, और वह किसी समय नष्ट भी नहीं होसक्ता, तिससे राजा ब्राह्मणों में अक्षयनिधि स्थापन करै ॥ ८३ ॥

न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥

अग्निमें होम करतेहुए कभी घी नीचे गिर पड़ता है, परन्तु ब्राह्मण के हाथ में जो हविहुत होता है वह कभी नहीं टपकता है, न सूखता है और दाह आदि से नष्ट भी नहीं होता है, यह अग्नि में होम करने से भी अधिक फल देता है ॥ ८४ ॥

समममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥

क्षत्रियादि को दान देने पर जितना शास्त्र में कहा है उतनाही फल होता है, और मैं ब्राह्मण हूँ ऐसा कहकर मांगनेवाले को दियाहुआ द्विगुणफलदायक होता है, जिसने पढ़ने का प्रारम्भ किया हो उस ब्राह्मण को दियाहुआ दान सैकड़ों सहस्रों गुणा फल देता है और वेदके पारंगत ब्राह्मण को दान देने से अनन्तफल होता है ॥ ८५ ॥

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च ॥ अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य वाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

विद्या, तपस्या और शिलोञ्छ आदि वृत्ति के भेद से पात्रकी न्यूनाधिकता और शास्त्र में कहेहुए धर्म के विषय में दृढ़ज्ञान को श्रद्धा कहते हैं उस श्रद्धाकी न्यूनाधिकता के अनुसार परलोक में थोड़ा वा बहुत फल मिलता है, द्रव्य की अल्पता अधिकता के अनुसार नहीं ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः ॥ न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥

अपनी समान बली वा अपने से प्रबल अथवा हीनबल कोई राजा युद्ध में बुलावें तो युद्धही राजाओं का धर्म है, ऐसा स्मरण करके संग्राम से न हटे ॥ ८७ ॥

संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥ ८८ ॥

युद्ध से विमुख न होकर सुन्दरता से प्रजा का पालन और ब्राह्मणों की सेवा करना राजाओं को परम मङ्गलकारी है ॥ ८८ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ॥ युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥

संग्राम से न हटकर परस्पर स्पर्धा के साथ युद्ध में परस्पर को मारने की इच्छा से प्रवृत्त होकर यथाशक्ति युद्ध करके मरने पर स्वर्ग में जाते हैं, युद्धमें राज्य मिलना आदि दृष्टफल है और युद्ध में से न लौटनेवाले को स्वर्गरूप अदृष्टफल मिलता है ॥ ८९ ॥

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् ॥ न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥ ९० ॥

राजा कूट (बाहर से काठ भीतर से तीक्ष्ण लोहे के इत्यादि) शस्त्रों से युद्ध न करै, कली के आकार के फलकवाले बाणों से युद्ध न करै विष के बुझे बाणों से युद्ध न करै और अग्नि में तपाकर दिपते हुए बाणों से युद्ध न करै ॥९०॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ९१ ॥

रथ छोड़कर स्थलमें बैठेहुए को न मारै, नपुंसक को न मारै, हाथ जोड़तेहुए शत्रुको न मारै, केश खुले और युद्ध से हटकर आसनपर बैठेहुए को न मारै, 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर आत्मसमर्पण करनेवाले को न मारै॥९१॥

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्॥ नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥

सोयेहुए वा कवच(बख्तर) से रहित नङ्गे व क्षत्रहीन,केवल युद्ध देखनेको आयेहुए को और दूसरे के साथ युद्ध करतेहुए को न मारै॥९२॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्९३

जिसके हथियार टूटगये हों उसको न मारै, युद्ध में मरे पुत्रादि के शोक से कातरहुए को न मारै, शत्रु के अस्त्र शस्त्रों से जिसकेसब अङ्ग घायल होगये हों और जो डरकर युद्धसे भाग गया हो उसको सज्जनों के धर्म को स्मरण करताहुआ राजा न मारै ॥ ९३ ॥

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ॥ भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

जो संग्राम से लौटकर भयभीत मन हो रण को छोड़के भागताहुआ शत्रु से माराजाता है वह स्वामीका जो कुछ पाप हो उसको पाता है ९४

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥

युद्धमें से लौटकर जो शत्रु से माराजाता है उसका परलोक के लिये जो कुछ सञ्चितपुण्य होता है वह उसके स्वामी को प्राप्त होता है९५॥

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥ ९६ ॥

रथ, घोड़ा, हाथी, छत्र, धन, धान्य पशु, स्त्री, सकल द्रव्य और तांबे आदि धातु के पदार्थ इनमें से जो कुछ युद्धमें जो पावै वह उस का ही होता है ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥

परन्तु जो जिसको मिले है वह उसमें से सुवर्ण चाँदी आदि उत्तम धन और युद्ध के योग्य हाथी घोड़े आदि सवारी राजाको दे देय, उसके सिवाय जो कुछ मिले वह उसका ही होगा और मिलकर जीताहुआ सब द्रव्य राजा योधाओं को बाँटदेय ॥ ९७ ॥

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ॥ अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

यह योधाओं का नित्यधर्म तुम से कहा, क्षत्रिय राजा वा राजधर्मवाला जो कोई पुरुष भी ऐसे धर्म से हीन न होय ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ९९ ॥

राजा बिना जीते भूमि धन आदि को पाने की इच्छा करै, जीत में मिलेहुए धन की यत्न से रक्षा करै, प्राप्त धन को खेती व्यापारआदि से बढ़ावै और बढ़ाहुआ धन ब्राह्मणादि सत्पात्रों को देय ॥ ९९ ॥

एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

इस चारप्रकारके कर्म में स्वर्गादि का साधन होता है, राजा सदा निरालस होकर इसका अनुष्ठान करै ॥ १०० ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ॥ रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १०१ ॥

राजा हाथी घोड़े आदि दण्ड से अप्राप्त देशको पाने की इच्छा करै, प्राप्त धन की देख भाल के साथ रक्षा करे, रक्षा कोहुए धन को जल और थल मार्ग के व्यापार से बढ़ावै और बढ़ेहुए को सत्पात्र में दान करके देय ॥ १०१ ॥

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ १०२ ॥

प्रतिदिन हाथी घोड़े आदिको सुशिक्षा (कवायद) करावै, सदा अपना पुरुषार्थ प्रकाशित करै, सम्मति और (खुफियादूत) की चेष्टा को गुप्त रक्खे और शत्रुके व्यसन आदि दोष ढूँढता रहै ॥ १०२ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ १०३ ॥

जिसकी सेना कवायद सीखकर सबप्रकार से सावधान रहती है उस राजासे सब जगत् डरता रहता है इसकारण राजा सब प्राणियोंको दण्ड (सेना) के द्वारा ही वश में रक्खै॥१०३॥

अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन मायया ॥ बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ १०४ ॥

राजा अपने मंत्रियों के साथ निष्कपट व्यवहार करै, किसी प्रकार भी कपट से बर्त्ताव न करै ऐसा न होने से उनका कोई विश्वास नहीं करेगा, और शत्रु का कराहुआ प्रकृति का भेद गुप्त दूत के द्वारा जानै ॥ १०४ ॥

नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ १०५ ॥

ऐसा प्रबन्ध रक्खै कि-इसके छिद्र को कोई न जानै और यह आप शत्रुके छिद्रको जानै, जैसे कछुआ अपने अङ्गों को छुपाता है तैसे राजा, राज्य के अमात्य आदि अङ्गों को दान मानसे अपने वशमें रक्खै, दैवात् यदि कोई प्रकृति क्रुद्ध होजाय तो शीघ्र ही उसकी शान्ति करै ॥ १०५ ॥

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥ वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ १०६ ॥

जैसे अति चञ्चल स्वभाववाला भी बगुला मच्छी पकड़ने को एकान्त मन से बैठता है तैसे ही राजा निर्जनस्थान में बैठकर शत्रुका देश लेनेका विचार करै, जैसे सिंह प्रबल भी गजराज को मारने के लिये पराक्रम करता है तैसे ही आप अल्पबली होनेपर भी प्रबल शत्रु को सब शक्तियों की सहायता से घेरलेय, जैसे भेड़िया चरवाहे की ज़रासी असावधानी होते ही समूह में से पशु को लेजाकर मारडालता है, तैसेही किले आदि में स्थित राजा को कुछ एक असावधान देखते ही नष्ट करदेय, जैसे खरगोश चारों ओर धनुर्धारी व्याधों के होनेपर भी कुटिल गति से छलाँग मारकर भाग जाता है तैसेही बलहीनहुआ राजा, बलवान् शत्रु से घिरजाय तो भी अपनी रक्षा के लिये बलवान् राजाका आश्रय करनेको भागजाय॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ॥ तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ १०७ ॥

इसप्रकार विजय चाहनेवाले राजाके जो प्रतिकूल हों उनको सामआदि उपायों से वश में करै ॥ १०७ ॥

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥ १०८ ॥

यदि वह साम, दाम, दण्ड इन पहिले तीन उपायों से ठीक न हों तो धीरे २ थोड़ा२ दण्ड ही देकर बलात्कारसे उनको वशमें करै॥१०८॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ॥ सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ १०९ ॥

विचारवान् पुरुष साम आदि चारों उपायों में से राज्यकी वृद्धि के लिये नित्य साम और

दण्ड की प्रशंसा करते हैं ॥ १०९ ॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ॥ तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥

जैसे धान्य और तृणों के एकसाथ उत्पन्न होनेपर भी किसान धान्य की रक्षा करके तृणादि को काट छाँटकर पृथक् करदेता है तैसे ही राजा, राज्य में से दुष्टोंका नाश करै और शिष्टों की रक्षा करै, सगे भ्राताओं में से भी दुष्टका नाश और शिष्ट की रक्षा करै ॥११०॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥ सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥ १११ ॥

जो राजा दुष्ट और शिष्ट को न जानकर अन्याय का धन लेता है और मारण आदि कष्टसे राज्य के पुरुषोंको पीड़ा देता है वह प्रकृति के कोप में पड़कर राज्य से भ्रष्ट होता है और स्त्री–पुत्रादि सहित उसका मरण होजाता है ॥ १११ ॥

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ११२ ॥

जैसे भोजन बिना शरीर सूखनेसे प्राणियों के प्राण नष्ट होजाते हैं तैसेही राज्य को पीड़ादेने पर प्रकृति के कोप से राजा के प्राण नष्ट होजाते हैं ॥ ११२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥ ११३ ॥

राजा, इस आगे कहेहुए राज्य की रक्षा के विधान को करै, क्योंकि ठीक २ राज्य की रक्षा करने पर राजा अनायास वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ११३ ॥

द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ ११४ ॥

राजा छोटे बड़े ग्रामों के अनुसार दो,तीन, पाँच अथवा सौ ग्राममें अनेक सेना के साथ में एक प्रधान (अफसर) को अधिष्ठित करै इसको गुल्म कहते हैं ॥ ११४ ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ॥ विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ ११५ ॥

और प्रत्येक ग्राम में एक पुरुष को अधिपति बनावै, उनके ऊपर एक दश ग्रामों का अधिपति बनावै, इसीप्रकार बीस ग्राम का अधिपति,सौग्रामका अधिपति और सहस्रग्राम का अधिपति नियत करै ॥ ११५ ॥

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ॥ शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ ११६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥ शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ ११७ ॥

ग्राम में चोरी आदि दोष उत्पन्न होयँ तो ग्रामपति को उसका उपाय करने में असमर्थ होने पर दशग्राम के अधिपति से वह बात कहै, यदि उससे भी काम न चले तो वह बीस ग्राम के अधिपति से कहै, उससे भी काम न चले तो वह शतग्रामाधिपति से कहै और उससे भी काम न चले तो वह स्वयं सहस्राधिपति से कहै इसप्रकार ऊपर २ के पुरुष कार्य करैं तो चोरी आदि उपद्रव न होंगे॥११६॥११७॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः॥ अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥ ११८ ॥

ग्राम के पुरुष प्रतिदिन राजा को जो अन्न-पान ईंधन आदि देना उचित समझें उसको ग्रामाधिपति पावै ॥ ११८ ॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ॥ ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ ११९ ॥

आठ बैलों से हल चलाना धर्मानुकूल है, जीविका के लिये छः बैलोंका हल विहित है, गृहस्थ चारबैलों से हल चलवावै, दो बैलोंका हल निन्दित है, इसप्रकार दो हलमें चार बैल लगाकर जितनी भूमि जुतसकै उस भूमि को कुल कहते हैं, दश ग्राम का अधिपति कुलप्रमाण भूमि की वृत्ति पावै, बीस ग्रामका अधिपति पाँच कुल भूमि की जीविका पाता है, सौ ग्रामका अधिपति एक ग्राम की जीविका पाता है और सहस्रग्राम का अधिपति एक कसबे की जीविका पाता है ॥ ११९ ॥

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ॥ राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥ १२० ॥

उन सबों के अधिकार में के ग्रामों के कार्य पृथक् २ करै, उनको दूसरा राजा का हितकारी मंत्री निरालस होकर देखै ॥ १२० ॥

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ १२१ ॥

जैसे नक्षत्रों में शुक्रग्रह भयानक है तैसे एक एक नगर में सबके ऊपर प्रधान, सब विषय में सावधानी रखनेवाला, हाथी घोड़े आदि की सेना से भयानक तेजस्वी (रुआबदार) एक पुरुष को कार्य देखने के लिये नगर का अधिपति नियत करै ॥ १२१ ॥

स तानुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ॥ तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १२२ ॥

वह नगर का अधिपति अपना कार्य करने को भी उन ग्रामाधिपति आदि के पास सेनाको साथ में लेकर उनका काम देखने को जाय और राजा नगराधिपति तथा ग्रामाधिपति सबों के कार्य को गुप्तदूत के द्वारा जानता रहै॥१२२॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥ भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १२३ ॥

क्योंकि-प्रजाकी रक्षा और देखभाल के काम पर नियुक्त सब भृत्य (नौकर) प्रायः पराये धन के ग्राहक और वञ्चक होते हैं इस कारण विशेष ध्यानदेकर राजा उन भृत्यों से प्रजाओं की रक्षा करे ॥ १२३ ॥

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ॥ तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १२४ ॥

जो पापबुद्धि, कार्यिकों (फरियादियों) से अन्याय करके धनलेते हैं, राजा उनका सर्वस्व छीनकर अपने देश से निकालदेय ॥ १२४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥ १२५ ॥

राजा, उपयोगी कामों पर नियत सेवक, दासियें और साधारण कार्य करनेवाले सेवकों के लिये उत्तम अधम कर्म के अनुसार प्रतिदिन की जीविका नियत करै ॥ १२५ ॥

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् ॥ षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ १२६ ॥

सफाई करनेवाले, जल लानेवाले आदि नीची श्रेणी के दासों का वेतन प्रतिदिन एक पण दे

और उत्तम श्रेणी के सेवकको प्रतिदिन छः पण[1] वेतन देय और छटेमहीने एक जोडावस्त्र तथा एक एक द्रोण[2] अन्न देय ॥ १२६ ॥

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥ १२७ ॥

व्यापार के पदार्थों की खरीद और बिक्री का मूल्य, वह कितनी दूरसे आया है, उसके ऊपर मार्ग में कितना व्यय हुआ है और उस की चोर आदि से रक्षा करने के लिये जो व्यय हुआ है इस सबका विचार करके और उसमें जो कुछ व्यय हुआ हो उसके सिवाय जो कुछ लाभ हो उसके अनुसार व्यापार के पदार्थों पर राजा वैश्यों से करलेय ॥१२७॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ॥ तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ १२८ ॥

सब प्रकार के विचार करके राजा अपने राज्यमें करलगावै, जिसमें अपनेको और व्यापारी को कार्य का उचित फल मिले ॥१२८॥

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः॥तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ १२९ ॥

जिसप्रकार जोंक रुधिर, बछड़ा दूध, और भौंरा मधुको थोड़ा२ करके पीता है उसीप्रकार राजा थोडा २ वार्षिक करलेय, जिससे प्रजाके मूलधन में हानि न पहुँचै ॥ १२९ ॥

पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ॥ धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ १३० ॥

राजा पशु और सुवर्ण के ऊपर लाभका पचासवाँ भाग कर लेय, धान्यादि अन्नपर खेत का बलाबल विचारकर और भूमिविशेष में खेती के आवश्यक परिश्रमकी न्यूनाधिकता विचारकर छठा वा आठवाँ अथवा बारहवाँ भाग कर लेय ॥ १३० ॥

आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्॥ गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ १३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ॥ मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ १३२ ॥

वृक्ष, मांस, मधु, घृत, सुगन्ध के पदार्थ, ओषधि, वृक्षोंका रस, फूल, मूल, फल, पत्ते, शाक, तृण, बाँस के पात्र, चमड़े के पात्र, मट्टी के पात्र और पत्थर के पदार्थ इन सबप्रकारकी वस्तुओंके खरीदनेमें जो लाभ होय राजा उस का छठा भाग कर लेय ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ १३३ ॥

धन के अभाव से मरणदशा को प्राप्त होता हुआ भी राजा श्रोत्रिय से कर न लेय, और राजा अपने देश में बसनेवाले श्रोत्रिय को भूँख से दुःखी भी न होनेदेय ॥ १३३ ॥

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ॥ तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥ १३४ ॥

जिस राजा के राज्य में वेदज्ञ ब्राह्मण क्षुधा से दुःखित हो उस राज्य को उसके पेटकी अग्नि दुर्भिक्षादि के रूप से शीघ्रही दुःखी करती है ॥ १३४ ॥

१ पण का लक्षण आगे कहेंगे।

२ अष्टमुष्टिर्भवेत्कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ च पुष्कलम् । पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्त्तितः॥ चतुराढको भवेद् द्रोण इति ॥ अर्थात् आठ मुट्ठी की एक कुञ्ची, आठ कुञ्चीका एकपुष्कल, चारपुष्कल का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है।

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत्॥ संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १३५ ॥

राजा श्रोत्रिय के शास्त्रज्ञान आदि का विचार करके उचित वृत्ति देय, और जैसे पिता सदा औरस पुत्र की रक्षा करता है तैसे चोर आदि से उनकी रक्षा करै ॥ १३५ ॥

संरक्ष्यमाणो राज्ञायं कुरुते धर्ममन्वहम् ॥ तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३६ ॥

राजा का रक्षा कराहुआ श्रोत्रिय प्रतिदिन जो कुछ धर्म कर्म करता है उससे राजाकी आयु, धन और राज्य की वृद्धि होती है॥१३६

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ १३७ ॥

दुःखी प्रजा, जो शाक आदि साधारण वस्तुओं के व्यापार से जीविका करती है राजा उससे थोड़ासा वार्षिक करलेय॥१३७॥

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥ १३८ ॥

रसोइया आदि कारुक,माली आदि शिल्पी, शूद्र, दास और मजदूर इन सब से राजा प्रतिमास में एक २ दिन काम करालेय ॥१३८॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ १३९ ॥

अधिक लोभवश राजा अपना आताहुआ कर और महसूल छोड़कर अपना मूलोच्छेद न करै तथा अधिक लोभसे अधिक कर और महसूल लेकर दूसरे का मूलोच्छेदन भी न करै क्योंकि इन दोनों कामोंसे अपने को और दूसरे को पीड़ा होती है, धन के अभाव से अपने को पीड़ा और अधिक लेने से दूसरे को पीड़ा होती है ॥ १३९ ॥

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥ १४० ॥

राजा कार्य को देखकर कभी कठोर और कभी कोमल होय, समय २ मृदु और तीक्ष्ण होनेवाला राजा सबका प्रियपात्र होता है॥१४०

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ॥ स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥ १४१ ॥

जब राजा खिन्नहोय तो प्रार्थी (फरियादी) मनुष्यों के कार्य देखने के उस आसनपर, धर्मज्ञ, चतुर, कुलीन, जितेन्द्रिय मुख्य मन्त्री को स्थापन करै ॥ १४१ ॥

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्त्तव्यमात्मनः ॥ युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १४२ ॥

इसप्रकार अपने सब कर्त्तव्यों को ठीक करके उत्साह के साथ सावधान होकर सबप्रकार से प्रजाओं की रक्षा करै ॥ १४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद् ह्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ १४३ ॥

मन्त्रियों सहित जिस राजा के देखतेहुए प्रजाओं का सर्वस्व चोर आदि लेजाते हैं और प्रजा विलाप करती है वह राजा जीवित भी मरेहुए की समान है ॥ १४३ ॥

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ॥ निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ १४४ ॥

शास्त्र में कहा है कि-राजा का और धर्मों

की अपेक्षा प्रजापालन परमधर्म है, क्योंकि-शास्त्रोक्त कर आदि लेनेवाला राजा धर्म से युक्त होता है ॥ १४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ॥ हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥ १४५ ॥

रात्रि के पिछले पहर में उठकर शौच से निवट सावधान हो, अग्निहोत्र और ब्राह्मणों का पूजन करके शुभसभा (दरबार) में प्रवेश करै ॥ १४५ ॥

तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ॥ विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ १४६ ॥

जिस सभा में स्थित राजा, न्याय देखनेको आईहुई सब प्रजा को आनन्दित करके बिदा करदेय, उनको बिदा करके मंत्रियों के साथ राजकाज का विचार करै ॥ १४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥ १४७ ॥

पर्वत के ऊपर, महल में वा निर्जन स्थान जङ्गल आदि के भीतर एकान्तस्थान में बैठ कर मन्त्रणा करै, जहाँ का किसीको ध्यान भी न हो ॥ १४७ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः॥स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः १४८॥

जिस राजा की मंत्रणा को मंत्रियों के सिवाय और पुरुष नहीं जानसक्ते हैं, वह राजा थोड़े धनवाला होनेपर भी सब पृथ्वी को भोगता है ॥ १४८ ॥

जडमूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ॥ स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रेकालेऽपसारयेत् ॥ १४९ ॥

जड़, गूँगा, अन्धा, बहिरा, तोता मैना आदि पक्षी, अतिबूढ़े, स्त्रियें, म्लेच्छ, रोगी, अधिकाङ्ग, अङ्गहीन इन सबको मंत्रणा के समय बाहर करदेय ॥ १४९ ॥

भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च ॥ स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥ १५० ॥

क्योंकि—पहिले जन्मके कर्मके दोष से जड़ता आदिको प्राप्त वह जड़ आदि स्वभावसेही अपमानित होते हैं इसलिये वह मंत्रणा का भेद करदेते हैं अतएव विशेष यत्न के साथ मंत्रणा के समय इन सब को हटाने में चित्त लगावै॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥ चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेक एव वा ॥ १५१ ॥

दिन में दुपहर के समय वा पूर्ण आधीरात के समय सावधान अन्तःकरण से उन मंत्रियों के साथ अथवा अकेलाही धर्मार्थ कामका विचार करै ॥ १५१ ॥

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ॥ कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ १५२ ॥

धर्म अर्थ-काम परस्पर विरुद्ध हैं उस विरोध को दूर करता हुआ अर्थ के उपाय का विचार करै, किस पात्र को कन्या देने से अपना काम सिद्ध होगा ऐसा बिचारकर कन्याओं का दान और कुमारों की विनय नीति आदि की शिक्षा से रक्षा करै ॥१५२॥

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ १५३ ॥

दूत को दूसरे के राज्य में किसप्रकार भेजना

चाहिये, जो कार्य प्रारम्भ किया था वह समाप्त नहीं हुआ उसको किसप्रकार समाप्त किया जाय, स्त्रियों का व्यवहार उनकी सखी आदि के द्वारा कैसे जानाजाय, परराज्यों में जो दूत नियत करे हैं और दूतों के द्वारा उनकी चेष्टा किसप्रकार जानना चाहिये, इन सब विषयों का विचार करै ॥ १९३ ॥

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः। अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ १५४ ॥

आठ कार्यों में राजा को बहुत ध्यान देना चाहिये, आमदनी, खर्च, कर आदि लेना, नौकरों को मासिक वेतन देना, मंत्रियों के देखे और न देखे कार्यों का समझना और विरुद्धकार्य करने से रोकना, तथा सन्देहयुक्त विषय में शास्त्र में कहाहुआ करलेना वा दीवानी और फौजदारी के विषय का विचार करके हारनेवाले से शास्त्रकी आज्ञानुसार धन लेना और पाप का प्रायश्चित्त इन सबका विचार करै। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिव्यञ्जन वैदेहिक व्यञ्जन और तापसव्यञ्जन इन पाँच चारों का नाम पञ्चवर्ग है, इनके कर्त्तव्य के विषय में ठीक २ विचार करै, परम धर्मज्ञ प्रगल्भ छात्र कपट व्यवहार करे तो उस को कापटिक कहते हैं, धन चाहनेवाले उससे यह कहै कि तू जिसका दुराचार देखे तत्काल हमैं सूचना देदेना। भ्रष्ट संन्यासी को उदास्थित कहते हैं, बुद्धि शौच युक्त और लोकों के दोषको जाननेवाले तथा जीविका का अभिलाषी जानकर राजा पूर्वोक्त वाक्य इससे भी कहकर इसको जहाँ बहुत से धनका लाभ हो उसमठ में स्थापित करै और बहुत धान्य उत्पन्न करनेवाली भूमि जीविका के लिये भी देय, ऐसी भूमि देय कि-जिसमें उत्पन्न हुए अन्नादिसे और संन्यासियोंका भी अशन वसनका निर्वाह होय, क्षीण वृत्ति और बुद्धि शौचवाले किसान को गृहपति व्यञ्जन कहते हैं उससे पूर्वकी समान कहकर अपने राज्यका कृषिकार्य करवावै। क्षीणवृत्ति व्यापारी को वैदेहिक व्यंजन कहते हैं उससे पूर्वकी समान कहकर दान मानसे अपना करके राज्यमें व्यापार करवावै, और भ्रष्ट ब्रह्मचारी बुद्धिमान होय तो उसको तापसव्यञ्जन कहते हैं, जीविका चाहनेवाला वह पुरुष एक ग्राममे बहुत से कपटी शिष्यों के साथ गुप्तभाव से शिष्यों का लायाहुआ भोजन करै और दो एक मास के अनन्तर प्रकाशरूप से भोजन करना दिखावै, उस कपट तपस्वी के शिष्य यह प्रकट करैं कि-इनको त्रिकाल का ज्ञान है तब बहुत पुरुषों के आने से सबका विश्वासपात्र होकर सबका कर्त्तव्य अकर्त्तव्यजानै इन पञ्चवर्गों का विचार करै, इस पञ्चवर्ग के द्वारा यह जानै कि-शत्रुराजा के ऊपर उसके कुटुम्बी और मंत्रियों का अनुराग है या विराग, यह जानकर उचित उपाय करै, और सामन्त राजमण्डल में कौनसा राजा सन्धि वा कौन राजा युद्ध करना चाहता है यह जानकर उसके अनुसार विचार करै ॥ १९४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम्। उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥ १५५ ॥

अरि, विजय की इच्छा करनेवाला और मध्यम (अरि और विजिगीषु दोनों के समीप अर्थात् सरहद्द में रहनेवाला, जो मिलेहुए अरि विजिगीषु के अनुग्रह में समर्थ और भिन्न २ हुए दोनोंको निग्रह करनें में समर्थ)

का कैसाभाव है सो जाने। प्रज्ञा और उत्साह गुणयुक्त बहत्तर प्रकृतियुक्त बिजिगीषु राजा की चेष्टा जाने और शत्रु, विजिगीषु, मध्यम इन राजाओं के मिलनेपर अनुग्रह में समर्थ, अलग २ होने पर निग्रह में समर्थ राजाको उदासीन कहते हैं उसके अन्तःकरणका भावजाने और स्वाभाविक शत्रु कृत्रिमशत्रु तथा अपनी भूमि से आगेरहनेवालेराजाको शत्रु कहते हैं इन सबकी चेष्टा को भी गुप्त दूत के द्वारा जाने॥

एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः॥ अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः॥१५६॥

मध्यम, विजिगीषु, उदासीन और शत्रु इन चार को मूलप्रकृति कहते हैं, और मंत्री, राज्य दुर्ग, अर्थ, दण्ड यह पाँच प्रकृति के मूल हैं इसलिये मूल प्रकृति शब्द से कहेजाते हैं, शत्रु की भूमि से आगेवाला, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रु के मित्रका मित्र यह चार, पीछे रहनेवाले पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार यह चार इसप्रकार आठ प्रकृति हैं सो सबके मत से बारह प्रकृति हुईं॥१५६॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः॥ प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः॥ १५७॥

मध्यम, विजिगीषु, उदासीन, शत्रुरूप मूल प्रकृति एक, शत्रुकी भूमि से आगे का मित्र, शत्रुका मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र, पीछे रहनेवाला पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार इन बारह प्रकृतियों में प्रत्येक की मंत्री, राज्य, दुर्ग, अर्थ, दण्ड यह पांच द्रव्य प्रकृति हैं और मध्यमादि बारह प्रकृति इसप्रकार सब बहत्तर प्रकृति हैं॥ १५७॥

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च॥ अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम्॥ १५८

युद्धके अभिलाषी राजा के राज्य से लगे हुए राज्यवाले राजा को शत्रु कहते हैं, और शत्रु की सेवा करनेवाले को भी शत्रु कहते हैं वह कृत्रिम शत्रु है, शत्रुकी भूमि से अगलेको मित्र कहते हैं और शत्रु राजा और युद्धाभिलाषी राजाकी भूमि से आगे के राजा को उदासीन कहते हैं॥ १५८॥

तान् सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः॥ व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च॥ १५९॥

इन सब राजाओं को साम, दाम, दण्ड, भेद इन चार उपायों में से एक-दो-वा सबके द्वारा वश में करै, अथवा केवल युद्धसे वा केवल सन्धि से ही वशमें करै॥ १५९॥

संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च॥ द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा॥ १६०॥

सन्धि (हम, हाथी-घोड़े सेना आदि के द्वारा परस्पर का उपकार करेंगे, ऐसा नियम करना) विग्रह (युद्ध), यान (युद्ध के निमित्त शत्रु राजा के ऊपर चढ़ाई करना) आसन (उपेक्षा करके घर में बैठ रहना) द्वैध (अपनी सेना को दो भाग करना) और आश्रय (शत्रु से पीड़ित होकर दूसरे बली राजा का आश्रय करना) यह छः राजाओं के उपकारक हैं, इस कारण इनको गुण कहाते हैं, इनमें से जिस गुण का आश्रय करने से अपना उपकार और शत्रु राजा की हानि होय उसका ही आश्रय करै॥ १६०॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव

च ॥ कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १६१ ॥

अपनी घोड़े हाथी आदि सम्पदा और शत्रु राजा की हानि अथवा अपनी हानि और शत्रु राजा की समृद्धि देखकर उचित रीति से कहीं आसन, कहीं, यात्रा, कभी सन्धि, कभी युद्ध कभी द्वैध और कभी दूसरे राजा का आश्रय लेय ॥ १६१ ॥

संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ॥ उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ १६२ ॥

सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, संश्रय, यह हरएक दो २ प्रकार के हैं ॥ १५२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥ तदा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ १६३ ॥

जहां तत्काल फल मिलने के लिये वा आगे को फल मिलने के लिये और राजा के साथ शत्रु राजा के ऊपर चढ़ाई आदि करने के विषयमें सन्धि करने को समान यानकर्मा सन्धि कहते हैं, और तुम यहां जाओ मैं तहां जाऊँगा इसप्रकार तत्काल का फल वा आगे को फल मिलने की इच्छा करके सन्धि करने को असमानयानकर्मा सन्धि कहते हैं, इसप्रकार सन्धि को दोप्रकारकी जाने ॥ १६३ ॥

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ॥ मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ १६४ ॥

शत्रु राजा के व्यसनादि दोष जानकर उस को जीतने के लिये मार्गशिर आदि शास्त्रोक्त समय से अन्य समय में वा होसके तो शास्त्रोक्त समय में अपना कराहुआ युद्ध और दूसरे राजा से मित्र राजा का अपकार होनेपर उसकी रक्षा के लिये युद्ध, इसप्रकार विग्रह दो प्रकार का कहा है ॥ १६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥ संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ १६५ ॥

अकस्मात् शत्रु के व्यसनादि दोष जानकर समर्थ होनेपर इकलाही चढ़ाई करै, असमर्थ होन पर दूसरे राजा से मिलकर चढ़ाई करै, ऐसे यान दो प्रकार का है ॥ १६५ ॥

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ १६६ ॥

पूर्वजन्म के पाप से वा इस जन्मके प्रबल पाप से क्रम करके हाथी, घोड़े, खजाने आदि का नाश होने पर आसन और समृद्धि होनेपर भी मित्र राजा के कहने से उसके कार्य की रक्षा के लिये आसन ऐसे आसन भी दो प्रकार का कहा है ॥ १६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥ १६७ ॥

साध्य प्रयोजन की सिद्धि के लिये सेनापति की आश्रित (मानहत) सेना का एकस्थान पर पड़े रहना और किले में कुछ एक सेना के साथ स्वयं राजा का स्थित रहना, ऐसे द्वैधीभाव भी, षड्गुण के जाननेवालों ने दोप्रकार का कहा है ॥ १६७ ॥

अर्थसम्पादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ॥ साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ १६८ ॥

शत्रु से पीडित होकर उस पीडा को दूर करने के लिये दूसरे राजा का आश्रय करना और पीड़ा की सम्भावना में अमुक राजा ने

प्रबल राजा का आश्रय लिया है, ऐसा प्रसिद्ध करने के लिये दूसरे राजा का आश्रय करना ऐसे संश्रय भी दो प्रकार का कहा है ॥१६८॥

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः। तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा संधिं समाश्रयेत् ॥ १६९ ॥

जिस समय ऐसा जाने कि—युद्धके उत्तर काल में निःसन्देह मेरी प्रबलता होयगी और इससमय कुछएक हानि है तो युद्ध न करके सन्धि करलेय ॥ १६९ ॥

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्। अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १७० ॥

और जिस समय अपनी अमात्य आदि सब प्रकृति हृष्ट पुष्ट हों, अपने आप तीनों शक्तियों से युक्त होय और हाथी आदि से भी समृद्ध होय तब युद्ध करै ॥ १७० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्। परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥ १७१ ॥

और जिस समय यथार्थरूप से जानो कि—मेरी अमात्य आदि सकल सेना अति हर्षयुक्त और धनादि से पुष्ट है तथा शत्रु राजा की सेना खिन्न और धनादि से क्षीण है तब युद्ध के लिये शत्रु राजा के ऊपर चढ़ाई करै१७१

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च। तदासीत प्रयत्नेन शनकैःसान्त्वयन्नरीन् ॥ १७२ ॥

जिस समय अपने वाहन और सेनाको क्षीण समझै उससमय क्रम २ से भेद आदि देकर शत्रु राजा का सान्त्वन करताहुआ आसनका अवलम्बन करै ॥ १७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्। तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ १७३ ॥

और जिस समय शत्रु राजा को सर्वथा बलवान् समझै तब अपनी सेना के दोभाग करके अपना कार्यसाधै अर्थात् कुछ सेनाको लेकर किले में रहै और कुछ सेनाके द्वारा विरोध आदि कराकर मित्र संग्रह रूप अपना कार्य साधै ॥ १७३ ॥

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्। तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ १७४ ॥

और जिस समय शत्रुकी सेनासे घिरजाय और पूर्वोक्त किसीप्रकार से अपनी रक्षा न करसकै तबशीघ्रही बलवान् धार्मिक राजाका आश्रय करै ॥ १७४ ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च। उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७५ ॥

जो राजा दुष्ट प्रकृतियों को वश में करने को समर्थ होय ऐसे गुणी बलवान् राजा का गुरु की समान आश्रय करै ॥ १७५ ॥

यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम्। सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ १७६ ॥

यदि संश्रय करनेपरभी संश्रय का दोष देखै तो निर्भय होकर तुमुलयुद्ध ही करै॥१७६॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः। यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ १७७ ॥

नीतिज्ञ राजा दानादि सब उपायों से ऐसा यत्न करे जिससे मित्र और उदासीन शत्रु राजा प्रबल न होसकै ॥ १७७ ॥

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ॥ आयतीनां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ १७८ ॥

सब कार्यों के उत्तरकाल में और वर्त्तमान में क्या गुण हैं, क्या दोष हैं तथा बीतेहुए सब कार्यों के भी गुण दोषों को तत्त्व से विचारै ॥ १७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः । अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ १७९ ॥

कर्त्तव्य कार्य के होनहार गुणदोषोंको जानने वाला, वर्त्तमानदशा में शीघ्र निश्चय करने वाला और बीतेहुए कार्यों के शेष को जानने वाला शत्रुओं से तिरस्कृत नहीं कियाजाता है॥

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥ १८० ॥

मित्र, उदासीन और शत्रुराजा, जिसमें अपने को पीडा न देसकै ऐसा उपाय, विजय चाहनेवाला राजा अपने राज्यमें करै, यह नीति संक्षेप से वर्णन करी ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८१ ॥

समर्थ राजा जिससमय शत्रुराजा के साथ युद्ध करने को चढ़ाई करै उस समय आगे कहेहुए श्लोक की रीति से उस चढ़ाई का प्रारम्भ करै ॥१८१॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ॥ फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मांसौ प्रति यथाबलम् ॥ १८२ ॥

चतुरङ्ग, बलयुक्त राजा, हाथी, रथ आदिके द्वारा विलम्ब से जाताहुआ, हेमन्तऋतु के अन्न से युक्त शत्रुके राज्य में जाना चाहै तो मार्गशीर्ष में चढाई करै, और घोड़ों की सेना से शीघ्र पहुँचसक्ता होय और शत्रु के राज्य को वसन्त काल में अधिक अन्नयुक्त समझै तो फाल्गुन वा चैत्रमें अधिक विलम्ब न करताहुआ चढाई करै ॥ १८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्ध्रुवं जयम् ॥ तदा यायाद्विगृह्यैवं व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ १८३ ॥

जब और समयों में भी जानही निःसन्देह अपनी जय समझै वा शत्रुराजाके अमात्यादि में परस्पर विरोध होय अथवा वह टूटकर अपनी ओर आजायँ तो चाहे जिस समय युद्ध के लिये दूसरे के राज्य पर चढ़ाई करै ॥१८३॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ॥ उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥ १८४ ॥ संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ॥ सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥

अपने किले राज्य आदि में रक्षाका उपाय करके, विधि के अनुसार अन्न शस्त्रादि वस्तुओं की यात्रा कराकर, शत्रुके राज्य में स्थित होने की सामग्री (शत्रुके भृत्यादि) को अपने वश में करके और पूर्वोक्त कापटिक आदि पञ्चवर्ग के द्वारा शत्रुके राज्य की वार्त्ता जानने के लिये उनको नियत करके, लतावृक्षादि से भरे, जल से भरे और ऊँचे नीचे इस तीन प्रकार के मार्गको ठीक कराकर और अपने छः प्रकार के बल (सेना सेवक आदि) को यथायोग्य भोजन सन्मानआदि से प्रसन्नकरके युद्धशास्त्रकी रीतिसे धीरे २ शत्रुके देश पै चढ़ाई करे ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥ गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ १८६ ॥

जो मित्र बनाहुआ गुप्तरूप से शत्रु का पक्षपाती हो और जो पहिले किसी कारण से क्रुद्ध हो नौकरी छोड़कर चलागया हो और फिर आगया हो इन दोनों से सावधान रहै, क्योंकि-यह दोनों असाध्य शत्रु हैं ॥ १८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ॥ वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥ १८७ ॥

यात्रा के समय चारोंओर से भय होय तो दण्डव्यूहरचना से यात्रा करै, (आगे बलपति अर्थात् जनरल् बीच में राजा, पीछे सेनापति अर्थात् कर्नल्, दोनों ओर सब हाथी, हाथियों के पास घोड़े फिर प्यादे इसको दण्डव्यूह कहते हैं), पीछेसे भय होय तो शकटव्यूह बांधकर यात्रा करै (आगे को सूची के अग्रभाग की समान और पीछे विस्तृत और घनी इस सेना की रचना को शकटव्यूह कहते हैं), दोनों ओर से भय होय तो वराह और गरुड़ के आकार की व्यूहरचना करके यात्रा करै, आगे पीछे भय होय तो मकराकारव्यूह रचना करके यात्रा करै और आगे भय होय तो सूचीव्यूह की रचना से यात्रा करै (चीटियों की पंक्तिकी समान आगे पीछे घनीभावसे जानेवाली सेना जिसके कि आगे परमवीर पुरुष हो उसको सूचीव्यूह कहते हैं) ॥ १८७ ॥

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्बलम् ॥ पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ १८८ ॥

जिधर से भय की आशङ्का होय उधर को अपनी सेना फैलावै, राजा अपने नगरसे यात्रा करके सदा पद्मव्यूह के भीतर रहै (समानभाव से चारों ओर को फैलीहुई मण्डलाकार सेना के मध्य में राजा की स्थिति हो इस को पद्मव्यूह कहते हैं) ॥ १८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ १८९ ॥

सेनापति और बलपति सब ओर नियुक्त करै, जिधर से भय की आशङ्का होय उस को आगे की दिशा समझै ॥ १८९ ॥

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसञ्ज्ञान्समन्ततः ॥ स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥ १९० ॥

भेरी-ढोल शङ्ख आदि बाजों के द्वारा युद्ध में खड़े रहना—हटजाना—लड़ना आदि के सङ्केत को जाननेवाली, और दोनों प्रकार के युद्धमें प्रवीण, कुछएक विश्वास पात्र पुरुषों की गुल्म (पलटनें) चारों ओर निर्भयरूप से शत्रुकी सेना के प्रवेश को रोकने के निमित्त और शत्रु की चेष्टा जानने के लिये नियुक्त करै ॥ १९० ॥

संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥ १९१ ॥

थोड़े से योधाओंको इकट्ठे करके लड़ावै, बहुतसे हों तो इच्छानुसार चारों ओर को फलादेय अथवा सूचीव्यूह वा वज्रव्यूह बनाकर युद्ध करै (तीनश्रेणी में करने का नाम वज्रव्यूह है) ॥ १९१ ॥

स्यन्दनाश्वैः समे युद्ध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥

समान भूमि में घोड़े और रथों से, जलमें नौका वा हाथियों से, झाड़ियों, में धनुषबाण

से और गढ़े, काँटे, पत्थर आदि रहित स्थलमें तरवार,ढाल और भालों से युद्ध करै॥१९२॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ॥ दीर्घाल्लँघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥ १९३ ॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य (विराट्) पञ्चाल (कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र) तथा मथुराके देशोंमें रहनेवाले प्रायः छोटे और बड़े शरीरवाले शूरता तथा अहङ्कारवान् होते हैं इन्हें और ऐसे अन्य देशों के मनुष्यों को भी युद्ध में आगे करके लड़ावै ॥ १९३ ॥

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत् ॥ चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥ १९४ ॥

सेना की व्यूहरचना करके उसको ऐसे उत्साह के वाक्यों से बढ़ावै कि, जीतनेपर धर्मप्राप्ति है और भागनेसे नरकहोता है, तथा वह क्रुद्ध हैं वा प्रसन्न हैं इसकी परीक्षा करै तथा वह शत्रुके साथ ठीक २ युद्ध करते हैं वा छल से करते हैं,इसको चेष्टाओं से जानै॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ १९५ ॥

और किले में वा अन्यत्र स्थित शत्रुको सेना से घेर लेय,और शत्रु राजा के सब देश को पीड़ा देय, और शत्रु के घास, अन्न, जल, ईंधन आदि पदार्थों को बुरे पदार्थ मिलाकर दूषित करदेय ॥ १९५ ॥

भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १९६ ॥

तालाबोंको नष्ट करदेय,किला परकोटाआदि सब तोड़डाले, परिखाओं को भराव डालकर जलहीन करदेय और रात्रि में उस शत्रु राजा को भयदेय ॥ १९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम् ॥ युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ १९७ ॥

जो राजा के कुटुम्बी राज्यकी इच्छा करते हों उनको और क्षोभ को प्राप्तहुए मंत्री आदिकों को भेद करावै और जो भेद से अपने पक्ष के होगये हों उनकी चेष्टा जानै, शुभग्रह शुभदशा आदि से उत्तम समय जानकर निर्भय होकर युद्ध करै ॥ १९७॥

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ॥ विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥ १९८ ॥

साम, दाम, दण्ड, भेद इन सबों से एक साथ वा अलग २ एक २ से शत्रु राजा को जीतने का यत्न करै,इनसे जयकी सम्भावना होते हुए युद्ध करके जयकी इच्छा न करै ॥१९८॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ॥ पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ १९९ ॥

दो युद्ध करनेवालों में जिसकी सेनादि अधिक होती है उसका भी पराजय देखने में आता है और अल्पबलीकी भी जय होती दीखती है, जय में अधिक बल, अल्पबल का नियम नहीं है अतः हठ से युद्ध न करै१९९

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ॥ तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥ २०० ॥

यदि पूर्वोक्त तीनों उपायों से जय होने में सन्देह होय तो प्राणपण से ऐसा युद्ध करै कि जिसमें शत्रु की पराजय होय ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव

धार्मिकान् ॥ प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥ २०१ ॥

युद्धमें जीतकर शत्रुके राज्य में स्थापित सकलदेवताओं को और वहां के धार्मिक ब्राह्मणों को जीतेहुए धन के एकभाग में से भूमि और सुवर्ण आदि बहुमूल्य पदार्थ और अभय दे ॥ २०१ ॥

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥ २०२ ॥

शत्रु के अमात्य आदि सबों का अभिप्राय जानकर सेनासहित मरणको प्राप्त हुए राजा के वंश के योग्य पुरुष को उस राज्यमें अभिषिक्त करदेय और उनसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य के नियम बाँधलेय ॥ २०२ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधान पुरुषैः सह ॥ २०३ ॥

उस देशवासियों का जो देशाचार पूर्वपुरुषों से चला आया हो वह यदि धर्मानुकूल हो तो अपने राज्यसे विरुद्ध होनेपरभी उनका प्रमाण करै, अभिषिक्त राजा की मंत्रियोंसहित रत्नादि उत्तम वस्तुओं से पूजा करै ॥ २०३ ॥

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ २०४ ॥

यद्यपि इच्छित वस्तु को दूसरा लेलेय तो अप्रिय लगता है और दूसरे से मिले तो प्रसन्नता होती है ऐसा प्रसिद्ध है तथापि इच्छित वस्तु का देना और लेना दोनों प्रशंसनीय हैं ॥ २०४ ॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ॥ तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥

सकल कर्म पूर्वजन्मार्जित कर्मरूप दैव और मनुष्य की चेष्टा करने के अधीन हैं परन्तु इन दोनोंमें दैव अदृष्ट होनेसे अचिन्त्य है अतः दूसरे पुरुषार्थसे कार्य को सिद्ध करै ॥ २०५ ॥

सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ २०६ ॥

इसप्रकार शत्रु से युद्ध करै, यदि शत्रु राजा युद्ध न करके मित्रता करलेय, अथवा बहुत सा धन वा राज्य का कुछ भाग देय तो यात्रा का उचित फल समझकर उसके साथ सन्धि करके यत्न के साथ अपने राज्य को लौटजाय ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥ मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ २०७ ॥

शत्रु राजाके ऊपर चढ़ाई करने को उद्यत विजय चाहनेवाले राजा के राज्य के पीछे रहनेवाले पार्ष्णिग्राह और उसका उत्साह बढ़ानेवाला पार्ष्णिग्राह के राज्यके आगेवाला आक्रन्द राजा यदि यात्रा करनेवाले के देश पर चढ़ाई आदि करै तो उनके पास पहिले जाकर सम्मति लेलेय उनकी अपेक्षा न करै नहीं तो उनकी उत्पन्न करीहुई आपत्ति में पड़ना होता है ॥ २०७ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ २०८ ॥

सुवर्णादि धन और भूमि मिलनेपर राजा तैसी वृद्धि नहीं पाता है जैसी कि स्थिर मित्र को पाकर पाता है, स्थिर मित्र के हीनबल होनेपर भी आगे की वृद्धि प्राप्त होती है २०८

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च॥
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥

जो मित्र धर्म को जाननेवाला और प्रत्युपकार के स्मरण करनेवाला होता है और जिसके ऊपर अपनी सेना और मंत्री आदि प्रसन्न होते हैं, जो प्रेम करता है और जिसकी बुद्धि कार्य के आरम्भ में निश्चययुक्त होती है ऐसा मित्र अल्प बल होनेपर भी प्रशंसा के योग्य है ॥ २०९ ॥

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ॥ कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ २१० ॥

विद्वान्, बड़े कुल में उत्पन्न, महाबली, पराक्रमी, अतिचतुर, दानी, कृतज्ञ और सुख दुःख में एक समान चित्त रखने वाला शत्रु अतिकष्टदायक होता है उसको जीतना सहज नहीं होता है ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥

जो अति साधु हैं, पुरुषकी दृष्टि से ही उसके स्वभाव को जानसक्ते हैं, महाबली, पराक्रमी, दयालु, अति दाता ऐसे गुणयुक्त उदासीन राजाओं का, विजय चाहनेवाला राजा आश्रय करै ॥ २११ ॥

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि॥
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन्॥

यदि अन्यप्रकारसे अपनी रक्षा न करसके तो जो भूमि, जल वायुकी उत्तमता से रोगादि न होने के कारण कल्याणकारिणी, सकल अन्नों से शोभायमान हो और तृणादि उत्पन्न होने से गौ आदि पशुओं की वृद्धि करनेवाली हो उस भूमि को भी विना विचारे त्यागकर अपनी रक्षा करै ॥ २१२ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥

आपत्तिको दूर करने के उपाय के निमित्त धन इकट्ठा करै, और स्त्रीपर कुछ आपत्ति आनेपर उस धन से रक्षा करै, और उस स्त्री तथा धन दोनों का त्याग करके विपत्तिमें पड़े हुए अपनी सदा रक्षा करै ॥ २१३ ॥

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ॥ संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् सृजेद् बुधः ॥ २१४ ॥

धननाश, अमात्य आदि का कोप, मित्रों से कलह इन सब आपदाओंके एक साथ आने पर भी उनसे घवड़ावे नहीं, उनको दूर करने के निमित्त सामादि उपाय करै, यदि उनमें से एक एक से काम न चले तो सबसे काम ले ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः॥
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥ २१५ ॥

आप, राज्य में जो कुछ मिले वह और साम आदि उपाय इन तीन का अवलम्बन करके प्रयोजन की सिद्धिके लिये यथाशक्ति यत्न करै अर्थात् इन सब उपायों को करके आपदा से बचै ॥ २१५ ॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ॥ व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ २१६ ॥

इसप्रकार राजा मन्त्रियों के साथ इन सब बातोंका विचार करके व्यायाम (कसरत) करै और मध्याह्न के समय मध्याह्न काल का स्नान सन्ध्या आदि करने के अनन्तर भोजन करने के लिये रणवास में जाय॥२१६॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः॥
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः॥

वहां आत्मा की समान अपने रक्षक, भोजन के समय को जाननेवाले और दूसरों से भेद को प्राप्त न होनेवाले (विश्वासपात्र) रसोइयों के बनायेहुए, जोकि स्वरके जाननेवाले वैद्योंने चकोर को दिखाकर और विषनाशक मन्त्रोंसे परीक्षा करलिया हो ऐसे भोजन को करै॥ २१७॥

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत्। विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा॥ २१८॥

भोजन के सब पदार्थों में विषनाशक औषधियें मिलावै और सदा अपने शरीरपर विषनाशक रत्नोंको नियम से धारण करै॥२१८॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः। वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः॥ २१९॥

गुप्तदूत के द्वारा परीक्षा करीहुई स्त्रियें, नियमित वेषभूषणों से युक्तहोकर चँवर, व्यजन, पीने के जल और धूप आदि से राजा की सेवा करैं॥ २१६॥

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने। स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च॥२२०

इसी प्रकार वाहन, शय्या, आसन, भोजन, स्नान और सुगन्धित पदार्थों का अनुलेपन, इन की परीक्षा का भी यत्न करै। २२०॥

भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह। विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत्॥ २२१॥

भोजन करके रणवास में स्त्रियों के साथ विहार भी करै, विहार करके फिर समयानुसार कार्यों का विचार करै॥ २२१॥

१ विषमिले पदार्थ को देखते ही चकोर पंक्षी के दोनोंनेत्र लाल २ होजाते हैं।

अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम्॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च॥ २२२॥

और वेषआभूषणादि से शोभित होकर फिर आयुधधारी योधा पुरुष, सकल सवारी, शस्त्र और आभूषणों को भी देख कि उनकी क्या दशा है॥ २२२॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्। रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम्॥ १२३॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम्॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः

फिर सन्ध्योपासना करके शस्त्र धारण कर दूसरे एकान्त स्थान में जाय और वहां चरों से गुप्तसमाचार और उनका कराहुआ कार्य सुनकर उनको विदाकरदेय तदनन्तर सकल परिचारिका (बाँदी)ओं के साथ फिर भोजन के लिये रणवास में जाय॥ २२३। २२४॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः॥ संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः॥ २२५॥

रणवास में कानों को सुख देनेवाली बाजों की ध्वनि से आनन्दित होकर, डेढ़पहर रात के भीतर २ कुछ भोजन करके फिर रात्रि में शयन करै, तदनन्तर विश्राम पाकर रात्रि के पिछले पहर में शय्या पर से उठै॥ २२५॥

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः॥ अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत्॥

इति मनुस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

जब राजा नीरोग होय तो अपने आप इस रीति से प्रजापालनादि करै और अस्वस्थ

होय तो यह सब भार अमात्य आदि भृत्यों के ऊपर रक्खै ॥ २२६ ॥

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवाद-सहितः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥

इसप्रकार युद्ध आदि के द्वारा शत्रुपक्ष से प्रजाओंकी रक्षा करके जीविकाको प्राप्तहुई प्रजाओंके परस्पर के बिवाद से होनेवाले क्लेश को दूर करने के लिये, ऋण देना आदि अठारह विषय अर्थिप्रत्यर्थियों (मुद्दई मुद्दालवों) के परस्पर विरुद्ध वाक्यों (इजहारों) से उत्पन्नहुए सन्देह को दूर करनेवाले विचार-रूप सकल व्यवहारों को देखने की इच्छा करनेवाला राजा, आगे कहेहुए लक्षणोंवाले कमसे कम तीन ब्राह्मण और मन्त्रियों के साथ विनीतभाव से (वाणी और हाथ आदि की चपलता को त्यागकर) धर्माधिकार की सभा (कचहरी) में जाय ॥ १ ॥

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २ ॥

उस सभामें बड़े कार्य के विषयमें बैठकर और छोटेसे कार्य के विषय में खडे होकर भी दाहिनी भुजा बाहर निकालकर, बिनीत (गौरव के) वेष आभरणको धारण करेहुए अर्थिप्रत्यर्थियों के कार्य देखे ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥

वह सब ऋण देना आदि कार्य जो अठारह बिवाद के विषय कहे हैं उन सबका देश-जाति-कुलके आचार के अनुसार हेतु और शास्त्रकी आज्ञानुसार साक्षी (गवाही) लेख आदि प्रमाणों से अलग२ विचार करै ॥ ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥ संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥

उन अठारह विवादके विषयों में पहिला ऋण देना है, निक्षेप (अपना धन दूसरे के पास रखना), अस्वामिविक्रय (किसी धन का स्वामी न होकरभी उसको वेचडालना), संभूय समुत्थान (मिलकर व्यापार करने वाले वैश्यादिकोंका व्यवहार), दत्ताप्रदानिक दीहुई वस्तु अपात्रबुद्धि से वा क्रोधादि वश न देना ॥ ४ ॥

वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ॥ क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥

वेतन न देना, संविद्व्यतिक्रम (हम सब मिलकर अमुक कार्यको करेंगे ऐसी प्रतिज्ञाका उल्लंघन), क्रय--विक्रयानुशय (कोई वस्तु खरीदकर वा वेचकर अधिकलाभकी आशासे पश्चात्ताप करते हुए वह वस्तु न खरीदना वा न बेचना), स्वामिपालविवाद (स्वामी और पशुपालक का बिवाद) ॥ ५ ॥

सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥ स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥

सीमाविवादधर्म (ग्राम वा खेत आदिकी हदका विवाद), वाक्पारुष्य (गलीगलौच), दण्डपारुष्य (मारपीट), स्तेय (छुपकर पराया धन लेना), साहस (जबरदस्ती पराया धन लेना), और स्त्रीसङ्ग्रहण (स्त्री का

परपुरुष के साथ सम्पर्क) ॥ ६ ॥

स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ॥ पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

स्त्रीपुंधर्म (स्त्रीपुरुष के परस्पर के नियम) विभाग (बापदादे आदि के धनका विभाग) द्यूत (जुआ), आह्वय (दांवलगाकर मुरगे मेंढे आदिका लड़ाना). यहां विवाद के निर्णय में यह अठारह विषय हैं ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥ धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

इन विवाद के १८ विषयों में विवाद करते हुए मनुष्यों के अनादि परम्परा के धर्म का अवलम्बन करके राजा कार्य का निर्णय करै ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥

जिस समय शान्तिक और पौष्टिक कर्म में लगकर अपने आप कार्य न देखसकै तो वेद-व्याकरणादि और धर्मशास्त्र के जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण को उस कार्य के देखनेपर नियुक्त करै ॥ ९ ॥

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ॥ सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

वह विद्वान् ब्राह्मण, राजाकी समान तीन ब्राह्मणों के साथ कार्य की बड़ाई छुटाई के अनुसार धर्माधिकार की सभामें बैठकर वा खड़ा होकर राजा के करने के कार्य को देखै ॥

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥

जहाँ तीनों वेदों के जाननेवाले कमसे कम तीन ब्राह्मण और राजा का प्रतिनिधि जिस स्थान पर विराजमान हों उस सभा को सभा कहते हैं ॥ ११ ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ॥ शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

विचार करने को बैठेहुए विद्वानों की समूहरूप जिस सभा में अधर्म से धर्म पीड़ितहो और वह विद्वान् सभासद् उस शूल समान अधर्म के धर्म से अलग नहीं करें तो उस सभामें के सब सभासद् अधर्म से विधते हैं ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ १३ ॥

पहिले तो सभा में जाय ही नहीं, यदि इच्छा करके जाय तो सत्यही कहै, मौन रहने से वा मिथ्या कहने से पाप लगता है ॥ १३ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥ हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

जहां सभासदों के देखतेहुए अर्थी प्रत्यर्थी अधर्मवश धर्म को नहीं देखते हैं, जहाँ साक्षी असत्यसे सत्यको नष्ट करते हैं तहां सभासद् पापसे लिप्त होते हैं ॥ १४ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १५ ॥

उल्लंघन कराहुआ धर्म ही नष्ट करदेता है और उल्लंघन न कियाहुआ धर्म ही रक्षा करता है तिससे धर्मका उल्लंघन न करै, अतएव प्राड्विवाक उत्पथगामी सभ्योंको उपदेश करता

है कि-तुम्हारे साथमें उल्लंघन करा हुआ धर्म मुझे नष्ट न करै अतः सावधानी से विचार का कार्य करो ॥ १५ ॥

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ॥ वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥

अभिलाषा पूर्ण करनेसे भगवान् धर्मको वृष कहते हैं, उस धर्मका जो अलं (निवारण) करता है उसको देवता वृषल कहते हैं इससे धर्मका लोप न करै॥ १६ ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ॥ शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥

एक धर्म ही सच्चा मित्र है जो मरण होने परभी साथ जाता है, और स्त्री-पुत्र-धनादि सब जीवित में ही साथी हैं परलोकका कोई नहीं है ॥ १७ ॥

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ॥ पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

अयथार्थ (कुछ का कुछ)विचार (फैसला) करनेवालेको पाप का एक चौथा भाग प्राप्त होता है, एक चौथाई पाप मिथ्या साक्षी देने वाले को,एक चौथाई सब सभ्यों(असेसरों)को और एक चौथाई पाप राजाको प्राप्त होता है॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ॥ एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥

जिस सभा में निन्दा का पात्र निन्दित होता है उस सभा में का राजा निष्पाप होता है, सब सभासद्भी पाप से मुक्त रहते हैं और पाप पाप करनेवाले को ही लगता है ॥ १९ ॥

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

राजा के विचार करने में असमर्थ होनेपर पहिले कहे गुणों से युक्त ब्राह्मण न मिले तो जातिमात्र का ब्राह्मण, वह भी न मिले अपने को ब्राह्मण कहनेवाला, वह भी न मिले तो क्षत्रिय वैश्य आदि को विचार के कार्यपर नियुक्त करै परन्तु शूद्रको कभी नियुक्त न करै ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्॥ तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥

जिस राजा के यहां शूद्र धर्मविचार करता है, उस राजाका वह राज्य उसके देखतेहुए अँहन में फँसीहुई गौ की समान दुःख पाता है २१

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रांतमद्विजम् ॥ विनंश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥

जिस राज्य में बहुत से शूद्रोंका बसोबास हो,जिसमें नास्तिकोंकी प्रबलता हो और जिस में ब्राह्मण न बसते हों वह सब राज्य शीघ्रही दुर्भिक्ष और व्याधियों से पीड़ित होकर नष्ट होजाता है ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥

विचारासन पर बैठकर, शरीर पर वस्त्रादि धारण कर सावधानीके साथ लोकपालों को प्रणाम करके कार्यों(मुकद्दमों) की देखभाल का आरम्भ करै ॥ २३ ॥

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ ॥ वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २४ ॥

प्रजाकी रक्षा परमधर्म होनेसे राजाका अर्थ

(प्रयोजन) है और विवाद निर्णयरूप कार्य को न देखकर प्रजाओंका उच्छेद करना अनर्थ है, यह वेदमें स्पष्ट है ऐसा समझकर तथा धर्म और अधर्म पर दृष्टि रखकर जैसे परस्पर विरुद्ध धर्माधर्ममें विरोध न आवै तैसे ब्राह्मणादि वर्णों के क्रमसे अर्थिप्रत्यर्थियों के कार्य देखै ॥ २४ ॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ २५ ॥

स्वर का गद्गदपना, मुख का रंग बदलजाना, नीचे को देखना, पसीना आजाना और रोमांच होना आदि बाहरी चिह्नों से अर्थिप्रत्यर्थी के हृदय का भाव निश्चय करै २५

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

आकार बदलना, चलतेहुए पैर कहीं के कहीं पड़ना और होठ बिसूरना आदि चेष्टा तथा पूर्वापर विरुद्ध वाक्य, इनसे मनुष्यों के मन[1] अर्थात् बुद्धिका निश्चय करै ॥ २६ ॥

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ॥ यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥ २७ ॥

माता-पिताहीन अनाथ बालकोंके धनकी राजा तबतक रक्षा करै कि-जबतक वह गुरुकुलसे विद्या पढ़कर न लौटे वा सोलह वर्षका न होय ॥ २७ ॥

वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥

१ बुद्धि और मन एकही पदार्थ है, अन्तःकरणकी संकल्प विकल्पात्मक वृत्तिको मन और अन्तःकरणकी निश्चयात्मिका वृत्तिको बुद्धि कहते हैं ।

बन्ध्या, जिसके पतिने दूसरी स्त्री करली हो और अशन बसन के योग्य धन देकर रक्षा से विरक्त हो, पुत्रहीन, जिसका पति परदेशको गया हो, जिनके कुलमें कोई न रहा हो और वह स्वयं पतिव्रता वा विधवा तथा रोगी हो इनके धनकी रक्षा राजा अनाथ बालक के धनकी समान करै ॥ २८ ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ॥ तांछिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥

यदि सपिण्ड पुरुष, हम ही इसके अनन्तर इस धनके स्वामी होंगे, हम ही इससमय इस धनकी रक्षा करेंगे ऐसा कहकर छल से उस धनको लेलें तो धर्मात्मा राजा उसको चोर की समान दण्ड देकर शिक्षा करै ॥ २९ ॥

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ॥ अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥ ३० ॥

जिस धन के स्वामी का पता न लगै उस धन को पाकर राजा सर्वत्र ढँढोरा पिटवाकर तीन वर्षतक उसके स्वामीकी बाट देखै, तीन वर्ष के भीतर उसका स्वामी आजाय तो साक्षी आदि लेकर उसको देदेय और तीन वर्ष बीत जायँ तो उस धनको राजा लेलेय ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ॥ संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥

तीनवर्षके भीतर उस धन का स्वामी आकर यदि कहै कि-यह धन मेरा है तो उससे राजा, कैसा है, कितना है और किस स्थानपर छोडा था ऐसा बूझै तब वह उसकी रूप संख्या आदि का प्रमाण देकर उस धन को पासक्ता है ॥ ३१ ॥

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ॥ वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

जो पुरुष नष्ट हुए धनका समय, वर्ण, आकार और परिमाण (नापतोल) न जानै तथा अपना धन बतावै तो राजा उसके ऊपर उतने ही धनका दण्ड (जुर्माना) करै ॥ ३२ ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ॥ दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥

देशकाल आदि ठीक बतादेय तो उस धन को उसका स्वामी पावे तो सही परन्तु उसकी रक्षा करने के कारण गुणवान् स्वामी से छठा भाग, मध्यम से दशवाँ भाग और गुणहीन से बारहवां भाग राजा लेले ॥ ३३ ॥

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ॥ यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

किसी के खोयेहुए धन को पाकर राजपुरुष राजा के पास पहुँचादे, राजा उसको योग्य पुरुषों के पास रखदेय, यदि उसको चुराने के निमित्त आयाहुआ कोई पुरुष पकड़ाजाय तो राजा उसको हाथी से कुचलवाकर मरवादेय ॥ ३४ ॥

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ॥ तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥

भूमि को खोदते में मिलेधन को कोई कहै कि यह मेरा है और वह उसको अपना सिद्ध कर सकै तो उसके स्वामी के गुणवान निर्गुणपने के अनुसार उस धनका छठा वा बारहवाँ भाग राजा आप लेलेय ॥ ३५ ॥

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ॥ तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम् ॥ ३६ ॥

यदि उस धनको कोई झूठ ही अपना कहै तो निर्गुण पुरुषके ऊपर उस धन का अष्टमांश दण्ड (जुरमाना) करै, गुणवान् को ऐसा दण्डदेय कि जिससे वह पुरुष परम दुःखित होय ॥ ३६ ॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥ अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥

यदि विद्वान् ब्राह्मण पहिले का रक्खाहुआ दूसरे का निधि पावै तो वह सब लेलेय राजा को उसमें से कुछ न देय, क्योंकि विद्वान् ब्राह्मण अपने पराये सबके धनों का भागी है ॥ ३७

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ॥ तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

राजा यदि ऐसा निधि पावैं कि जिसका कोई स्वामी न होतो उसमें आधा ब्राह्मणों को देय और आधा आप लेय ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ॥ अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥

सोने आदि की खानकी रक्षाकरने के कारण और भूमिका स्वामी होने के कारण राजा, विद्वान् ब्राह्मण के सिवाय अन्य पुरुष को प्राप्तहुए निधिमें से आधाभाग लेलेय ॥ ३९ ॥

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ॥ राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

प्रजाके जिस धनको चोर लेजाय, वह चोरसे लेकर जिसका होय राजा उसको देदेय,

यदि उसको न देकर आप लेलेय तो चोर के पाप से लिप्त होता है ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥

जाति और देशके धर्म तथा वैश्यादि के धर्म और कुलपरम्परा के वेदानुकूल धर्मको जानकर धर्मात्मा राजा उसके अनुसार धर्म की व्यवस्था करै ॥ ४१ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ॥ प्रियाभवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥

जो देश—जाति और कुलधर्मों के अनुसार बर्त्ताव करते हैं और नित्य नैमित्तिक शास्त्रीय कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वह दूरस्थित होकर भी पृथ्वी के सकलपुरुषों के प्रीतिपात्र होते हैं ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथञ्चन ॥ ४३ ॥

राजा वा राजा का नियत कराहुआ विचारपति (हाकिम) लोभ के वश में होकर, जो विवाद करना न चाहते हों उनके ऋणादि का विवाद न उठावै और अर्थी प्रत्यर्थी के निवेदन करेहुए विषय में लोभवश उपेक्षा भी न करै ॥ ४३ ॥

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

जैसे व्याधा, बाण से विधकर भागेहुए मृग के स्थान को रुधिर के चिह्नों से जानलेता है तैसे राजा अनुमान करके अथवा साक्षी के दिखायेहुए प्रमाणों से यथार्थ तत्त्व का निश्चय करलेय ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥ देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥

विचार करने के कार्य में प्रवृत्त हुआ राजा छल को छोडकर यथार्थ विषयको देखै और जो विचारके योग्य होय उसका ही विचार करै, यदि कोई कहै कि—अमुक ने कटाक्ष करके मेरा हास्य करा है ऐसी साधारण बातों का विचार न करै, यदि यथार्थविचार करूँगा तो उससे परलोक में मुझै स्वर्ग मिलैगा नहीं तो नरक में पडूँगा, ऐसा अपने को देखै और साक्षी सच्चा है वा झूठा है तथा देश, काल और व्यवहार की दशा यह सब देखै॥४५॥

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

जिस कार्य को विद्वान् और धार्मिक द्विजाति करें वह शास्त्र में मानागया है, वह यदि देश, कुल, जाति के विरुद्ध न होय तो उससे राजा विचार के कार्य का समाधान करै ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥ दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥

उत्तमर्ण (धन देनेवाले) ने अधमर्ण (धनलेनेवाले) को जो धन कर्ज दिया हो, उसको न पाकर यदि वह राजा से आवेदन(फरयाद) करै तो साक्षी लेख आदि से उस दियेहुए धन का निश्चय करके अधमर्ण से वह धन उत्तमर्ण को दिलवादेय ॥ ४७ ॥

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ॥ तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

उत्तमर्ण जो २ उपाय करके अधमर्ण से अपना धन पा सकै राजा उस २ उपाय के अवलम्बन से अधमर्णको वशमें करके वह धन अधमर्ण से उत्तमर्णको दिलवावे ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥४९॥

प्रथम तो धर्म से अर्थात् राजा के भेजेहुए अधमर्ण के मित्र सम्बन्धी आदि के उपदेशसे ऐसे न होसकै तो व्यवहार से अर्थात् साक्षी-लेख-शपथ आदि से निश्चय करके वा छल से अर्थात् यदि उत्तमर्ण से बलवान् अधमर्ण कर्ज़ लेना स्वीकार न करै तो राजा अपने किसी पुरुष वा अन्य के द्वारा अधमर्ण से कोई वस्तु मँगनई मँगाकर उत्तमर्ण को देदेय, वा आचरित से अर्थात् ऋणीके घर जाकर उसके स्त्री पुत्रादि को कष्ट देकर वा उसके आने जानेका द्वार बन्द करके अथवा पांचवें उपाय बलसे अर्थात् ऋणीको रस्सीसे बांधकर अपने यहां ला ताड़ना आदि करके अधमर्ण से उत्तमर्ण को धन दिलवावे ॥ ४९ ॥

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् । न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

यदि ऋणी के स्वीकार करेहुए धनको न देनेपर धनी बलात्कार आदि उपाय से अधमर्ण से अपना धन प्राप्त करै तो राजा उस के ऊपर अभियोग न चलावै ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् । दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥

साक्षी आदि से प्रमाणित करेहुए भी कर्ज को यदि ऋणी स्वीकार न करै तो ऋणी से धनी का धन दिलवादेय और ऋणी की शक्ति के अनुसार अस्वीकार (इनकार) करने का दण्ड भी लेय ॥ ५१ ॥

अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि । अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

धनी का जो धन लिया है वह दे इसप्रकार सभा (कचहरी) में राजा वा प्राड्विवाक (हाकिम) के कहने परभी, मैं इस का कुछ नहीं धराता हूँ इसप्रकार प्रत्यर्थी (मुद्दाअले) के निषेध करने पर धनी धन लेने के स्थान पर रहनेवालेकी साक्षी देय अथवा लेख आदि का प्रमाण देय ॥ ५२ ॥

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः ॥ यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५३ ॥ अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ॥ सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥ ५४ ॥ असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ॥ निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ॥ न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥ ५६ ॥

जहां ऋण लेनेके समय अधमर्ण(कर्ज़दार) का होना सम्भव न हो और उत्तमर्ण (धनी) अधमर्ण के ऋण लेने का देशकाल, पहिले आवेदन के समय कहकर फिर उसको स्वीकार न करै और पूर्वापर विरुद्ध बोले तथा पहिले कहे कि–मुझ से लिया है फिर कहे कि मेरे पुत्र से लिया है, विचार करके यह बूझने पर कि-तूने रात्रि में और बिना साक्षी किये अधमर्ण को कर्ज़ क्यों दिया इसका कुछ समाधान न करै और यदि निर्जन आदि स्थानपर साक्षियों के साथ परस्पर बातचीत होय अथवा मुक़द्दमेको स्थिर करने को विचारकरके

कहेहुए प्रश्न को न सुनै या विचार के स्थान से भागजाय और इस स्थान पर श्रेष्ठ पुरुष का स्थित होना उचित नहीं है क्योंकि–इस सभा में ऐसा अनुचित विचार है इस प्रकार कहकर दूसरे स्थान को चलाजाय हमारा क्या कार्य है कहो ऐसा विचार करके बूझने पर कुछ न बोले और अपनी स्वीकार करीहुई बात को सिद्ध न करसकै वा असिद्ध बातको सिद्ध करना चाहै और पूर्वापर को न जानता होय वह, उस अभियुक्त विषय से हीन होता है अर्थात् उसका अभियोग(दावा)अग्राह्य(नामंजूर) करै ॥ ५३-५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः। धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥

मेरे साक्षी हैं ऐसा कहकर जो आज्ञा देने पर साक्षी न देय तो विचारकर्त्ता उसको भी पूर्वोक्त कारणोंसे पराजित करदेय (हरादेय)॥

अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्बध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः। न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥ ५८ ॥

जो अर्थी (फरियादी) पहिले विचारालय (कचहरी) में आवेदन करके प्रमाण के समय कुछ न कहै तो अभियोग की बड़ाई छुटाई के अनुसार दण्ड देय और यदि तीन पक्ष के भीतर कुछ न कहै तो उसको धर्म से पराजित करदेय ॥ ५८ ॥

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत्। तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥ ५९ ॥

जो ऋणी धनी के जितने धन को सत्य होने परभी स्वीकार न करै और अर्थी जितने धन का झूठा अभियोग चलावै विचारकर्त्ता इन दोनों अधर्मियों को उससे दूना दण्डदेय॥५९॥

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा। त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

राजपुरुष के अधमर्ण को लानेके अनन्तर विचारकर्त्ता के पूछनेपर भी वह अधमर्ण मुझ पर नहीं चाहिये ऐसा कहकर स्वीकार न करै तो धन चाहनेवाला उत्तमर्ण कमसे कम तीन साक्षियों के द्वारा अपने धन को प्रमाणितकरै॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः। तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥

ऋण देने आदि व्यवहार में धनवानों को जैसे साक्षी करने चाहिये उनको तथा उन साक्षियों को जिसप्रकार सत्य कहना चाहिये सो कहूँगा ॥ ६१ ॥

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः। अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

गृहस्थ, पुत्रवान् तिस ही देश के रहनेवाले क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र जाति के पुरुष धनी के बतलाने पर साक्षी के योग्य होते हैं चाहे जो कोई नहीं, परन्तु आपत्तिकाल (फौजदारी के मुकद्दमे) में और भी साक्षी होसक्ते हैं॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः। सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥

पहिले श्लोक में ब्राह्मण का साक्षी होना नहीं पाया गया,इसलिये कहते हैं कि सब वर्णों में जो पुरुष सत्यवादी, सकलधर्मों के जाननेवाले और लोभरहित हों उनको साक्षी करै और जो इन लक्षणों से रहित हों उनको त्यागदेय॥

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया

न वैरिणः ॥ न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥

ऋणी आदि धन के सम्बन्धियों को साक्षी न करै, मित्रोंको न करै, सहायकोंको न करै, वैरियों को न करै, जिनको पातक करते देखाहो उनको न करै और रोग से पीड़ितों को भी साक्षी न करै ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ॥ न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥

राजा को साक्षी न करै, रसोइये और नट को साक्षी न करै, श्रोत्रिय को न करै, ब्रह्मचारी को न करै और संन्यासी को भीसाक्षी न करै ॥ ६५ ॥

नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥ न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

अत्यंत पराधीनको न करै, लोक निंदितको न करै, न निष्ठुरको,न निषिद्ध कर्म करनेवाले को, न वृद्धको,न बालक को,न एक पुरुषको,न चण्डालको और न अन्धे लूले आदि अङ्गहीन को साक्षी करै ॥ ६६ ॥

नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥ न श्रमार्त्तो न कामार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥ ६७ ॥

दुःखित, मत्त, उन्मत्त, भूँख प्यास से घबड़ाया हुआ, मार्ग चलने से थका हुआ, कामी, क्रोधी, और चोर, इनको भी साक्षी न करै ॥ ६७ ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ॥ शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ६८ ॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियों को करै, ब्राह्मणों के साक्षी उनकी समान दूसरे ब्राह्मणों को, क्षत्रियों के साक्षी उनकी समान क्षत्रिय को, वैश्यों की साक्षी उनकी समान वैश्यों को, शूद्रोंकी साक्षी सज्जन शूद्रोंको और चण्डाल आदिके साक्षी चण्डाल आदि नीच योनियों को करै ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ॥ अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥

घर के भीतर अथवा जंगल आदि में चोर आदि का उपद्रव होनेपर और आततायी के प्राणहत्या करनेपर, चाहे जो कोई अनुभवी पुरुष विवादियों की साक्षी करसक्ता है इस में पूर्वोक्त लक्षणवाले साक्षीकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६९ ॥

स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ॥ शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥ ७० ॥

क्रोध के व्यवहार (फौजदारी मुकद्दमे) के विषय में घर के भीतर वा निर्जनआदि स्थान में रहनेवाले उपद्रव का अनुभवी (साक्षात् देखनेवाला) साक्षी न मिले तो स्त्री, बालक, वृद्ध, शिष्य, बन्धु, दास वा भृत्य (नौकर) को भी साक्षी करलेय ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ॥ जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥

यद्यपि स्त्री, बालक, वृद्ध, आतुर, मत्त और उन्मत्त आदि की साक्षीमें मिथ्यात्व होनेकी सम्भावना है तथापि अनुमान से साक्षी (गवाही) में के यथार्थ तत्त्वका निश्चय करलेय ॥

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च॥

वाग्दण्डयोश्च पौरुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

विषादसे प्राणी हिंसादिरूप सकल, साहस, चोरी, किसी की स्त्री लेलेना, गालीगलौच और मारपीट में पूर्वोक्त गृहस्थ पुत्रवान्आदि साक्षियों की परीक्षा न करै ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥

अर्थी प्रत्यर्थी के मानेहुए साक्षियों में से यदि कोई अर्थी की बात को ठीक कहै और कोई उसके विपरीत कहै तो राजा वा विचार कर्त्ता, बहुत से पुरुषों की साक्षी से उस विवाद का निपटारा करै, अर्थी के अनुकूल और प्रतिकूल कहनेवाले दोनों समान हों तो जो गुणवान् हों उनके कथनपर निर्णय करै और जहां गुणीजन भी दोनों प्रकारकी बातैं कहैं तहाँ जो क्रियावान् हों उनके कथनानुसार निर्णय करै ॥ ७३ ॥

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति ॥ तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

जो बात नेत्रों से देखनेयोग्य हो उसको साक्षात् देखनेवालेकी ही साक्षी ठीक होती है, सुनने योग्य बात को सुननेवाले की साक्षी उचित होती है, सत्य साक्षी देने से धर्म और अर्थ की हानि नहीं होती है ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ॥ अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥

यदि साक्षी ने कुछ देखा वा सुनाहो और वह विचारालय में उससे प्रतिकूल कहै तो उसको अन्यकर्मों से होनेवाले स्वर्गफल का रोकनेवाला पाप लगता है और वह उस नरक में पहुँचता है जहाँ नीचेको शिर रहता है ॥ ७५ ॥

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन ॥ पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

अर्थीप्रत्यर्थी के साक्षी देने को न कहनेपर भी ऋणदेने आदि के विषय में कुछ देखा वा सुना होय तो विचारकर्त्ता के बूझनेपर उस विषय को जैसा देखा वा सुना होय सो कहदेय ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ ७७ ॥

लोभहीन एकपुरुषभी साक्षी होसक्ता है, अनेकों स्त्रियें शुचि होनेपरभी अस्थिर बुद्धि होने से साक्षी नहीं होसक्तीं, और किसी समय चोरी आदि के अपराधी हुए पुरुषहों वा स्त्री हों वह भी साक्षी नहीं होसक्ते ॥ ७७ ॥

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

साक्षी भयादि के बिना स्वभाव सेही जो कुछ कहैं राजा उसकोही मानै. किसीकारण से यदि कुछ का कुछ कहै तो उसको धर्मविषय में ग्रहण न करै ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥

विचारालयमें आये हुए साक्षियोंसे वादिप्रतिवादियोंके सामने विचारपति अतिशान्ति भरे वाक्योंके द्वारा अगले श्लोकमें कहे अनुसार प्रश्न करै ॥ ७९ ॥

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः ॥ तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥

तुम इन दोनों के इस कार्य में परस्परका जो चेष्टित जानते हो वह सब सत्यरूप से कहो, क्योंकि-इस विषय में तुम्हें साक्षी माना गया है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ॥ इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ८१ ॥

जो साक्षी सच्ची साक्ष्य (गवाही) देता है वह परलोकमें बहुत उत्तम लोकों को पाता है और इस लोकमें सत्यवादी होनेकी उत्तमकीर्ति पाता है, क्योंकि-यह सत्यस्वरूप वाणी ब्रह्माजी की सत्कार करीहुई है ॥ ८१ ॥

साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ॥ विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्य वदेदृतम् ॥ ८२ ॥

जो साक्षी देते हुए मिथ्या बोलता है वह वरुणपाश (सर्परूपरज्जु) से बँधकर अवश (जबरदस्ती) सौ जन्म पर्यन्त जल में पीडा पाता है, इसकारण साक्षीमें जो कुछ कहना हो सो सत्य कहै ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥ तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥

सत्य कहने से साक्षी पवित्र होता है, सत्य से धर्म बढ़ता है, इसकारण सब वर्णों में साक्षियों को सत्य कहना चाहिये ॥ ८३ ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ॥ मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

मनुष्यों के देह में स्थित आत्मा ही शुभाशुभ कर्मों का साक्षी है, वही मनुष्य का रक्षक है, अतएव मिथ्या बोलकर ऐसे उत्तम साक्षी का तिरस्कार न करै ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥

पाप करनेवाले साधारण मनुष्य ऐसा समझते हैं कि-हम छुपकर जो अधर्म करते हैं उसको कोई नहीं देखता है परन्तु यह समझना ठीक नहीं है, क्योंकि-उन के कर्मों को तो अगले श्लोक में कहेहुए देवता और अपने शरीर में विद्यमान अन्तर्यामी पुरुष परमात्मा देखता है ॥ ८५ ॥

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ॥ रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

स्वर्ग, भूमि, जल, हृदय में स्थित अन्तरात्मा चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों संध्या और धर्म यह सब मनुष्यों के शुभाशुभ कर्म जानते हैं और यह प्राणियों के सकलचरित्र जानते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥ उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥ ८७ ॥

देवमूर्त्ति वा ब्राह्मणादि के समीप में पूर्वमुख वा उत्तरमुख स्नान आदि करके पवित्र हुए साक्षियों से यत्न के साथ विचारपति पूर्वाह्ण समय में प्रश्न करै ॥ ८७ ॥

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ८८ ॥

यदि ब्राह्मण साक्षी होय तो उस से 'आप कहिये' इतना ही कहै, क्षत्रिय से 'सत्य २

कहिये ऐसा शब्द कहकर बूझै, गौ-अन्न और सुवर्ण की चोरी में जो पाप होता है वही पाप यदि मिथ्या कहोगे तो तुम्हें लगेगा सुवर्ण के व्यापारी आदि वैश्यों से ऐसा कहकर प्रश्न करै और यदि मिथ्या कहेगा तो, आगे कहेहुए पापों से लिप्त होगा ऐसा कहकर शूद्रजाति के साक्षियों से प्रश्न करै ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः ॥ मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥ ८९ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाले को और स्त्री बालकों की हत्या करनेवालों को तथा मित्रद्रोही और कृतघ्नियों को जो लोक कहे हैं वही२लोक साक्षी देते में मिथ्या बोलनेवाले को प्राप्तहोते हैं॥८९॥

जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् ॥ तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥ ९० ॥

हे भद्र ! तू ने जन्म से लेकर अबतक जो कुछ पुण्य किया है वह तेरा सब पुण्य, यदि तू मिथ्या बोलेगा तो कुत्ते को प्राप्त होगा९०॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ॥ नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ ९१ ॥

हे भद्र ! तू अपनेको यह जो मानता है कि मैं इकला ही हूँ, सो ठीक नहीं है, क्योंकि-पापपुण्यों को देखनेवाले, सर्वज्ञ परमात्मा तेरे हृदयमें नित्य विराजमान रहते हैं ॥ ९१ ॥

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ॥ तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः ॥ ९२ ॥

सब लोकोंका शासन करनेवाले यमरूपसे वर्णित और लीलाकैवल्य के कारण देवशब्द से कहे हुए जो परमात्मा तुम्हारे हृदयमें स्थित हैं सत्य कहने में यदि उनके साथ तुम्हारा विवाद नहीं होयगा तो तुम निष्पाप होजाओगे और पापोंको धोनेके लिये गङ्गा वा कुरुक्षेत्र पर जानेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥

जो पुरुष झूठी साक्षी देता है वह जन्मान्तर में इस दोषसे वस्त्रहीन, भूँख प्यास से कातर और अन्धा होकर हाथ में एक खिपड़ा लिये हुए शिर मुँड़ाये शत्रुके घर भीख मांगनेको जाता है ॥ ९३ ॥

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥ ९४ ॥

विवादका ठीक २ निर्णय करने के लिये, जो पुरुष साक्षीरूपसे पूँछा जाकर मिथ्या बोलता है वह पापी होकर नरक में जाता है और तहां गाढ़ अन्धकारमें नीचेको शिर करके लटकाया जाता है ॥ ९४ ॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ॥ यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥

जो पुरुष, व्यवहार में तत्त्वनिश्चय के लिये सभा में बुलायाजाने पर उत्कोच (रिशवत) आदि के लोभ में पड़कर विनादेखीहुई बात की झूठी साक्षी देता है वह अन्धे की समान कण्टकसहित मत्स्य खाता है अर्थात् सुखबुद्धि से प्रवृत्त होकर दुःख ही पाता है ॥ ९५ ॥

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥

जिसका हृदय में स्थित अन्तर्यामी पुरुष,

यह पुरुष सत्य या मिथ्या कहेगा, जिसके ऊपर ऐसी शङ्का न करके, सत्य कहेगा, ऐसा कहता है, देवता उससे अन्य और किसी पुरुष को श्रेष्ठ नहीं जानते हैं ॥ ९६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥९७॥

जिसर विषय में झूठी साक्षी देकर जितने पुरुषों को नष्टकरता है, गिनती में उतने पुरुष कहते हैं कि-हे सौम्य ! सुन ॥ ९७ ॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥

जो पशु के विषय में झूठी साक्षी देता है, उससे पिता आदि पाँच पुरुष नरकगामी होते हैं अथवा पाँच बन्धुओं की हत्या करने का पाप लगता है, पशुओं में गौ के विषय में मिथ्या साक्षी देय तो दश पुरुषको पातकी करता है,घोड़े के विषयमें मिथ्या साक्षी देय तो एक सौ पुरुष को और पुरुष के विषयमें मिथ्या साक्षी देय तो वह पुरुष सहस्र पुरुषों को नारकी करता है वा उतने पुरुषोंको हत्या का पापी करता है ॥ ९८ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ९९ ॥

सुवर्ण के विषय में मिथ्या साक्षी देता हुआ पुरुष, जात (पिताआदि) और अजात (पुत्र आदि) पुरुषों को नष्ट करता है और पृथ्वी के विषय में झूठी साक्षी देनेवाला सकलप्राणियों की हिंसा के दोष से लिप्त करता है, इसकारण भूमि के विषय में कभी मिथ्या न बोले ॥ ९९ ॥

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ॥ अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥

बावड़ी आदि के जल के विषय में स्त्रीसमागमरूप उपभोगके विषयमें और मोती पाषाण आदि के विषय में तथा वैदूर्य आदि मणियों के विषयमें और भूमिके विषयमें मिथ्या और बोलनेवालेको जो दोष कहा है वही होता है ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ॥ यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १०१ ॥

अतएव इन सब दोषोंको देखकर तुम कभी मिथ्या न बोलो, जो देखा है और जो सुना है वही शीघ्र कहो ॥ १०१ ॥

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ॥ प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ १०२ ॥

वेतन (मजदूरी) लेकर दूसरेकी गौ चरावै, व्यवहार से जीविका करनेवाला और भोजन पकाकर जीविका करनेवाला, नाचने और गाने से जीविका करनेवाला तथा अन्नादि के लाभ (नफे) से जीविका करनेवाला ऐसे ब्राह्मण से शूद्र की समान प्रश्न करे ॥ १०२ ॥

तद्वदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ॥ न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥ १०३ ॥

यदि किसी अवसर पर साक्षी जानकर भी दयावश और का और कहदेय उससे उसका अधःपात नहीं होता है, क्योंकि-ऐसे वचन को दैवी वाणी कहते हैं ॥ १०३ ॥

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः ॥ तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ १०४ ॥

जिस विषयमें असत्य कहा जासक्ता है सो कहते हैं–यदि कोई शूद्र वा वैश्य, क्षत्रिय वा ब्राह्मण, प्रमादसे दण्डके योग्य कोई कुकर्म करै तो सच्ची साक्षी देनेसे अपराधीको प्राणान्त दण्ड होता है, तहां दया करके मिथ्या साक्षी दीजासक्ती है, ऐसे विषयमें मिथ्या साक्षी को भी सत्यसे श्रेष्ठ कहा है चोर वा लुटेरेकी रक्षा के लिये कभी मिथ्या साक्षी न देय ॥ १०४ ॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ॥ अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ १०५ ॥

मिथ्यावादी साक्षी, मिथ्या बोलने के पाप से छूटनेके लिये चरुपाक करके सरस्वती देवता का याग करै, यद्यपि ऐसी शास्त्रीय मिथ्यासाक्षीमें पाप नहीं है तथापि सामान्यरूप से मिथ्या बोलागया है उस पापका यह प्रायश्चित्त है ऐसा जानै ॥ १०५ ॥

कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्यर्चेनाब्दैवतेन वा ॥ १०६ ॥

अथवा उस पापको दूर करने के लिये यजुर्वेद के कूष्माण्डमन्त्रों से अग्नि को स्थापन कर उसमें घृत से हवन करै, वा उदित्तम इत्यादि वरुण देवता के मंत्रों से वा आपोहिष्ठेत्यादि तीन ऋचाओं से अग्नि में घृतका हवन करै ॥ १०६ ॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ॥ तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥ १०७ ॥

नीरोग साक्षी यदि तीन पक्ष के भीतर ऋणादि व्यवहार में साक्षी न दे तो वह ऋण उसको देना होगा और जितने ऋणका दावाहो उस का दशमभाग राजा को दण्डदेय॥१०७॥

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ॥ रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ १०८ ॥

साक्षी देनेपर यदि सातदिन के भीतर उसको उत्कटरोग हो, घर में आगलगे, पुत्रादि समीप के बान्धव का मरणहोय तो उस साक्षी से ऋण और शक्ति के अनुसार दण्ड लेय॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥ १०९ ॥

और जिस व्यवहार का साक्षी न होय उस में वादी प्रतिवादी का यथार्थनिर्णय करने के लिये आगे कहीहुई शपथ के द्वारा सत्य का निर्णय करै ॥ १०९ ॥

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैयवने नृपे ॥ ११० ॥

महर्षि और देवताओं ने, सन्दिग्ध कार्यका निर्णय करने के निमित्त शपथ करी थी, विश्वामित्रजी के शाप देनेपर वसिष्ठऋषिने, अपनी शुद्धि के निमित्त पियवन के पुत्र राजा सुदामा के समीप शपथ करीथी ॥ ११० ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ॥ वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति॥ १११ ॥

बुद्धिमान् पुरुष, छोटे से कार्य में (थोड़ासा दण्ड आदि होनासम्भव होय तो) वृथा शपथ न करै, क्योंकि वृथा शपथ करनेवाला इस लोक में अपयश और परलोक में नरकगति पाता है ॥ १११ ॥

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे

नास्ति पातकम् ॥ ११२ ॥

तू मेरी परमप्रिया है; मैं दूसरीकी प्रार्थना नहीं करता हूँ ऐसे मैथुनसुख पानेको स्त्रियों में मिथ्या शपथ करनेपर, मैं दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करूँगा ऐसे विवाह विषयमें, गौ के निमित्त घास आदि लाने में और होमके लिये काठ आदि लाने में मिथ्या शपथ का कुछ पातक नहीं लगता है ॥ ११२ ॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः॥

सत्य बोल, ऐसा कहकर ब्राह्मणसे, तेरे वाहन और आयुध निष्फल होजायँगे ऐसा कहकर क्षत्रिय से, तेरे गौ अन्न और सुवर्णादि धन निष्फल होंगे ऐसा कहकर वैश्यसे तथा तुझै सकल पातक लगैंगे ऐसा कहकर शूद्रसे शपथ करावै ॥ ११३ ॥

अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत्। पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत् पृथक् ॥ ११४ ॥

अथवा शूद्रको अग्निपरीक्षा वा जलपरीक्षा या स्त्री पुत्रादि के पृथक् शिर स्पर्श कराकर परीक्षा करै ॥ ११४ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥ ११५ ॥

जिसको प्रज्वलित अग्नि न जलावै, जिस को जल न डुबावै और जो स्त्री पुत्रादि के शिरको स्पर्श करने में पीड़ित न होय उस पुरुषको शपथ के विषय में शुद्धजानै ११५

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ॥ नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतःस्पृशः ॥ ११६ ॥

पहिले-तू ब्राह्मण नहीं शूद्रका पुत्र है ऐसे छोटे सौतेले भ्राता से शापको प्राप्तहुए वत्स ऋषिने अपनी शुद्धि के लिये अग्निपरीक्षा करी, सकल जगत् के शुभाशुभ कर्मोंके दूत-रूप अग्निने सत्य के बलसे उसका एक रोम भी नहीं जलाया ॥ ११६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ॥ तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥ ११७ ॥

जिस २ विवाद में मिथ्यासाक्षी का निश्चय होजाय, वह विवाद यदि समाप्त न हुआ होय तो नये प्रकार से उसको लौटै और यदि दण्डपर्यन्त होचुका होतो उसकी भली प्रकार परीक्षा करै, क्योंकि-ऐसा व्यवहार होजाने पर भी न हुआसा होता है ॥ ११७ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च ॥ अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ ११८ ॥

लोभ, मोह, भय, स्नेह, काम, क्रोध, अज्ञान और बालभाव इन सबके कारण से जो साक्षी दीजाय उसको मिथ्या साक्षी कहते हैं ११८

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥

इनमें से चाहे जिस कारण से जो झूठी साक्षी कहे उसके दण्ड विशेष क्रम से कहूँगा ११९

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ॥ भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥

लोभ से साक्षी बननेवाले को सहस्र पण, मोह से मिथ्या कहनेपर प्रथम साहस (२५० पण) भय से मिथ्या कहनेपर दो मध्यम साहस (सहस्र पण) और स्नेह वश मिथ्या कहनेपर प्रथम साहस का चौगुणा दण्ड करै ॥ १२० ॥

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।

अज्ञानाद्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥ १२१ ॥

कामवश मिथ्या कहै तो पूर्वसाहस दशगुणा (ढाईसहस्रपण), क्रोध के कारण मिथ्या कहनेपर त्रिगुण परसाहस (तीन सहस्र पण) अनजान में मिथ्या साक्षी देय तौ दो सौपण और अनवधानता से मिथ्या साक्षी क्षी देय तौ एक सौ पण दण्ड करै ॥ १२१॥

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः।धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ १२२ ॥

सत्यधर्म के पालन के लिये और असत्यरूप अधर्म के नाश के लिये एकबार झूठी साक्षी देने में पुरातन मुनियों के कहेहुए इन दण्डों को मनु आदिकों ने कहा है ॥ १२२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः॥प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ १२३ ॥

धार्मिक राजा वार २ झूठी साक्षी देनेवाले क्षत्रियादि तीन वर्णों को पूर्वोक्त दण्ड देकर देश से निकाल देय और ब्राह्मण को केवल धनसहित देश से निकाल देय १२३

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायंभुवो ऽब्रवीत् । त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ १२४ ॥

महा अपराध में शारीरिक दण्ड करने के दश स्थान मन्वादिकोंने कहे हैं, उनको क्षत्रियादि तीन वर्णों के ऊपर जानै, ब्राह्मणके ऊपर कोई शारीरिक दण्ड न करै ॥ १२४॥

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्॥चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ १२५ ॥

मूत्रेन्द्रिय, पेट, जीभ, हाथ, चरण, पाँचवाँनेत्र नासिका, कान, धन और देह यह दश दण्ड के स्थान हैं, जिस२ अङ्ग से महापराध करै उस२ अङ्ग को ही दण्ड देय ॥ १२५ ॥

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ॥ सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥ १२६ ॥

जानकर अपराध करना, नगर वन आदि देश, रात्रि आदि काल, और अपराधी की सामर्थ्य आदि का विचार करके दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देय ॥ १२६ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ॥ अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १२७ ॥

यह सब न विचारकर अपनी इच्छानुसार अधर्म से दण्ड देना इस लोक में यश और कीर्ति का नाश करनेवाला है तथा परलोकमें स्वर्गगति का रोकनेवाला है अतः उसको त्याग देय ॥ १२७ ॥

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ॥ अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ १२८ ॥

दण्ड के अयोग्यों को दण्ड देनेवाला और दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देनेवाला राजा इस लोक में बड़ा अपयश पाता है और परलोक में उसको नरककी प्राप्ति होती है१२८॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ॥ तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥ १२९ ॥

यदि पुरुष गुणवान् और एकबार का अपराधी होय तो उसको 'तुमने अच्छा नहीं करा अब ऐसा न करना' ऐसे ललकारकर वाग्दण्ड देय; इससे भी यदि न माने तो 'तुम बडे क्षुद्रहो, तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक

नहीं है, मरजाना ही अच्छा है ' ऐसे धिक्कार का दण्ड देय; इसपर भी न माने तो पूर्वोक्त धन का दण्ड देय और उससे भी न मानेतो अपराध की छुटाई बड़ाईकी ओर ध्यान देकर ताडना, बध और किसी अङ्ग का कटवादेना इत्यादि शारीरिक दण्ड देय ॥ १२९ ॥

वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ॥ तदेषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

वध दण्डके द्वारा यदि यह दुष्ट पुरुष न मानें तो वाग्दण्डादि सब से इनको दण्डित करै ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १३१ ॥

लोकोंके व्यवहार के निमित्त ताम्बे चाँदी सोने आदि की जो संज्ञा पृथ्वीपर प्रसिद्ध हैं उन सबको आगे कहता हूँ ॥ १३१ ॥

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

झरोखे में से सूर्य की किरणों के पडने पर जो धूलि के कण उडतेहुए दीखते हैं उन में जो कण अति सूक्ष्म दीखता है वह परिमाणों में प्रथम है, उसको त्रसरेणु कहते हैं ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ॥ ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३ ॥

उस त्रसरेणु के आठगुणे को एक लिक्षा कहते हैं, उसके त्रिगुण को एक राजसर्षप कहते हैं और राजसर्षप के चौगुने को गौरसर्षप कहते हैं ॥ १३३ ॥

सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १३४ ॥

छः सर्षपका एक मध्यम यव होता है तीन यव का एक कृष्णल होता है, पांच कृष्णल का एक माशा होता है उसके सोलहगुणे को एक सुवर्ण कहते हैं ॥ १३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ॥ द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥

चार सुवर्ण का एक पल, दश पलका एक धरण, और दो कृष्णल का एक चांदी का माशा होता है ॥ १३५ ॥

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ॥ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥

सोलह चांदी के माशों का एक धरण होता है उसीको रजत पुराण भी कहते हैं, शास्त्रीय पल के चौथे भाग को ताम्रमय कार्षिक पण और कार्षापण कहते हैं ॥ १३६ ॥

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः

- दश धरण का रजतमय शतमान होता है, और चारसुवर्ण का प्रमाण में एक निष्क जानना॥

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ॥ मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥ १३८ ॥

पणों के अर्ध सहित दोसौ अर्थात् ढाई सौ पण का प्रथम साहस कहा है, पाँचसौ पण का मध्यम साहस और सहस्र पण का उत्तम साहस होता है ॥ १३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति । अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ १३९

विचारालय में आते हुए ऋण के देने की प्रतिज्ञा करके न देय तो राजा उस ऋणी के ऊपर सैंकडे पर पांच पण के प्रमाण से दण्ड

करै, और यदि बिचारालय में जाकर लिए हुए ऋणको नाटजाय तो सैंकडे पर दश पण दण्ड करै ॥ १३९ ॥

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ॥ अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

धन की वृद्धि (व्याजबट्ट) से जीविका करनेवाला उत्तमर्ण, बन्धक (आभूषण आदि) रहित ऋणके व्यवहार में बसिष्ठजी की कही हुई धर्मानुकूल वृद्धि अर्थात् सैंकडेपर अस्सीवाँ भाग (व्याज) लेय ॥ १४० ॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥ १४१ ॥

अथवा सौ पण पर प्रतिमास दोपण वृद्धि (व्याज) लेय तौ साधुधर्म का प्रतिपाल होता है, और ऐसा व्याज लेनेवाला पाप का भागी नहीं होता है अधमर्ण की शक्ती के अनुसार यह विकल्प जानै ॥ १४१ ॥

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १४२ ॥

बन्धक विना ऋण लेनेवाले ब्राह्मण अधमर्ण से सैंकडे पर दोपण, क्षत्रिय से तीन पण, वैश्य से चार पण और शूद्र से पाँच पण लेय ॥ १४२ ॥

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥ न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥ १४३ ॥

भूमि, गौ, दास, दासी आदि भोगार्थ उत्तमर्ण के पास बन्धक (गिरवीं) रखकर ऋण लेने पर अधमर्ण से उत्तमर्ण पूर्वोक्त वृद्धि (व्याज) न पावै, और इन सब वस्तुओं के भोग से उचित व्याज न मिले तो कुछर करके व्याज बढजाने से धनकी अपेक्षा दुगुना व्याज होजाने पर भी अधमर्ण का भूमि आदि बन्धक नष्ट नहीं होगा, व्याज देने से वस्तु पा सकेगा ॥ १४३ ॥

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥ मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥ १४४ ॥

आभूषण वस्त्र आदि भोग्य वस्तु, जिसको भोगने का दूसरे को निषेध है, ऐसी गिरवीं रक्खीहुई वस्तु को यदि उत्तमर्ण बलात्कारसे भोगै तो ऋणका व्याज छोड देना होगा और पहिले जितना मूल्य था उतनाही मूल्य अधमर्ण को देना होगा, नहीं देगा तो आधिस्तेन अर्थात् चोरकी समान दण्डनीय होगा ॥ १४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ॥ अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ १४५ ॥

गिरवीं रक्खाहुआ पदार्थ और मँगनई दीहुई वस्तुको उसका स्वामी जिस समय चाहेगा उसी समय देना होगा, समय बिताना उचित नहीं है ॥ १४५ ॥

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ॥ धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥

यदि प्रीति से दूसरे की गौ, ऊँट वा साधने को दियेहुए बैलको अथवा और चाहें जिस वस्तुको भोगै तो इनमेंसे स्वामी का स्वत्व दूर नहीं होता है ॥ १४६ ॥

यत्किञ्चिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ॥ भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥ १४७ ॥

प्रीति आदि के बिना दूसरे की धन आदि

सम्पत्तिको उसके स्वामी के सामने सम्बन्धीसे अन्य पुरुष बराबर दशवर्ष पर्यन्त भोगै और स्वामी निषेध न करै तो उस बस्तुपर स्वामी का स्वत्व नष्ट होकर भोगनेवाले का स्वत्व होजाता है ॥ १४७ ॥

अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते। भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥ १४८ ॥

उसका स्वामी यदि राजा के यहाँ अभियोग चलावै और भोगनेवाला ऐसा कहै कि-यह पुरुष जड़ (बुद्धिहीन) और पौगण्ड (नाबालिग़) नहीं है, मैं इसके सामने ही भोगता हूँ, इसका होता तो यह अवश्य निषेध करता, ऐसा उत्तर देनेपर उसका अभियोग अग्राह्य (खारिज) करै और उसको भोक्ता पावै ॥ १४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः॥ राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ १४९ ॥

गिरवीं पड़ी हुई बस्तु, खेत आदिकी सीमा बालक का धन, किसी बस्तुमें बन्दकर मुद्रा लगाकर दीहुई धरोहड़, नामबताकर वा गिनबाकर दीहुई धरोहड़, दासी आदि स्त्री, राजाका धन और श्रोत्रिय का धन यह सब भोग से नष्ट नहीं होते हैं ॥ १४९ ॥

यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ॥ तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥ १५० ॥

जिसके पास जो बस्तु गिरवीं हो उस बस्तु के स्वामी की सम्मति के बिना यदि उत्तमर्ण उसको भोगै तौ नियमित व्याज में से आधा छोड़देना होगा क्योंकि-भोग से उतना निबट जाता है ॥ १५० ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता॥धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥ १५१ ॥

यदि प्रतिमास धन का व्याज न लेय और वह सूद मूलधनसे दुगुना होजाय तो वह दुगुना ही पावेगा, प्रतिमास लेनेमें द्विगुण से अधिक होसक्ता है, धान्य और सद (वृक्षों के फल) ऊन और बैल आदि इनकी वृद्धि ही मूलसे पाँचगुणी होसक्ती है ॥ १५१ ॥

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति ॥ कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ १५२ ॥

यदि कोई प्रतिमास व्याज न लेकर वर्ष के अन्त में लेना चाहे तो वर्णों के क्रम से प्रति सैंकडेपर दो, तीन, चार, पांचगुणी अकृता (शास्त्र के प्रतिकूल) वृद्धि पासक्ता है परन्तु यह अधर्म है, द्विजाति से अकृता वृद्धि प्रति सैंकडे पर पाँचगुणी नहीं पासक्ता, ऐसी वृद्धि लेनेको मनु आदिकों ने कुत्सित मार्ग कहा है ।१५२।

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥ १५३ ॥

एक मास में, दो मासमें वा तीन मासमें एक बार व्याज गिनकर तू मुझ को देना, ऐसे नियम से धन देय तो इस नियम में उत्तमर्ण अधमर्ण से एक वर्षपर्यन्त, प्रति सैंकड़ा दो चार, पांचगुणी धर्मवृद्धि लेसकता है, शास्त्रोक्त वृद्धि से अधिक वृद्धि नहीं लेसकता, क्योंकि-अधिक लेने में अधर्म है, चक्रवृद्धि आदि चार शास्त्र प्रतिकूल वृद्धियों को नहीं लेसकता; चक्रवृद्धि (सूदका सूद), कालिका, (द्विगुण से अधिक वृद्धि), कायिका (अधिक बाहन दोहन आदि से), कारिका (ऋणीसे

आपत्तिकाल में पीडा देकर लेना) इस चार प्रकार की वृद्धि को लेने से अधर्म होता है ॥

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम्। स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ १५४ ॥

जो अधमर्ण ऋण देने में असमर्थ होकर फिर लेखपत्र लिखने की इच्छा करै तो उसको जितना व्याज देना होय वह भुगताकर दूसरा लेखपत्र करदेय ॥ १५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत्। यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

यदि सब व्याज न देसके तो जितना व्याज शेषरहै उसे और मूलधन को इकट्ठा करके जितना होय उसका लेख करदेय ॥ १५५ ॥

चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः। अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ १५६ ॥

चक्रवृद्धि (गाडी आदिके भाड़े) का आश्रय करनेवाला उत्तमर्ण, तुम्हारा लवणादि द्रव्य गाडी में भरकर अमुक स्थान पर्यन्त पहुँचादूँगा इतना भाड़ा देना होगा, इसप्रकार देश की व्यवस्था करके वा एक मासपर्यन्त गाडी में ढोऊँगा, इतना भाड़ा देनाहोगा, ऐसे समय का नियम करके उसको पूरा न करै तो पूरा भाड़ा नहीं पावेगा ॥ १९६ ॥

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः। स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥ १९७ ॥

तहां थल और जल के मार्ग से जानेवाले व्यापारी, जो कि देशकाल के अनुसार भाड़े को जानते हों वह इस अधूरे कार्य का जितना भाड़ा बतलादें वह उस गाडीवाले को देना उचित है ॥ १९७ ॥

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः। अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ॥ १५८ ॥

अधमर्ण के ऋण लेन के समय जो पुरुष उत्तमर्ण से यह कहै कि—मैं इसको अमुक समय तुम्हारे समीप पहुँचादूँगा- ऐसे नियम से प्रतिभू (ज़ामिन) होकर उससमय अधमर्ण को न पहुँचासकै तो अधमर्ण के ऊपर का ऋण उस (जामिन) को देना होगा ॥

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत्। दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥ १९९ ॥

प्रातिभाव्य (ज़मानत का) धन, भांड आदि का देना करा हुआ धन, जुए का धन, मद्यपान करने का धन, दण्ड का धन, और घाट आदि के महसूल का सम्पूर्ण वा शेष रहाहुआ धन यदि पिता के ऊपर होवो उसका देनदार पुत्र नहीं होता है ॥ १९९ ॥

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः। दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥

दर्शनप्रातिभाव्य (हाज़िरज़ामिनी) के विषय में ऐसी पूर्व कहीहुई विधि जाने देनेका प्रतिभू होने (मालज़ामिनी) में यदि बिना दिये मरजाय तो उसके पुत्र को ऋण देना होगा ॥ १६० ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम्। पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ॥ निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः। स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥

यदि दर्शनप्रतिभू (हाजिरज़ामिन) वा प्रत्ययप्रतिभू (जिसके विश्वासपर ऋणदिया हो) उत्तमर्ण का ऋण चुकाने योग्य कुछ

धन लेकर मरजाय तो उसके पुत्रको किस कारण वह ऋण देना होगा, इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि- यदि दर्शनप्रतिभू वा प्रत्ययप्रतिभू अधमर्ण से ऋण चुकानेयोग्य धन लेकर पर्याप्त धन होता हुआ प्रतिभू होकर मरजाय तो उस का पुत्र उसके धन में से उत्तमर्ण का ऋण अवश्य देय ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ॥ असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ॥ १६३ ॥

मद्यादि से मत्त, उन्माद से ग्रस्त, व्याधि से पीड़ित, गर्भदास आदि, नाबालिग, अस्सी वर्ष का बूढाआदि और असम्बद्ध इनका किया हुआ ऋण देना आदि व्यवहार ठीक नहीं होता है ॥ १६३ ॥

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ॥ बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥ १६४ ॥

मैं ऐसा करूंगा, यह बात यदि लेख आदि के द्वारा स्थिर करदेय और वह शास्त्र वा व्यवहार के विरुद्ध होय तो ठीक नहीं समझीजायगी ॥ १६४ ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत्

जहां छल से गिरवी, विक्रय, दान, प्रतिग्रह होय अथवा छल से ही धरोहड आदि कोई कार्य होय तो उस छल के विदित होनेपर लौटा देय, क्योंकि-वह ठीक नहीं है॥१६५॥

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ॥ दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥ १६६ ॥

जो कोई सर्वसाधारण पुरुष कुटुम्बके लिये ऋण लेकर मरजाय तो अलग हुए और सम्मिलित रहनेवाले सब बान्धवों को ही वह धन देना पड़ेगा ॥ १६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥ १६७ ॥

यदि कुटुम्बके पालन के लिये दास भी देश में वा प्रदेश में ऋण लेय तो वह ऋण उस दास के स्वामी को देना होगा ॥१६७॥

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ॥ सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ १६८ ॥

ग्रहण करने के अयोग्य वस्तु बलात्कार से किसी को दीजाय वा कोई बलात्कार से दूसरेकी भूमि आदिको भोगै अथवा कोई बलात्कार से लेखपत्रादि लिखवालेय यह सब बल से किये हुए अर्थ न होने के समान हैं ऐसा मनुजी का कथन है ॥ १६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ्नृपः ॥ १६९ ॥

साक्षी, प्रतिभू और मध्यस्थ यह तीनों दूसरे के निमित्त क्लेश पाते हैं अतः हठ से किसी को साक्षी, प्रतिभू वा मध्यस्थ न बनावै, और विप्र, धनी, व्यापारी, राजा यह दूसरे से वृद्धि पाते हैं,परन्तु ब्राह्मण दाता से दान करने को स्वयं न कहै, धनी अधमर्ण से क़र्ज़ लेने को स्वयं न कहै, व्यापारी द्रव्य खरीदनेवाले से खरीदने को आप न कहै और राजा अर्थी प्रत्यर्थी से अभियोग चलाने को न कहै॥१६९॥

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ॥ न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्म-

मप्यर्थमुत्सृजेत् ॥ १७० ॥

राजा, धन की कमी होनेपर भी जो लेनेयोग्य न हो उसको प्रजा से न लेय और अतिधनी होनेपर भी ग्रहण करने योग्य थोड़ी सी वस्तु भी न छोड़े ॥ १७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥ १७१ ॥

न लेने योग्यके लेनेसे और लेनेयोग्य के छोड़ने से राजा की दुर्बलता प्रसिद्ध होती है और ऐसा करने के पाप से राजा परलोक में नरकगामी और इसलोक में अपयश पाताहै१७१

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ॥ बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥ १७२ ॥

अपने धन को लेने से, ब्राह्मणवर्ण की सङ्करजाति से रक्षा करने से, और दुर्बलों की रक्षा करने से राजा को इस लोक में यश और परलोक में स्वर्गगति मिलती है॥१७२॥

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ॥ वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १७३ ॥

तिससे राजा, यम की समान क्रोध को जीतकर और जितेन्द्रिय होकर अपने प्रिय अप्रिय को त्यागकर यम की वृत्ति धारण करै ॥ १७३ ॥

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥ अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ १७४ ॥

जो राजा मोहवश अधर्मरूप से व्यवहार देखने आदि कार्य को करता है उस दुष्टात्मा को शत्रु शीघ्रही वश में कर लेते हैं॥१७४॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ॥ प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ १७५ ॥

जो काम क्रोध को वश में करके धर्म से व्यवहारों को देखता है सकल प्रजा इसप्रकार उसकी अनुगामी होजाती है जैसे सकल नदियें समुद्र की अनुगामी होती हैं ॥ १७५ ॥

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ॥ स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ १७६ ॥

उत्तमर्ण अधमर्ण से अपनी इच्छानुसार अपना धन लेने को उद्योग करै उसमें अधमर्ण ऐसा समझकर कि—मैं राजा का प्रियपात्र हूँ, यदि उत्तमर्ण के ऊपर अभियोग चलावै तो राजा उसके ऊपर ऋण का चौथा भाग दण्ड करै और ऋण भी दिलवावै ॥१७६॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ॥ समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥ १७७ ॥

ब्राह्मण को छोड़कर अन्य समान जाति वा नीच जाति अधमर्ण ऋण देने में असमर्थ होय तो राजा उसकी जाति के योग्य कर्म करवाकर उसको ऋण से छुटावै, उत्तम जाति अधमर्ण के आय(आमदनी) के अनुसार क्रम से थोड़ा २ करके ऋण भुगतवावै ॥ १७७॥

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ॥ साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ १७८ ॥

राजा इसप्रकार विचार करके साक्षी और प्रमाण से सिद्धहुए अर्थिप्रत्यर्थी के सकल कार्यों का निर्णय करै ॥ १७८ ॥

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि॥ महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद्बुधः

श्रेष्ठकुल में उत्पन्न, सदाचार, धर्मज्ञ, सत्यवादी, बहुल परिवारवाला, धनवान् और सरलस्वभाव ऐसे पुरुषों के यहां बुद्धिमान् धरोहड़ रक्खै ॥१७९॥

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ॥ स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥

जो पुरुष, जिसप्रकार अर्थात् मुद्रा लगा कर वा बिनामुद्रा के साक्षी करके वा बिना साक्षी के जिसके हाथ में जो सुवर्णादि धन देय, मांगने के समय उसीको उसी प्रकार देय, क्योंकि जैसे देना वैसाही लेना उचित है॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ॥ स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधौ ॥ १८१ ॥

जो धरोहड़ रखनेवाले को मांगने पर न देय उसको, धरोहड़ रखनेवाले का याचना कराहुआ विचारपति वा राजा रखनेवाले के पीछे वह वस्तु जिसके यहां रक्खीगई हो उससे मांगै ॥ १८१ ॥

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ॥ अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥ १८२ ॥

साक्षी न होने पर, मनोहराकृति अपने चार पुरुषों के द्वारा 'इस द्रव्य को न रक्खोगे तो राजा छीनलेगा' ऐसा कहवाकर उसके पास रखवावै, कुछ समय के अनन्तर उस ही चार पुरुष के द्वारा उसको अपने पास धरोहड़ रखनेवाले से मँगवावै ॥ १८२ ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् ॥ न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ १८३ ॥

वह यदि, जैसी धरोहड़ रक्खी हो और जैसी हो उसको स्वीकार करै तो उसके ऊपर दूसरों का चलायाहुआ अभियोग मिथ्या जानै ॥ १८३ ॥

तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ॥ उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥ १८४ ॥

और यदि वह उस धरोहड को जैसी की तैसी न देय तो इन दोनों धरोहडों को राजा उससे पकड़कर दिखलावै, यह धर्म का निश्चय है ॥ १८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ॥ नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥ १८५ ॥

निक्षेप और उपनिधि (अमानत) यह दोनों रखजानेवाले की अनुपस्थितिमें उसके पुत्रादि को न देय क्योंकि—वह वस्तु स्वामी के पास पहुँचने से पहिले पुत्रादि का मरण होनेपर उस बस्तु के नष्ट होने की सम्भावना है। हां यदि पुत्रादि जीता रहै तो वह बस्तु पहुँचसक्ती है, ऐसा सन्देह होने के कारण वह वस्तु देना उचित नहीं है ॥ १८५ ॥

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ॥ न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तव्यश्च बन्धुभिः ॥ १८६ ॥

धरोहड रखनेवाले धन को स्वामी का मरण होजानेपर अपने पास धरोहड रखनेवालायदि अपनेआप पुत्रादि के पास जाकर देआवै तो उसके पास और वस्तु होनेका अभियोग उस के बान्धवों को वा राजा को चलाना उचित नहीं है ॥ १८६ ॥

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ॥ विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥ १८७ ॥

यदि किसीप्रकार की भ्रान्ति होजाय तो अकपटभाव से शान्तियुक्त वाक्यों से उसके व्यवहार का विचार करके उस द्रव्य को पाने की इच्छा करै ॥ १८७ ॥

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ॥ समुद्रे नाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥ १८८ ॥

साक्षी के अभाव में जो पाने के उपाय कहे हैं वह केवल गिनीहुई उपनिधि (अमानत) के विषय में जानना, विनागिनी पात्र में रक्खीहुई उपनिधि के विषयमें नहीं हैं परन्तु यदि उसमें से कोई वस्तु निकाली न होय तो॥

चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ॥ न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ॥ १८९ ॥

चोर के चोरी करने पर, जल से बहजाने पर और अग्नि लगजाने पर वह नहीं देना पड़ेगा, यदि उसमें से पहिले अपने आप कुछ न निकाललिया होय तो ॥ १८९ ॥

निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च॥ सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः॥

धरोहड़ अपने पास रखकर नाटनेवाले का और धरोहड न रखकर मिथ्या अभियोग चलानेवाले का निश्चय, राजा साम आदि उपायों से वा वेदानुकूल शपथ देकर करै ॥

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥ १९१ ॥

जो अपने पास रक्खीहुई धरोहड न देय और जो धरोहड न रखकर माँगै उन दोनों को राजा चोर की समान दण्ड देय और यदि थोड़ी सी धरोहड का झगड़ा होय तो उस धरोहड के अनुसार दण्ड (जुरमाना) करै ॥ १९१ ॥

निक्षेपस्यापहर्त्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ॥ तथोपनिधिहर्त्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥

निक्षेप और उपनिधि को मार रखनेवाले और बिनारक्खे माँगनेवाले इनके ऊपर राजा रक्खे हुए धन की समान दण्ड करै॥१९२॥

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ॥ ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥ १९३ ॥

राजा तुम से रुष्ट हैं, हमको कुछ देओ तो हम तुम्हारी रक्षा करेंगे इसप्रकार पराया धन हरनेवालेको उसके सहायकोंके सहित,सब के सामने नानाप्रकार की पीड़ादेकर मरवा-देय ॥ १९३ ॥

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ ॥ तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥ १९४ ॥

जो पुरुष, महाजन के पास, जितना जो सुवर्णादि द्रव्य साक्षी करके धरोहड़ रखता है उसके परिणाम में सन्देह होनेपर, साक्षी के द्वारा निश्चय करै, यदि कुछ का कुछ बतावै तो दण्ड के योग्य होता है ॥ १९४ ॥

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥ मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १९५ ॥

जिस पुरुष ने निर्जन स्थान में निक्षेप रक्खा हो और जिसने निर्जन स्थान में निक्षेप लिया हो तो वह निक्षेप निर्जन स्थान मेंही देय, क्योंकि जिसप्रकार लेय उसीप्रकार देना चाहिये ॥ १९५ ॥

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ॥ राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ॥ १९६ ॥

निक्षेप वा उपनिहित करेहुए वा प्रीति के कारण भोगने को दियेहुए सब पदार्थों का इसप्रकार से, इन सकल द्रव्यों को रखनेवाले

को कुछ पीडा न देकर निश्चय करै ॥ १९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ॥ न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ १९७ ॥

जो जिस धनका स्वामी नहीं है, और उस धन के स्वामी की सम्मति के बिना दूसरे के हाथ बेचता है, चोर होकर अपने को चोर न माननेवाले उसकी किसी विषय में साक्षी न माने ॥ १९७ ॥

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ॥ निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ १९८ ॥

वह स्वामी न होकर बेचनेवाला यदि धन के स्वामी के वंश का भ्राता आदि सम्बन्धी होय तो उसके ऊपर छःसौपण दण्ड करै और उदासीन पुरुष ऐसा करै तो उसको चोरकी समान दण्ड देय ॥ १९८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ॥ अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ १९९ ॥

जिस धनका जो स्वामी नहीं है वह यदि उसको दान करदेय वा बेचडालै तो उसको अकृत (नाजायज़) समझै, क्योंकि—वह व्यवहारकी मर्यादाके अनुकूल नहीं है॥१९९॥

सम्भोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ॥ आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥ २०० ॥

किसी वस्तुपर पहिले पुरुष का भोग देखा हो और खरीदते वा दान आदिरूप से लेते न देखा हो तो वहां केवल आगम (जिसने खरीदा आदि हो वह) ही प्रमाण होगा, भोगना नहीं ऐसी व्यवहारकी स्थिति है॥२००॥

विक्रयाद्यो धनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ॥ क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥ २०१ ॥

यदि कोई विक्रययोग्य देशमें अनेकों के सामने जिस वस्तु को यथार्थ मूल्य देकर, अस्वामीसे खरीदलेय तो वह खरीदना ठीक है उस से खरीदनेवाला दण्डनीय नहीं है, किन्तु क्रीत वस्तु वा धन पाता है ॥ २०१ ॥

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ॥ अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ १०२ ॥

यदि मरजाने से वा देशान्तर को चलेजाने से स्वामी न होकर बेचनेवाले को खरीदनेवाला न दिखासकै और खरीदनेवाले ने निःसन्देह अनेकोंके सामने और उचित मूल्य देकर शुद्धरूप से खरीदाहोय तो खरीदनेवाला अस्वामी की वस्तु के खरीदने का दण्ड नहीं पासक्ता, किन्तु वह वस्तु उसका स्वामी पायेगा, और उस वस्तु का स्वामी आधा मूल्य खरीदनेवाले को देकर अपनी वस्तुलेनेय२०२

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ॥ न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥ २०३ ॥

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिलाहुआ बेचने के योग्य नहीं रहता है, असार वस्तुको सार कहकर न बेचै, तोल में कमती तोलकर न देय, दूर रक्खेहुए द्रव्यको न बेचै और छिपारक्खा हुआ द्रव्यभी बेचने योग्य नहीं होता है ॥ २०३ ॥

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ॥ उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ २०४ ॥

धन लेने के समय अन्य कन्या दिखाकर विवाह के समय और निकृष्ट कन्या वरको देय

तो वर उस एकबार दियेहुए मूल्यरूप धन से ही दोनों कन्याओं से विवाह करलेय ऐसा मनुजी का कथन है ॥ २०४ ॥

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ॥ पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ २०५ ॥

उन्मत्त, कुष्ठआदि रोगसे ग्रस्त वा जिसके साथ पुरुष का सम्पर्क होगया हो यह सब दोष विवाह से प्रथमही वर से कहकर वरको कन्या देनेवाला दण्ड के योग्य नहीं होता है, विना कहे देय तो दण्डका पात्र होता है ॥ २०५ ॥

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ॥ तस्य कर्मानुरूपेण देयोऽंशः सह कर्तृभिः ॥ २०६ ॥

यज्ञमें वरण होकर ऋत्विक् कुछ एक कर्म करवाकर यदि रोगादिवश आरम्भ करेहुए कर्म को छोड़देय तो आरम्भ करेहुए कार्यके अनुसार दक्षिणा का भाग पाता है ॥ २०६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥ कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥ २०७ ॥

माध्यन्दिन नामक यज्ञमें वरण कियाहुआ ऋत्विक् यदि दक्षिणा पर्यन्त कर्म समाप्त करके रोगादि के कारण केवल शेष कर्म को न करै तो वह उस यज्ञकी समस्त दक्षिणा पावेगा, परन्तु कर्मका शेषअङ्ग उसको दूसरे से करा देना होगा ॥ २०७ ॥

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्ग दक्षिणाः ॥ स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ २०८ ॥

आधान आदि कार्य में एक २ अङ्गकी विशेष२दक्षिणा जो शास्त्रमें कही हैं, जो पुरुष जिस अङ्गका कर्मकरावै वह पुरुष उतनी दक्षिणा पावेगा या उस दक्षिणाको सब बाँट लें ? (यह प्रश्न है) ॥ २०८ ॥

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ॥ होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥ २०९ ॥

(ऊपर के प्रश्नका उत्तर यह है कि-) किसी शाखावाले के आधानकर्ममें लिखा है कि-- अध्वर्यु रथलेय, ब्रह्मा वेगवान् घोड़ा पावै और होता भी घोड़ाही पावै, और उद्गाता सोमलताको ढोनेवाली गाड़ी पावै ॥ २०९ ॥

सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे ॥ तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥ २१० ॥

सोलह ऋत्विजों से होनेवाले ज्योतिष्टोम प्राकृतिक याग में सौ गौ की दक्षिणा कही है, उन सोलह ऋत्विजोंमें से होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा-उद्गाता यह चार ही प्रधान हैं, यह उनमें से अड़तालीस गौ दक्षिणामें पाते हैं, इसप्रकार इनमें से हरएक बारह२ गौ पावेगा; मैत्रावरुण प्रतिस्तोता, ब्राह्मणाच्छंसि और प्रस्तोता यह मुख्यऋत्विजों से आधी दक्षिणा पावेंगे, अर्थात् चौवीस गौकी दक्षिणा के भागी होंगे, प्रत्येक छः २ गौ दक्षिणा में पावेगा, अच्छावाक नेष्टा अग्नीध्र और प्रतिहर्त्ता यह मुख्यऋत्विजों से तिहाई अर्थात् सोलह गौ दक्षिणामें पावेंगे, प्रत्येक को चार २ गौ मिलेंगी; ग्रावस्तुत् उन्नेता, पाता और सुब्रह्मण्य यह चारों मुख्य ऋत्विजों से चौथाई पावेंगे अर्थात् बारह गौ दक्षिणा में पावेंगे और प्रत्येक को तीन २ गौ मिलेंगी ॥ २१० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ॥ अनेन विधियोगेन कर्त्तव्यांशप्रकल्पना ॥ २११ ॥

जो बहुतसे पुरुष मिलकर घर बनाना आदि कार्य करैं, उनके विभाग का नियम पूर्वश्लोक के कथनानुसार करै ॥ २११ ॥

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ २१२ ॥

जो धर्मकार्य के निमित्त याचना करनेवाले को कुछ धन देय वा देनेकी प्रतिज्ञा करै और याचक यदि उस कार्य को न करै तो दीहुई वस्तु उससे फिर लेलेय और देनेकी प्रतिज्ञा करीहुई वस्तु न देय ॥ २१२ ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ॥ राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥ २१३ ॥

यदि वह याचक दियाहुआ धन दाताको लोभ से वा मोहवश लौटाकर न देय वा देना कराहुआ बलात्कार से लेलेय तो उसके ऊपर एक सुवर्ण दण्ड करै ॥ २१३ ॥

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥

दत्तानपाकर्म विवाद की यह व्यवस्था कही, अब आगे वेतन न देनेके विषयकी व्याख्या करते हैं ॥ २१४ ॥

भृतोऽनार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ॥ स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥ २१५ ॥

जो नीरोग सेवक नियम कराहुआ कार्य दर्प से न करै तो उसके ऊपर आठ कृष्णल (रत्ती) सुवर्ण दण्ड करै और वेतन न देय ॥ २१५ ॥

आर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः ॥ स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥ २१६ ॥

यदि भृत्यरोगी होने के अनन्तर सुस्थ होकर पहिले ठहराहुआ कार्य करै तो वह बहुत समय पहिले का वेतन भी पावेगा ॥२१६॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥ न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥ २१७ ॥

यदि पीड़ाकी दशामें ठहराहुआ कार्य, प्रतिनिधि (एवजी) से न करवादेय और नीरोग होकर भी शेष रहेहुए कार्य को समाप्त न करै तो थोड़े से कम रहेहुए कार्य का भी वेतन नहीं पावेगा ॥ २१७ ॥

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥ २१८ ॥

यह वेतन न देनेके विवाद की धर्मानुकूल सब विधि कही अब आगे नियम उल्लंघन करने वालों का धर्म कहूंगा ॥ २१८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २१९ ॥

जहाँ ग्रामवासी वा सुनार आदिकोंके समूह मिलकर 'इस कार्य को हम करेंगे और इस को नहीं करेंगे' ऐसी प्रतिज्ञा शपथ खाकर करैं और फिर लोभ से उस नियम का पालन न करैं तो राजा उनको अपने राज्यसे निकाल देय ॥ २१९ ॥

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ॥ चतुःसुवर्णान् षण्निष्कांश्छतमानं च राजतम् ॥ २२० ॥

और उस नियम तोडनेवाले को इसप्रकार का दण्ड देकर विषय की छुटाई बडाई के विचार करके चार सुवर्ण वा छःनिष्करूप्यमय शतमान अर्थात् तीन सौ बीस रत्ती चाँदी

उसके ऊपर दण्ड करै ॥ २२० ॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥ २११ ॥

धार्मिक राजा, ग्राम में रहनेवाले ब्राह्मणादि जातिवालों के ऊपर नियम तोड़नेका इसप्रकार दण्ड करै ॥ २२१ ॥

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ॥ सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥ २२२ ॥

कोई पुरुष, किसी के स्थानपर स्थिर मूल्य के ताम्बे आदि किसी पदार्थको खरीदकर वा किसी के हाथ बेचकर, पीछे उसको मन में अच्छा न समझकर पछतावै तो उस द्रव्य को दश दिन के भीतर फेर सक्ता है, इसके अनन्तर नहीं दे ले सक्ता है॥ १२२ ॥

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ २२३ ॥

दश दिनके अनन्तर खरीदीहुई वस्तु को नहीं छोडसक्ता और बेचनेवाले को हठ करके नही देसकता, यदि लेय अथवा देय तो राजा उस के ऊपर छः सौ पण दण्ड करै ॥२२३॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥ २२४ ॥

जो दाता उन्माद आदि दोषयुक्त कन्या के वह दोष पहिले न बतलाकर वह कन्या बर को देदेय तो राजा अपने आप उसके ऊपर छियानवे पण दण्ड करै ॥ २२४ ॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ॥ स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २२५ ॥

यह अक्षतयोनि कुमारी नहीं है ऐसा झूठा दोष जो कन्या को लगावै और फिर दोषको सिद्ध नहीं करसकै तो उसके ऊपर एक सौ पण दण्ड करै ॥ २२५ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु क्वचिन्नॄणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २२६ ॥

ब्राह्मणादि के धर्मानुकूल विवाहका सम्पादन करनेवाले जो सकल मन्त्र हैं वह कन्याविवाहों में ही प्रतिष्ठित होते हैं, क्षतयोनि कन्याओंके विषय में प्रतिष्ठित नहीं हैं अतएव कन्याको अकन्या कहनेवाले के ऊपर पूर्वोक्त दण्ड करना उचित है,इसमें ऐसा न समझना कि–कन्यादशा में किसी दुष्टात्मा के बलात्कार से क्षतयोनि हुई कन्याओं के विवाहोंमें इन मंत्रोंको न पढ़े वा उसप्रकार से क्षतयोनि हुई कन्याओंका-विवाह नहीं होगा ऐसा नहीं है किन्तु इसका अभिप्राय यह है कि–वह विवाह धर्मानुकूल विवाह नहीं है, परन्तु क्षत्रिय वर्ण के गान्धर्वविवाह को धर्मानुकूल कहा है और गान्धर्वविवाह समागम होकर परस्पर अनुराग होनेपर कियाजाता है ॥ २२६ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २२७ ॥

विवाह के प्रतिष्ठापक जो मन्त्र हैं वह भार्यात्व होने के निमित्त हैं, उन मन्त्रों के द्वारा कन्याका सप्तपदीगमन होनेपर उस भार्यात्व की पूर्त्ति होती है, उससे पहिले विवाह कार्य की सम्पूर्णता नहीं होती है, तात्पर्य यह है कि–यदि कन्या की सप्तपदीगमन से पहिले वरको पश्चात्ताप होय तो उस कन्याका त्याग करसक्ता है सप्तपदी गमन के अनन्तर त्याग

नहीं करसक्ता है ॥ २२७ ॥

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत् ॥ तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २२८ ॥

केवल खरीदने बेचने के स्थलपर पश्चात्ताप होनेसे उस कन्याका ही त्याग होसकेगा ऐसा नहीं है किन्तु और विवादके विषयों में भी पश्चात्ताप होसक्ता है, उसमें राजा आगे कही हुई रीति से यथार्थ मार्गमें स्थापन करे॥२२८॥

पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे ॥ विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २२९ ॥

गौ आदि पशुओं के विषयमें स्वामी और पालक के नियम का उल्लंघन होनेपर धर्म के तत्त्वानुसार जैसा विवाद होता है उसको आगे कहते हैं ॥ २२९ ॥

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ॥ योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥ २३० ॥

दिन में रखवाली और देखने के लिये पालक के हाथ में समर्पण करेहुए पशुओं में किसी प्रकारका दोष होजाय तो पालक उस का दायी होगा, दिन में पशु चराने के अनन्तर रात्रि के समय स्वामी के घर पहुँचाये हुए पशुका मरणादि दोष होनेपर उसमें स्वामीका दोष होगा, पालकका कोई अपराध नहीं है और यदि दिन रात रक्षा आदि के कार्यका भार पालक के ऊपर होय तो रातमें भी दोष का भागी पालकही होगा ॥२३०॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वरान् ॥ गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥ २३१ ॥

जो भृत्य भोजन वस्त्रपर नहीं है केवल दूध पर ही रहता हो ऐसे दश गौओंका पालन करने वाले की वार्षिक (सालाना) भृति (नौकरी) एक दुग्धवती गौ होगी ॥ २३१ ॥

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् ॥ हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ २३२ ॥

यदि कोई गौ आदि पशु खोजाय, अथवा असावधानी के कारण कीट आदि से नष्ट होजाय, वा उसको कुत्ते आदि काटखायँ अथवा नीचे ऊँचे स्थानों में ठोकर खाकर मरजाय, अथवा पालक के बैठे देखतेहुए भागजाय और वह उसके पकड़ने को न जायतो वह पशु पालक को देना पड़ेगा ॥ २३२ ॥

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ॥ यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ २३३ ॥

यदि चोर मिलकर ढोल आदि बाजे बजाते हुए पालक से पशुओं को छीनकर लेजायँ और पालक उसका संवाद निकट में स्थित योग्य स्वामी को उचित समयपर पहुँचादेय तो पशु खोजाने का दोष पालकको नहीं लगेगा ॥ २३३ ॥

कर्णौ चर्म च बालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ॥ पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्कानि दर्शयेत् ॥ २३४ ॥

गोठ में रोगादिवश पशु स्वयं मरजाय तो उसके दोनों कान, चर्म, बाल, बस्ति,स्नायु, रोचना और जिनसे मरण का निश्चय होय ऐसे किसी अङ्ग को पालक अपने ऊपर का दोष दूर करनेके निमित्त स्वामीको दिखावै॥

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ॥ यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥ २३५ ॥

यदि बकरी भेड आदिको भेडिये आदि घेरलें और पालक छुड़ाने को न जाय तो जिस बकरी वा भेडको भेडिया मारेगा उस का दोष पालक को लगेगा ॥ २३५ ॥

तासां चेदवरुद्धानां चरंतीनां मिथो वने ॥ यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥ २३६ ॥

यदि खुलीहुई परस्पर इकट्ठी होकर वन में चरतीहुई उनमें एकायकी भेडिया कूदकर जिसको मारै उसका दोष पालक को नहीं लगसक्ता ॥ २३६ ॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥ शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ २३७ ॥

ग्रामके चारोंओर जिसमें अन्न न बुआ हो ऐसी चारसौ हाथ पर्यन्त की भूमि गौ आदि पशुओं के चरनेके निमित्त रक्खै अथवा धनुष की लकड़ी वेगके साथ फेंकनेपर जहां जाकर गिरै तहाँसे उठाकर फिर वैसेही वेगके साथ फेंकै, फिर उठाकर वेग के साथ फेंकै ऐसे तीन बार फेंकने से जितनी भूमिहो उसको ग्रामके चारोंओर पशुओं के चरने का छोडदेय, परन्तु नगर में इससे तिगुनी भूमि पशुओं के चरने को छोडै ॥ २३७ ॥

तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ॥ न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥

उस स्थान में यदि कोई चारोंओर बाड़ लगाये विना अन्न बोवै और उस अन्न को गौ आदि पशु खाकर नष्ट कर दें तो राजा, उस विषय में पशुओं के पालकों के ऊपर दण्ड न करै ॥ २३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९ ॥

तहाँ अन्न बोवै तो ऐसी ऊँची बाड़ बनावै कि जिस को ऊँट न देखसकै और ऐसे भी छिद्रों को बन्द करदेय कि जिन में श्वान वा शूकर का मुख चला जाय ॥ २३९ ॥

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ॥ सपालः शतदण्डार्हो विपालांश्चारयेत्पशून् ॥ २४० ॥

मार्ग के समीपके वा पशुओं के चरने के स्थान में बाड़ लगाकर बोयेहुए खेत में के अन्न को पालक के साथ में का पशु यदि द्वार में को जाकर खाजाय तो पशु के स्वामी के ऊपर राजा एक सौ पण दण्ड करै,पालक रहित पशु को खेत का स्वामी आप हटादेय॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति॥ सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥ २४१ ॥

यदि ग्राम के चुगने के स्थान से अन्यत्रके खेत का अन्न इसप्रकार पशु खाजायँ तो सवा पण दण्ड करै, परन्तु खेतके वसमीकी जो हानि हुई होगी वह सर्वत्र गौ आदि पशु के स्वामी को देनी होगी ॥ २४१ ॥

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ॥ सपालान्वा विपालान्वा न दण्डयान्मनुरब्रवीत् ॥ २४२ ॥

जिस गौ को ब्याहेहुए दशदिन बीते हों वह और वृषोत्सर्ग में चक्रशूल आदि से दागेहुए पशु, और देवता के निमित्त छोडेहुए पशु, पालक के साथ में वा विना पालक के यदि अन्न खाजायँ तो दण्ड योग्य नहीं होते ऐसा मनुजी ने कहा है ॥ २४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागादृशगुणो-

भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ॥ २४३ ॥

यदि खेतके स्वामी का अपना ही पशु खेत खाजाय वा खेत जोतने वाला असमय में अन्न बोकर राजा के जितने भागकी हानि करे तो राजा उसके ऊपर उसका दशगुणा दण्ड करे और खेत के स्वामीकी अज्ञात दशा में उसके भृत्य के द्वारा ऐसा अपराध होजाय तो खेत के स्वामी के ऊपर हानि से पांचगुणा दण्ड करे ॥२४३॥

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः॥स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥ २४४ ॥

स्वामी और पशुओं के पालकका परस्पर रक्षा की असावधानी में और पशु के अन्न खालेने के अपराध में धार्मिक राजा इस ऊपर कहे अनुसार व्यवस्था करे ॥ २४४ ॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु

दो खेतोंकी वा दो ग्रामोंकी सीमा का विवाद होय तो ज्येष्ठमास में जबकि-तृणोंके सूखजाने से सीमाके चिह्न भलीप्रकार चमकनेलगें तब राजा उन दोनोंकी सीमा का निर्णय करे ॥

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ॥ शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥ २४६ ॥

सीमाके विरोध दूर करने के निमित्त बड़, पीपल, ढाक,सेमल, साल, ताल, और गूलड़ आदि दुधेरे वृक्षोंको लगावे ॥ २४६ ॥

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ॥ शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥ २४७ ॥

बिना गुद्देकी लता, बांस, कांटे और बिना कांश के नाना प्रकारके जंट के वृक्ष, लता, मट्टीके टीले, रामसर, अपामार्ग और शाकोटक आदि वृक्षों को सीमा का चिह्न बनावै, ऐसा करने से सीमा कभी नष्ट नहीं होगी ॥२४७॥

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च॥

तालाब, कूप, बावड़ी,जलकी नाली और देवमन्दिर सीमाके मेलमें चिह्नरूपसे बनावै ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् ॥ सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ २४९ ॥

इनके सिवाय और भी कुछ छुपेहुए सीमा के चिह्न, सीमा के न जानने के विषय में लोकोंके नित्यके बिवाद को देखकर बनवावे॥

अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्म कपालिकाः ॥ करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छर्करा वालुकास्तथा ॥ २५० ॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ॥ तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ २५१ ॥

पत्थर, हड्डी गौ की पूंछ के बाल, भूसी, राख, ठीपडे, सूखेहुए गोबर के उपले, ईंटें, कोयले, रोड़ी, रेता,और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ भी कि जिनको बहुत समय बीतनेपर भी भूमि नष्ट न करै उन चिह्नों को सीमाकेमेल होनेके स्थानमें गुप्तरीतिसे गाड़देय॥२५०।२५१

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥ पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २५२ ॥

राजा इन सब चिह्नोंके द्वारा विवाद करने वालों का निर्णय करै एवं पूर्वसे भोग(दखल) और सदाकी नदी आदि के प्रभाव से पार और अवार के दो ग्रामों की सीमा का निर्णय करै ॥ २५२ ॥

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ॥ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ २५३ ॥

यदि चिह्नों के देखनेपर भी सन्देह ही रहै तो साक्षी के विश्वास से ही सीमा के विवाद का निर्णय होता है ॥ २५३ ॥

ग्रामेयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ २५४ ॥

ग्राम के बहुत से पुरुष और वादि-प्रतिवादियों के सामने सीमा के साक्षियों से सीमा के चिह्नों को बूझै ॥ २५४ ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ॥ निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥ २५५ ॥

वह सब साक्षी बूझने पर जैसा कहैं तैसे सीमा के विषय में निश्चय करके उसके चिरकाल रहने के लिये सीमा के पत्र में वह सब निश्चय और उन वादि-प्रतिवादियों के नाम भी लिखदेय ॥ २५५ ॥

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ॥ सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥ २५६ ॥

वह साक्षी लालवस्त्र और लाल माला धारणकर शिरपर मृत्तिका रखकर और यदि हम मिथ्या कहैं तो हमारा आजन्म का पुण्य नष्ट होजाय ऐसी शपथ करके जो ठीक होय सो कहैं ॥ २५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ॥ विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ २५७ ॥

वह साक्षी सत्यता से जैसे का तैसा ठीक२ निर्णय करें तो निष्पाप होते हैं और यदि कुछ का कुछ कहैं तो उनमें से प्रत्येक के ऊपर दोसौ पण दण्ड करै ॥ २५७ ॥

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ॥ सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ २५८ ॥

दो ग्राम की सीमाके विवाद के साक्षी न हों तो चारों ओर समीप के चार ग्रामों में रहनेवाले पुरुष, राजा के समीप में निष्कपटता से सीमा का निर्णय करैं ॥ २५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २५९ ॥

यदि ऐसा भी न होसकै तो ग्राम बसने के समयसे जिनके दादा परदादे और वह आप भी उसी ग्राम में रहते हों उन मौल पुरुषों को सीमा का साक्षी करके निश्चय करै और यह भी न होसकै तो आगे के श्लोक में कहे बन में विचरनेवाले पुरुषों से प्रश्न करके सीमा का ठीक २ निश्चय करै ॥ २५९ ॥

व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥ २६० ॥

व्याध, चिड़ीमार, ग्वालिये, मछरहे, ओषधियें खोदकर लानेवाले, सपेरे, खेतों में उञ्छवृत्ति करनेवाले तथा और भी फल, मूल, काठ आदि लाने को वन में फिरनेवाले पुरुषों से सीमा के चिह्न बूझै ॥ २६० ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २६१ ॥

वह बूझने पर सीमा की सन्धि के विषय में जैसा कहैं राजा उसके द्वारा वैसी ही दोनों

ग्रामों की सीमा धर्म से स्थापन करै॥२६१॥

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ २६२ ॥

ग्राम के भीतर के खेत, कूप, तालाब बगीचे और घर की सीमा में सन्देह होय तो उसके चारों ओर के पुरुषों के विश्वास से ही उस सीमा का निर्णय करै, इसमें व्याधे आदिकों की साक्षी की अपेक्षा नहीं है ॥२६२॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ॥ सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ २६३ ॥

यदि वह चारोंओर बसनेवाले पुरुष विवाद करनेवालों की सीमाके विषय में मिथ्या कहैं तो राजा उन सब के ऊपर पृथक्२मध्यम साहस (पांच सौ पण) दण्ड करै ॥२६३॥

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्॥ शतानि पञ्च दण्ड्यःस्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥ २६४ ॥

यदि कोई किसी के घर तालाब, बगीचे वा खेत को भय दिखाकर छीनलेय तो राजा उसके ऊपर पांचसो पण दण्ड करै और अपना स्वत्व समझकर अनजान में छीनलेय तो उसके ऊपर दोसौ पण दण्ड करै॥२६४॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥ प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥ २६५ ॥

सीमा के चिह्न और साक्षी के न होनेपर राजा आपही जाकर जिस का उस सीमा में अधिक उपकार समझै उसको वह दिलवादेय ऐसी स्थिति है ॥ २६५ ॥

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ २६६ ॥

सीमा के निर्णय में यह धर्मानुकूल विधि पूर्णरूप से कही, अब वाक्पारुष्य का विवाद कहेंगे ॥ २६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ २६७ ॥

यदि क्षत्रिय ब्राह्मणसे तू चोर है इत्यादि दुर्वचन कहै तो एकसौ पण दण्ड का भागी होता है, वैश्य ऐसा करने से डेढसौ वा दो सौ पणके दण्ड का भागी होता है और शूद्र तो ऐसा करनेसे ताडनादिरूप दण्ड पाता है ॥

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ॥ वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ २६८ ॥

यदि ब्राह्मण क्षत्रियको ऐसा निन्दा का वचन कहै तो पचास पण दण्डका भागी होता है और वैश्य ऐसा कहै तो पचीस पण दंडका भागी होता है और शूद्र ऐसा करै तो बारह पण दण्डका भागी होता है ॥२६८॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥

द्विजातियोंमें समान वर्णवाला ऐसा अपशब्द कहै तो बारह पण और यदि अकथनीय अश्लील वचन के साथ कठोर भाषण करे तो वही उपरोक्त दण्ड दुगना करके लेय॥

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ॥ जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥

यदि शूद्रजाति, ब्राह्मणादि तीन वर्णों को कठोर वचन कहकर आक्षेप करै तो वह शूद्र जिह्वा का छेदनरूप दण्ड पावेगा, क्योंकि—

वह सबोंकी अपेक्षा नीचवर्ण में उत्पन्न हुआ है॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ॥ २७१ ॥

शूद्र यदि द्विजकी, यह यज्ञदत्त अधम ब्राह्मण है ऐसा नाम लेकर निन्दा करै तो उसके मुखमें दश अँगुलकी अग्निमें तपी लोहेकी कील डालै ॥ २७१ ॥

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥

यदि शूद्र घमण्डसे, तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसा धर्मोपदेश करे तो उस शूद्रके मुखमें और कानोंमें राजा गरम तेल डलवावै॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ॥
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम्

यदि कोई घमण्ड करके समान जातिवाले से मिथ्या ही ऐसा कहै कि—तूने यह नहीं पढ़ा है, तू इस देशका नहीं है, तेरी यह जाति नहीं है और तेरा उपनयनादि संस्काररूप कोई शारीरकर्म नहीं हुआ है तो उसके ऊपर दोसौ पण दण्ड करै ॥ २७३ ॥

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ॥ तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ २७४ ॥

यदि कोई काने, लूले कुबड़े आदिको सत्य भी काने आदि शब्दसे पुकारे तो राजा उस के ऊपर कार्षापणके भीतर थोड़ासा दण्डकरै॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम्
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः

माता, पिता, स्त्री, भ्राता, पुत्र वा गुरु से ग्लानि करवावै और जो गुरु के निमित्त मार्ग न छोड़े इनके ऊपर राजा एकसौ पण दण्ड करै ॥ २७५ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ॥ ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥ २७६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय परस्पर पतित होनेके शब्दों में निन्दा करें तो धर्मज्ञ राजा ब्राह्मणके ऊपर पूर्व साहसका और क्षत्रिय के ऊपर मध्यम साहसका दण्ड करै ॥ २७६ ॥

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः॥
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः॥

वैश्य शूद्र परस्पर ऐसी निन्दा करैं तो वैश्य के ऊपर प्रथम साहस और शूद्रके ऊपर मध्यम साहसका दण्ड करै, पहिले एकवचन में शूद्रको जिह्वछेदन का दण्ड कहा है वह केवल ब्राह्मण क्षत्रियकी निन्दाके विषयमें है॥

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ २७८ ॥

यह वाक्पारुष्य की धर्मानुसार दण्डविधि कही अब आगे दण्डपारुष्य का निर्णय कहेंगे॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्॥

शूद्र हाथ, पैर आदि जिस अङ्गसे श्रेष्ठ जाति के ऊपर प्रहार करै राजाको उसका वही अङ्ग कटवाना चाहिये यह मनुजी की आज्ञा है ॥ २७९ ॥

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति।२८०

शूद्र यदि श्रेष्ठजाति को मारनेको हाथ उठावै तो हाथ कटवाना उचित है और कोपमें हो चरण से प्रहार करै तो चरण कटवा देना उचित है ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः॥
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्याव-

कर्तयेत् ॥ २८१ ॥

शूद्र यदि ब्राह्मण के साथ एक आसनपर बैठे तो राजा उसकी कमर में तपाई हुई लोहे की शलाका से दाग देकर देशसे निकालदेय अथवा जैसे मरण न होय तिसप्रकार उसके चूतड़ कटवादेय ॥ २८१ ॥

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः। अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥२८२

यदि कोई घमण्डसे ब्राह्मण के शरीर पर थूकदेय तो उसका नीचेका ओठ कटवादेय ॥ और पेशाब करदेय तो मूत्रेन्द्रिय कटवादेय ॥ तथा अधोवायु छोड़े तो गुह्यस्थान कटवादेय।

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्। पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च॥

शूद्र यदि अहङ्कार करके हाथोंसे केश, चरण, दाढ़ी, गरदन वा अण्डकोष पकड़े तो बिना विचारे उसके हाथ कटवादेय ॥ २८३ ॥

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ २८४ ॥

समानजातिवाला शरीरकी खाल छीलदेय तो एकसौ पण दण्ड करै, खून निकालदेय तो भी सौपणही दण्ड करै, मांस काटदेय तो छःनिष्क दण्ड करै और हड्डी तोडदेय तो देश से निकालदेय ॥ २८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा ॥ तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥ २८५ ॥

वृक्षादि तोड डालै तो सकल वनस्पतियों से जैसा २ भोगहो जैसा फल पुष्पादि मिले तैसे २ अर्थात् उसकी हानि के अनुसार ही दण्ड देय, यह निश्चित है ॥ १८५ ॥

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ॥ यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥ २८६ ॥

मनुष्य वा पशुको दुःख देने के निमित्त प्रहार करनेपर जैसा २ अधिक दुःख होय वैसा २ अधिक दण्ड देय ॥ २८१ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ १८७ ॥

कोई अङ्ग टूटजाय वा रुधिर का प्रवाह निकलै ऐसे घायलहुए पुरुष के आराम होनेके निमित्त औषध पथ्यादि का व्ययदेय, न देय तो राजा उससे इस व्यय और दण्डको दिलवावै २८७

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ॥ २८८ ॥

जिनका दण्ड नहीं कहा है ऐसे कटक, कलश आदि पदार्थ जिसके जो पुरुष जानकर वा विनाजाने नष्ट करदेय वह वैसाही दूसरा पदार्थ देकर द्रव्य के स्वामी को प्रसन्न करै और उसके समानही दण्ड राजाको देय ॥ २८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ २८९ ॥

यदि कोई ईर्षा से चमड़ा, चमडे का पात्र, काठका वा मट्टीका पात्र वा पुष्प, मूल और फलोंको नष्ट करदेय तो राजा, उस वस्तु के मूल्य से पांचगुणा दण्ड करै और वस्तु के स्वामी को प्रसन्न करावै ॥२८९॥

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ॥ दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

सवारी, सवारी का सारथी और सवारीका स्वामी, दश स्थानों को छोड़कर सेर की सा-

धारण हानि करने पर दण्ड के पात्र नहीं होते हैं, शेष में दण्ड होता है ऐसा पण्डितों ने कहा है ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते। अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥ छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ॥ आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दंडं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥

सावधानी रखने पर भी बैल आदि की नाथ टूटजाने पर,रथ आदिका जुआ वा भूमिके नीचे ऊँचेपन से तिरछे गमन के कारण पहिये के मध्य का काठ वा पहिया टूटजानेपर, रथादि सवारी के चमडे के बन्धन, पशु के मुखका मुहरा और लगाम टूटजाने पर तथा हटजाओ हटजाओ ऐसा वार २ कहने पर भी यदि सवारी से प्राणियों का मरण आदि होजाय तो उसमें किसी का भी अपराध नहीं है, ऐसा मनुजी ने कहा है ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥ तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥ २९३ ॥

जहां सारथि की मूर्खता से सवारी लौट जाय तहां मूर्ख सारथि रखने के कारण यदि सवारी लौटने से किसी के चोट आदि लगी हो तो उसके स्वामीके ऊपर दोसौ पण दण्ड करै ॥ २९३ ॥

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ॥ २९४ ॥

चतुर सारथि के होतेहुए वैसा होजाय तो सारथि के ऊपर दो सौ पण दण्ड करै परन्तु मूर्ख सारथि से अपराध होनेपर सवारी पर स्थित पुरुष और सवारीका स्वामी दोनोंके ऊपर एक २ सौ पण दण्ड करै ॥ २९४ ॥

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥ २९५ ॥

यदि सारथि मार्ग में गौ आदि पशुओं से व दूसरे रथ से ऐसा घिरजाय कि-पीछे को न लौट सके ऐसी दशामें यदि खड़ा न होसकने से रथ को चलावै और उससे मनुष्य मरण आदि दोष होजाय तो राजा कुछ विचार न करके उसको दण्ड देय ॥ २९५ ॥

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ॥ प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २९६ ॥

यदि सारथि की असावधानी से मनुष्य की प्राणहिंसा होय तो उसको चोर की समान अर्थात् उत्तम साहसका दण्ड देय । गौ, हाथी आदि बड़े प्राणीकी हिंसा होनेसे उसका आधा अर्थात् पांच सौ पण दण्ड करै ॥ २९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ॥ पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २९७ ॥

अन्य क्षुद्र बनचर पशुओं की हिंसा होजाय तो दो सौ पण दण्ड करै । उत्तम मृग और शुक आदि पक्षियों की हिंसा होने पर पचास पण दण्ड होता है ॥ २९७ ॥

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ॥ माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २९८ ॥

गधा, बकरी, भेड़ आदि मरजायँ तो पांच माशे चाँदीका दण्ड करै और श्वान वा शूकर का मरण होजाय तो एकमाशा दण्डकरै २९८

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः। प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥ २९९ ॥

स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य, सहोदर, छोटा भ्राता यदि कुछ अपराध करै तो रस्सी से बाँसकी खपची से उसको ताड़ना करै॥२९९॥

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३०० ॥

परन्तु रज्जु वा बांस की खपची से जो ताड़ना करै सो पीठपर करै ,मस्तकपर किसी प्रकार प्रहार न करै, यदि ऐसा प्रहार मस्तक पर करेगा तो चोरकी समान दण्ड पावेगा ॥

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः॥स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ ३०१ ॥

यह दण्डपारुष्य का निर्णय पूर्णरीति से कहा। अब आगे चोरके दण्ड का निर्णय करने की विधि कहैंगे ॥ ३०१ ॥

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ॥ स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥ ३०२ ॥

राजा चोरों को दण्ड देने में परम उद्योग करै क्योंकि-चोरों को दण्ड देने से राजाका यश और राज्य दोनों बढ़ते हैं ॥ ३०२ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३०३ ॥

जो राजा चोरों को दण्ड देकर साधुओं को अभय देता है वह सबों का पूजनीय होता है और उसका गवायनादि की समान अभय दक्षिणावाले यज्ञ के फलकी वृद्धि होती है और वह यज्ञ का फल पाता है ॥ ३०३ ॥

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः॥ अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ३०४ ॥

राजाके रक्षा करते हुएमें प्रजा जो धर्म कर्म करे उस में से छठाभाग राजा पाता है और इस राजा के रक्षा न करने के कारण जो कुछ अधर्म होय उसका छठाभाग भी राजा पाताहै॥

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ॥ तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ३०५ ॥

प्रजा जो कुछ पढ़ै, जो यज्ञ करै, जो कुछ दान करै और जो कुछ पूजन करै उसका छठाभाग रक्षा करने के कारण राजा पाताहै॥

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ॥ यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥

जो राजा धर्मसे प्राणियोंकी रक्षा करै और वधके योग्योंका वध करै तो प्रतिदिन लक्ष गौ दक्षिणावाले यज्ञोंके फल को पाता है ॥३०६॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥ प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ३०७ ॥

जो राजा रक्षा तो करै नहीं और बराई,कर, महसूल, भेट तथा दण्ड लेय वह शीघ्र ही नरक को जाता है ॥ ३०७ ॥

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ३०८ ॥

जो राजा रक्षा नहीं करता और अन्नका छठा भाग लेता है उसको सकल लोकों के सकल पापोंका हरनेवाला कहते हैं ॥ ३०८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्प-

कम् ॥ अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ३०९ ॥

शास्त्रको न माननेवाले, नास्तिक, अनुचित दण्डादिसे पराया धन हरनेवाले, बलि खानेवाले और रक्षा न करते हुए राजाको नरकगामी जाने ॥ ३०९ ॥

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥ निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१० ॥

अधर्मी पुरुषको, प्रयत्न करके तीन उपायों से वशमें करे, चाहें बन्दीघर में डालदेय, वा बेड़ियों से बांधदेय और ऐसे भी न माने तो ताड़ना देय ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥ द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥ ३११ ॥

पापियों को दण्डित और साधुओं की रक्षा करने से राजा, जैसे द्विज यज्ञोंसे पवित्र हों तैसे पवित्र होजाते हैं ॥ ३११ ॥

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ॥ बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ ३११ ॥

दुःखितहुए अर्थिमत्यर्थी और बालक, वृद्ध, आतुर राजाकी निन्दा करें तो अपना हित करनेवाला राजा उनके ऊपर क्षमा करै ३१२॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्त्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥ यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३ ॥

जो राजा उन आर्त्तोंके निन्दा करने परभी क्षमा करता है वह स्वर्ग में पूजित होता है और जो प्रभुताके घमण्ड से क्षमा नहीं करता है वह नरकको जाता है ॥ ३१३ ॥

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ॥ आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥ ३१४ ॥ स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ॥ शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥ ३१५ ॥

ब्राह्मण का सुवर्ण चुरानेवाला केश मुँडाकर मूसल नामक अस्त्र, वा खैर का दण्ड वा दोनों ओर तीक्ष्ण शक्ति अथवा लोहेका दण्ड कन्धे पर रखकर राजा के पास जाय और यह कहै कि मैंने सोना चुराया है मुझे दण्ड दो ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ३१६ ॥

राजा उसके ऊपर एक बार मूसल आदिका प्रहार कर उससे प्राणान्त होजाय वा मृतसमान होजाय तो वह चोर चोरी के पाप से छूटजाता है, यदि राजा दया करके उस के ऊपर प्रहार न करै तो चोर के पाप का भाग होता है ॥ ३१६ ॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥ ३१७ ॥

भ्रूणहत्या करनेवाला अपने अन्न को खानेवाले में अपने पापका मार्जन करता है, व्यभिचारिणी स्त्री क्षमा करनेवाले पति में अपना पाप छोड़ती है, नित्यकर्म न करनेवाला शिष्य अपने पाप गुरु के विषैं छोड़ता है, यदि यजमान यज्ञ की विधि का उल्लंघन करै और याजक उसको सहै तो यजमानका पाप याजक के ऊपर पड़ता है तथा राजा सुवर्ण के चोर को क्षमा करै तो उसका पाप राजा को प्राप्त होता है ॥ ३१७ ॥

राजनिर्धूतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ ३१८ ॥

मनुष्य पापोंको करके राजा से दण्ड पाकर निष्पाप होजायँ तो पुण्यात्मा सज्जनों की समान निर्मल होकर स्वर्गको जाते हैं ॥ ३१८ ॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिंद्याच्च यः प्रपाम् ॥ स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥ ३१९ ॥

जो कूप पर से रस्सी वा घड़ा चुराकर लेजाय और जो प्पा (पौ) को तोड़ै, उसके ऊपर एकमाशा सोना दण्ड करै और वह चुराईहुई वस्तु लाकर देय ॥ ३१९ ॥

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ३२० ॥

दश घडे से अधिक अन्न चुरानेवाले को अपराध की छुटाई बड़ाई के अनुसार ताड़ना से लेकर प्राणान्ततक का दण्ड देय, दशघड़े से कमचुरावै तो उस धान्य के मूल्य से ग्यारहगुणा दण्ड करै और धान्य के स्वामी को धान्य दिलवावै ॥ ३२० ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥

तुलाभर सुवर्ण वा चाँदी आदि और बहुमूल्य के उत्तम वस्त्र एक सौ पल से अधिक चुरावे तो वधका दण्ड देय ॥ ३२१ ॥

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३२२ ॥

पचास से अधिक सौ पर्यन्त सकलद्रव्यों के चुरानेपर हाथ कटवादेय और पचास से कम चुरावै तो उसके ऊपर वस्तुके मूल्य से ग्यारहगुणा दण्ड करै ॥ ३२२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥ मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥

कुलीन पुरुष तथा श्रेष्ठकुल की स्त्रियें और श्रेष्ठ रत्नों के चुरानेपर बधके दण्ड का पात्रहोता है ॥

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

बड़े पशु, शस्त्र और औषधों की चोरी करने पर राजा दुर्भिक्षादि समय और कार्यका विचार करके दण्ड देय ॥ ३२४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने ॥ पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ ३२५ ॥

ब्राह्मण की गौ और बन्ध्या गौ को वाहन के लिये नाथनेपर तथा अतिप्रयोजनीय पशुओं के चुरानेपर शीघ्रही आधापैर कटवादेय ३२५॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ ३२६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ॥ मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ ३२७ ॥

मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥ मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ ३२८ ॥ अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ॥ पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥ ३२९ ॥

ऊनका सूत्र, कपास, किण्व (मद्यके बीजभूत पदार्थ) गोबर, गुड, दही, दूध, मठा, पानी, तृण, बाँसकी सूक्ष्म खपची के पात्र

तैसेही लवण और मट्टी के पात्र चुरानेपर और मट्टी, भस्म, मछलियें, पक्षी, तेल, घी, मांस, मधु तथा और जो कुछ पशुओं से उत्पन्न होनेवाले पदार्थ हैं तथा ऐसेही मैनासिल आदि और पदार्थ एवं मद्य, भात और सकल प्रकार के पक्वान्नों के चुराने में, मध्यस्थ के नियत करे हुए वस्तु के मूल्य से द्विगुणा दण्ड करै ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥ अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डःस्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥

पुष्प, हरे धान्य, गुल्म, लता, वृक्ष और अन्य भी बालोंमें से न निकलेहुए अन्नोंके चुराने पर पांच कृष्णल (रत्ती) सोना वा चाँदी दण्ड करै ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च॥ निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः

बालों से निकला हुआ अन्न, शाक, मूल, और फलोंको, जिससे कोई सम्बन्ध नहीं हो वह चुरावै तो एक सौ पण दण्ड करै और यदि कोई सम्बन्धी पुरुष चुरावै तो पचास पण दण्ड करै ॥ ३३१ ॥

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत् ॥ ३३२ ॥

धान्य आदि पदार्थ, उसके स्वामी के सामने ही कोई बलात्कार से हरलेय तो उसको साहस कहते हैं ऐसा करनेपर सम्बन्धी की समान पचासपण दण्डकरै, पीछेवस्तु लेलेने को और सामने लेकर छुपालेनेको चोरी कहते हैं ऐसा करनेपर असम्बन्धी की समान सौ पण दण्ड होता है ॥ ३३२ ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥ ३३३ ॥

यदि पूर्वोक्त सूत्रादि द्रव्य का स्वामी अपने भोग के निमित्त तयार करै और उसको चुरालेय तथा आग्निक के अग्निस्थान में से अग्नि चुरालेय उसके ऊपर राजा प्रथमसाहस का दण्ड करै ॥ ३३३ ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥

चोर जिस जिस अङ्ग से कूमलदेने आदि की मनुष्यों में चेष्टा करै राजा उसके उस २ अङ्ग कोही कटवादेय, जिससे कि–वह फिर ऐसा न करै ॥ ३३४ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ ३३५ ॥

पिता, आचार्य, मित्र, पुत्र, माता, भार्या, और पुरोहित यह यदि स्वधर्म में स्थित न हों तो राजा इनको भी दण्ड देने में त्रुटि न करै ॥ ३३५ ॥

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ॥ तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३३६ ॥

जिस अपराध में अन्य साधारण पुरुष को एक कार्षापण दण्ड कहा है तहाँ राजा के ऊपर सहस्रपण दण्ड होता है, यह निश्चयहै॥

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ॥ द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥

चोरी के गुण दोषों को जाननेवाला शूद्र यदि चोरी करै तो जिस वस्तु के चुराने में शास्त्रमें जो दण्ड कहा है, उससे आठगुणा दण्ड करै, ऐसे वैश्य के ऊपर सोलहगुणा

दण्ड करै, ऐसे क्षत्रिय के ऊपर छत्तीसगुणा दण्ड करै और ब्राह्मणके ऊपर चौंसठगुणा दण्ड करै अथवा अतिगुणवान् ब्राह्मणके ऊपर सौगुणा दण्ड करै तथा उससे भी अधिक गुणवान् के ऊपर एकसौ अट्ठाईसगुणा दण्ड करै ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥ ३३९ ॥

जो घेरेमें नहीं ऐसे बनस्पतियोंके मूल, फल, होमकी अग्निके काठ, और गौ के खानेको जो घास लेजावे उसके लेजानेको चोरी नहीं कहते हैं, ऐसा मनुजी ने कहा है ॥ ३३९ ॥

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ॥ याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ३४० ॥

ब्राह्मण यदि दण्ड न देनेवाले चोरसे यज्ञ वा अध्ययन कराकर भी धन लेने की इच्छा करै तो वह ब्राह्मण भी चोरकी समान दण्डनीय होता है ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥ आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥ ३४१ ॥

जिसके पास मार्गमें को भोजन नहीं है, ऐसा भूँखसे कातर बटोही ब्राह्मण, दूसरे के खेत में से दो इक्षु (गन्ने) वा दो मूली, खेतके स्वामी के पीछे लेलेय तो दण्ड देनेका पात्र नहीं होता है ॥ ३४१ ॥

असंधितानां संधाता संधितानां च मोक्षकः ॥ दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्यांचोरकिल्विषम् ॥ ३४२ ॥

दूसरे के खुलेहुए अश्वादि को बाँधदेय वा घुड़साल आदि में से घोड़े आदि को खोल देय अथवा दास, घोड़े वा रथको चुरालेय तो वह चोर की समान ताड़ना से लेकर प्राणान्तपर्यन्त दण्ड का भागी होता है ३४२

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ३४३ ॥

इसप्रकार चोरों को दण्डित करता हुआ राजा इस लोक में यश और परलोक में उत्तम सुख पाता है ॥ ३४३ ॥

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ३४४ ॥

जिसमें सब के ऊपर आधिपत्य हो ऐसे राज्यरूप अक्षय यश को चाहनेवाला राजा, एक क्षणभर को भी अग्नि लगानेवाले आदि साहसी की उपेक्षा न करै ॥ ३४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ॥ साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ३४५ ॥

दुर्वचन कहनेवाले, तस्कर और मारपीट करनेवाले पापी पुरुष से भी साहसिक को अधिक पापी जानै ॥ ३४५ ॥

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ३४६ ॥

जो राजा साहस करतेहुए पुरुष की उपेक्षा करता है, वह शीघ्र ही नष्ट होजाता है और जनसमाज में विद्वेष का पात्र होता है ॥ ३४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ॥ समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ३४७ ॥

राजा, मित्रके कहने से वा बहुतसा धन मिलने के लोभ से सकल प्राणियों को दुःख देनेवाले साहसिकों को कभी न छोड़े॥३४७॥

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ॥ द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ३४८ ॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ॥ स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति॥

जहाँ द्विजों के और सब वर्णों के सनातन-धर्म में रुकावट हो वा राजविप्लव (गदर) आदि का समय होय तो, अपनी रक्षा के लिये वा यज्ञ की दक्षिणाके निमित्त संग्राम होनेपर उस के दूर करने को, तथा स्त्री और ब्राह्मणों की रक्षाके निमित्त ब्राह्मणादि तीनों वर्ण शस्त्र ग्रहण करें। ऐसे समय में धर्म से दुष्ट का मारण करनेवाला अपराधी नहीं होता है ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥ आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

गुरु, बालक, वृद्ध, बहुत पढ़ा ब्राह्मण, यह भी यदि अपने मारने को आवें तो कुछ विचार न करके इनका बध करै ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ३५१ ॥

मारनेको उद्यत हुए पुरुषका बध करनेवाले को दोष नहीं होता है, क्योंकि—मारनेवालेका क्रोधाभिमानी देवता युद्धके द्वारा वा अभिचारके द्वारा मारेजानेवाले के क्रोधको निवारण करता है ॥ ३५१ ॥

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः॥ उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्॥

राजा, पराई स्त्रियों से संभोग करने में प्रवृत्त हुए मनुष्यों को, नासिका ओठ कटवाना आदि त्रासकारी दण्डोंसे चिह्नित करके देशसे बाहर करदेय ॥ ३५२ ॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसङ्करः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ३५३ ॥

क्योंकि उस व्यभिचार से ही लोकमें वर्णसङ्करता होती है, जिससे कि—यज्ञादिमें अधिकार न रहने से यज्ञादिका नाशकारी अधर्म प्रवृत्त होकर वर्णसङ्कर सर्वनाश का मूल हो जाता है ॥ ३५३ ॥

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ३५४ ॥

जो पुरुष किसी परस्त्री की प्रार्थनासे पहिले दोषी था, वह यदि निष्कारण अन्य परस्त्रीके साथ एकान्त में किसी प्रकारका वार्त्तालाप करै तो वह पुरुष उत्तम साहस का दण्ड पावेगा ॥ ३५४ ॥

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ३५५ ॥

और जो निर्दोष पुरुष किसी कारण से परस्त्री के साथ सम्भाषण करै तो वह दोष को नहीं प्राप्त होगा, क्योंकि— उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ३५५ ॥

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा॥ नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥ ३५६ ॥

तीर्थ (नदी आदि की पैड़ियों) में ग्राम के लतामण्डप में, निर्जन स्थान में वृक्षों के झुंड में वा नदियों के सङ्गमपर जो पुरुष परस्त्री से

वार्तालाप करे वह परस्त्री सम्भोग का (आगे कहा हुआ) दण्ड (सहस्रपण) पावैगा ॥३५६॥

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ॥ सहखट्वाशनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५७ ॥

माला सुगन्धि आदि देना, हास्य, आभूषण और वस्त्रों को छूना, और एक साथ खाटपर बैठना वा साथ भोजन करना परस्त्री के साथ यह सब व्यवहार व्यभिचार ही हैं ऐसा पण्डितों का कथन है ॥ ३५७ ॥

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ॥ परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५८ ॥

जो पुरुष, स्त्री को, कुच आदि अस्पृश्य स्थान में स्पर्श करै वा स्त्री, पुरुष के अस्पृश्य स्थानों को स्पर्श करै और पुरुष रुष्ट न होय, यह दोनों की अनुमति से होते हैं और यह भी स्त्रीसंग्रह (व्यभिचार) ही कहा है ॥३५८॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥ ३५९ ॥

शूद्र, इच्छा न करनेवाली ब्राह्मणी से दुराचार करने पर प्राणान्तरूप दण्डके योग्य है, चारों वर्ण की स्त्रियें सदा परमरक्षा के योग्य हैं ॥ ३५९ ॥

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥

भिक्षुक, बन्दीजन, यज्ञ में वरण किया हुआ ऋत्विक्, रसोइया आदि शिल्पी, यह प्रायः अपने कार्यवश गृहस्थों की स्त्रियों के साथ सम्भाषण करैं, और गृहस्थ निवारण न करै तो उसमें कोई दोष नहीं होताहै ॥३६०॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ३६१ ॥

स्वामी के निषेध करने पर परस्त्रियों से सम्भाषण न करै, निषेध करने पर सम्भाषण करनेवाला एक सुवर्ण दण्डके योग्य होताहै॥

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ॥ सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥ ३६२ ॥

यह विधि स्वयं अपनी जीविका का उपाय समझकर उन से जीविका करने वाले नटों की स्त्रियों के विषय में नहीं है, वहतो अपनी स्त्रियों को आप मिला देते हैं और कोई स्वयं आवै तो आप छुपकर व्यभिचार कराते हैं।

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ॥ प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥ ३६३ ॥

ऐसी स्त्रियों के साथ सम्भाषण करनेवाला दासी, एक पुरुष के पास एकान्त में रहने वाली और विरक्त होकर फिरने वाली कुछ स्त्रियों के साथ सम्भाषण करने वाला कुछ थोड़े से दण्डके योग्य होता है ॥३६३॥

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ॥ सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३६४ ॥

जो अकामा कन्या में गमन करता है वह शीघ्रही वध के योग्य है और समान जाति का सकाम स्त्री से सम्भोग करै तो वध के योग्य नहीं होता है ॥ ३६४ ॥

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ॥ जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥ ३६५ ॥

उत्तम जाति के पुरुष से सम्भोग करने वाली कन्या के ऊपर कुछ दण्ड न करै और यदि नीच से सम्भोग करै तो जबतक इस कार्य को न छोड़े घर में बन्द करके डालदेय ॥ ३६५ ॥

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥ ३६६ ॥

नीचवर्ण का पुरुष, उत्तम वर्णकी सकामा कन्या से सम्भोग करै तो उस पुरुष को वध का दण्डदेना उचित है, यदि समान वर्ण की सकामा कन्या से सम्भोग करै और उस कन्या का पिताचाहे तो उसको शुल्क (कुछ धन) दिलवादेय ॥ ३६६ ॥

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः ॥ तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम् ॥ ३६७ ॥

जो पुरुष बलात्कार से, सम्भोग न करके घमण्ड में भरकर समानजातिकी स्त्री की योनि में अंगुलि प्रवेश करै तो उसकी दोनों अंगुलि कटवालेय और छःसौ पण दण्ड भी करै ३६७

सकामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात् ॥ द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ३६८ ॥

सकामा समान वर्ण की स्त्री की योनि में यदि इस प्रकार अंगुलिप्रवेश करै तो वह अंगुलि कटने का दण्ड नहीं पासक्ता, परन्तु उसके ऐसे कार्य से हटाने के निमित्त दो सौ पण दण्ड करै ॥ ३६८ ॥

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ॥ शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफा श्चैवाप्नुयाद्दश ॥ ३६९ ॥

और यदि एक कन्या ही दूसरी कन्या को इस प्रकार दूषित करै तो उसके ऊपर दोसौ पण दण्ड करै और दुगना शुल्क दिलवावै तथा दश बेंत लगावै ॥ ३६९ ॥

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति । अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥ ३७० ॥

जो प्रगल्भ स्त्री कन्या को इस प्रकार दूषित करै तो उस स्त्री का शिरमुँडवादेय और दोनों अंगुलियों को कटवादेय तथा गधे पर चढ़ाकर सर्वत्र फिरावै ॥ ३७० ॥

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ॥ तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ३७१ ॥

जो स्त्री पिता आदि बन्धुओं की जाति और अपने सुन्दरता आदि गुणों के घमण्ड से पति का उल्लंघन करै अर्थात् परपुरुष के साथ समागम करे तो उसको राजा बहुत से मनुष्यों के सन्मुख कुत्तों से नुचवावै॥३७१॥

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ॥ अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ३७२ ॥

और उस पापकारी जार पुरुष को तपेहुए लोहे की चटानपर सुलाकर जलावै और जबतक वह भस्म न होजाय तबतक वधक काठ डालते रहैं ॥ ३७२ ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ॥ व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥ ३७३ ॥

परस्त्रीगमन का अपराधी राजा से दण्ड पाकर एक वर्ष बीतनेपर फिर उसी स्त्री के साथ व्यभिचार करे तौ पहिलेसे दुगना दण्ड

करै और व्रात्या स्त्री के साथ वा चाण्डाली के साथ व्यभिचार करै तब भी यही दण्डदेय॥

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्॥ अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते॥ ३७४॥

यदि शूद्र, रक्षा करीहुई वा अरक्षित द्विजाति की स्त्री से व्यभिचार करै तो अरक्षिता के गमन में लिङ्गच्छेद और रक्षिता के गमनमें वध और सर्वस्वहरण दण्ड करै॥ ३७४॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः॥ सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति॥ ३७५॥

वैश्य यदि रक्षिता ब्राह्मणी से संभोग करै तो उसे एक वर्ष कारागार में रखकर सर्वस्व हरण का दण्ड देय, और क्षत्रिय ऐसा करे तो उसके ऊपर सहस्र पण दण्ड करके गधे के मूत्र से मस्तक मुँडवादेय॥ ३७५॥

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ॥ वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम्॥ ३७६॥

वैश्य और क्षत्रिय यदि अरक्षिता ब्राह्मणी से सम्भोग करैं तो वैश्य के ऊपर पांचसौ पण और क्षत्रियके ऊपर सहस्रपण दण्ड करै॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह॥ विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना॥ ३७७॥

यदि वही दोनों रक्षिता ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करैं तो शूद्रकी समान दण्ड देय वा पलेल में लपेटकर भस्म करदेय॥३७७॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन्॥ शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः॥ ३७८॥

रक्षिता ब्राह्मणीमें बलात्कार से गमन करने वाले ब्राह्मण के ऊपर सहस्र पण दण्ड करै, और इच्छा करनेवाली से व्यभिचार करै तो पांचसौ पण दण्ड करै॥ ३७८॥

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते॥ इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत्॥ ३७९॥

जिस अपराध में प्राणान्त दण्ड हो उसमें ब्राह्मण का केवल मस्तक मुँडवा देना ही विहित है, और वर्णों का प्राणान्तक दण्ड होता है॥ ३७९॥

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्॥ राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्॥ १८०॥

सकल पाप करनेवाले भी ब्राह्मणका प्राणान्त कभी न करै किन्तु उसको सर्वस्व सहित अक्षतशरीर अपने नगरसे निकालदेय॥१८०॥

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि॥ तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्॥ १८१॥

पृथ्वीपर ब्राह्मणके वध से बढ़कर और कोई पाप नहीं है, तिस से राजा ब्राह्मण के वध का मन से भी विचार न करै॥१८१॥

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्॥ यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः॥ १८२॥

यदि गुणवान् वैश्य रक्षिता क्षत्रिया में वा क्षत्रिय वैश्य स्त्री में गमन करै तो अरक्षित ब्राह्मणी की समान वैश्य के ऊपर पाँच सौ पण दण्ड और क्षत्रियपर सहस्रपण दण्ड करै॥ १८२॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्॥ शूद्रायां क्षत्रियविशोः सा-

हस्रो वै भवेद्दमः ॥ ३८३ ॥

यदि रक्षिता वैश्यस्त्री वा क्षत्रियामें ब्राह्मण गमन करै तो सहस्रपण दण्ड करै, रक्षिता शूद्रामें वैश्य और क्षत्रिय गमन करैं तो भी सहस्रपण दण्ड करै ॥ ३८३ ॥

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः । मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ३८४ ॥

अरक्षिता क्षत्रिया में यदि वैश्य गमन करै तो पांचसौ पण दण्ड और क्षत्रिय ऐसा करै तो मूत्रसे मुण्डन करादेय और वह चाहें तो पांचसौ पण दण्ड करदेय ॥ ३८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ॥ शतानि पंच दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ ३८५ ॥

अरक्षिता क्षत्रिया वा वैश्यस्त्री अथवा शूद्रा में ब्राह्मण गमन करै तो पाँच सौ पण दण्ड करै और चाण्डाली के साथ संभोग करै तो सहस्र पण दण्ड करै ॥ ३८५ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ॥ न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥ ३८६ ॥

जिसके नगर में न चोर है, न परस्त्रीगामी है, न दुष्टभाषी है और न साहसी न दण्ड प्रहार करनेवाला है वह राजा इन्द्रपुरी में जाता है ॥ ३८६ ॥

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥ ३८७ ॥

राजा का अपने देश में चोर आदि इन पांचों का निग्रह करना, राजसमाज में चक्रवर्ती बनाने वाला और लोक में यश फैलाने वाला होता है ॥ ३८७ ॥

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ॥ शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥ ३८८ ॥

जो यजमान कर्म कराने में समर्थ निर्दोष ऋत्विक् को त्यागै और जो ऋत्विक् निर्दोष यजमान को त्यागै इन दोनों के ऊपर सौ सौ पण दण्ड करै ॥ ३८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ३८९ ॥

माता, पिता, स्त्री और पुत्र यह पोषण शुश्रूषादि न करनारूप त्याग के योग्य नहीं हैं, यदि पतित न होने पर भी इनको त्यागै तो राजा का छःसौ पण दण्ड होगा ॥ ३८९ ॥

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ॥ न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में द्विजों का परस्पर विवाद होने पर राजा अपना हित चाह कर उसमें कुछ का कुछ न कहै ॥ ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ३९१ ॥

इनका यथोचित सन्मान करके, क्रोध को त्यागकर राजा, पहिले शान्ति के वचनों से समझाकर ब्राह्मणों से निर्णय करके उनका स्वधर्म बतादेय ॥ ३९१ ॥

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ३९२ ॥

जिस मङ्गलकार्य में बीस ब्राह्मणों को भोजन कराना हो उसमें यदि योग्य पड़ौसी

और उससे अगले ब्राह्मण को भोजन न करावै तो विप्र एकमाशा दण्ड के योग्य है॥३९२॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन्॥ तदन्नंद्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैवं मांषकम्॥ ३९३॥

यदि श्रोत्रिय विवाहादि मङ्गलकार्यों में सज्जन श्रोत्रिय को न जिमावै तो उसको दुगुना अन्न दिलवावै और एकमाशा सुवर्ण दण्ड करै॥ ३९३॥

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः॥ श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम्॥ ३९४॥

अन्धा, जड़, पंगु, सत्तरवर्ष से अधिक बूढ़ा और श्रोत्रियों का उपकार करने वाला इनसे कोई कर न दिलवावै॥ ३९४॥

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्॥ महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा॥ ३९५॥

श्रोत्रिय, रोगी, शोकातुर, बालक, बूढ़ा, अतिदरिद्र, महाकुलीन और उदारचरित इन का राजा सदा सत्कार करै॥ ३९५॥

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः॥ न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्नच वासयेत्॥ ३९६॥

धोबी सेमल के कोमल पटेपर धीरे २ वस्त्रों को धोवे, एक वस्त्रों में दूसरों के वस्त्रों को बांधकर धोने को न लेजाय और किसी के कपड़े भाड़ालेकर दूसरे को पहिरने के निमित्त भी न देय॥ ३९६॥

तंतुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्॥ अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम्॥ ३९७॥

जुलाहा यदि दशपल सूत बुनने को लेजाय तो मांड़ी आदि लगने के कारण एक पल अधिक देय इसके प्रतिकूल बर्त्ताव करै तो बारहपण दण्ड करै॥ ३९७॥

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः॥ कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत्॥ ३९८॥

व्यापारियों के माल के सब प्रकार के महसूल को जाननेवाले और व्यापार के विषयों में चतुर पुरुष, जितना मूल्य और उस में जितना लाभ बतावें उस लाभ में से बीसवां भाग राजा लेय॥ ३९८॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च॥ तानि निर्हरतो लोभात् सर्वहारं हरेन्नृपः॥ ३९९॥

राजाका सम्बन्ध होनेसे जो वेचनेकी हाथी आदि उस देशकी वस्तु राजाओं के योग्य प्रसिद्ध हों और जिनका बाहर को लेजाना निषिद्ध हो उनको यदि लोभवश कोई पुरुष देशान्तर को लेजाता होय तो राजा उस व्यापारी का सर्वस्व छीनलेय॥ ३९९॥

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी॥ मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्॥ ४००॥

जो पुरुष महसूल के स्थानसे बचकर जाय वा रात आदि असमय में महसूल बचाने के लिये खरीदै बेचै अथवा तोल में अधिक को कम बतावै तो उसके ऊपर वस्तु के मूल्य से आठगुणा दण्ड करै॥ ४००॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ॥ विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ॥ ४०१॥

कितनी दूरसे आया है, कितनी दूर जायगा, कितने दिन रक्खारहने से कितना मूल्य होगा इस समय कितना लाभ है और इसके निमित्त कार्य करनेवालों के भोजनादिमें क्या व्यय हुआ है यह सब विचारकर व्यवहार के सकल द्रव्यों का ऐसा मूल्य निश्चय करै कि-जिससे खरीदने बेचनेवाले को किसी प्रकार की पीड़ा न होय ॥ ४०१ ॥

पञ्चरात्रे पंचरात्रे पक्षे पक्षेऽथवागते॥ कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ ४०२ ॥

जिन वस्तुओं का मूल्य स्थिर न हो उनका पांच २ रात्रि बीतनेपर और जिनका मूल्य स्थिर हो उनका पक्ष २ बीतनेपर राजा फिर विश्वास योग्य पुरुषों के द्वारा मूल्य निश्चित करावै ॥ ४०२ ॥

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ४०३ ॥

सोना चाँदी आदि तोलने के लिये जिस तोल का निश्चय करदिया है और धान्यादिके लिये जो प्रस्थद्रोण आदि तोलका मान कहा है उसकी छः छः मास बीतने पर फिरभी परीक्षा करके निश्चय करता रहै ॥ ४०३ ॥

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ॥ पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४०४ ॥

रीती गाड़ी आदि को पारकरनेपर मल्लाह एक पण लेय, एक पुरुष को उठाकर लेजाने योग्य बोझेपर आधापण, पशु और स्त्री को पार करने पर चौथाई पण और खाली पुरुष को पार करनेपर पणका अष्टमांश लेय॥४०४॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ॥ रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥ ४०५ ॥

व्यापारकी वस्तुओं से भरीहुई गाड़ियोंपर उन वस्तुओं की तोल और मूल्यानुसार उतराई लेय, माल भरनेकी खाली गौन आदिपर कुछ थोड़ीसी और दरिद्र पुरुष से और भी थोड़ी उतराई लेय ॥ ४०५ ॥

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ॥ नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ४०६ ॥

नदी के मार्ग से दूर आना जाना होतो नदी की प्रबलता वा स्थिरता और वर्षा ग्रीष्म आदि समय का विचार करके उतराई का निश्चय करै, समुद्र में पोत (जहाज) पर गमन पवन के अधीन होता है अपने अधीन नहीं अतः उस का महसूल नदीके अनुसार न होकर यथा सम्भव होता है ॥ ४०६ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ॥ ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥४०७॥

दो मास आदि की गर्भिणी स्त्री, यति, वानप्रस्थ, ब्राह्मण, और ब्रह्मचारी उनके पार होने में उतराई न दिलवावै ॥ ४०७ ॥

यन्नावि किञ्चिद्दासानां विशीर्येतापराधतः ॥ तद्दासैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽंशतः ॥ ४०८ ॥

नौका पर चढ़ने वाले की जो वस्तु मल्लाहों के अपराध से नष्ट होजाय उसको सब मल्लाह मिलकर अपने अंश में से दें ॥४०८॥

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दासापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥४०९॥

नौका से जाने वालों का मल्लाहों के अपराध से जो विवाद हो उसका यह निर्णय कहा परन्तु यदि जलमें आंधी आदि दैवी घटना से हानि होय तो नाविक पर दण्ड नहीं होता ॥ ४०९ ॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ॥ पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ ४१० ॥

वैश्यों से व्यापार, व्याजका कार्य, खेती और पशुओं की रक्षा करावै और शूद्र से द्विजातियों का दासकर्म करावै ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ॥ बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥ ४११ ॥

अपनी वृत्ति से धनी ब्राह्मण, निर्वाह करने में अशक्त क्षत्रिय और वैश्य से दयाभाव के साथ रक्षा और व्यापार करवाकर उनका पोषण करै ॥ ४११ ॥

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ४१२ ॥

यदि ब्राह्मण संस्कार करे हुए द्विजों से उन के इच्छा न करने पर प्रभुता से दासकर्म करावै तो राजा छः सौ पण दण्ड करै ।४१२।

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥ दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ ४१३ ॥

शूद्र अन्न वस्त्रादि से प्रतिपालित हो वा न हो, उससे दासकर्म करावै, क्योंकि–विधाता ने उसको ब्राह्मण का दासकर्म करने के लिये ही रचा है ॥ ४१३ ॥

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ॥ निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ ४१४ ॥

संग्राम आदि में से लाया हुआ शूद्र, अपने स्वामी के दासकर्म से छूटजाय तो भी, जैसे शूद्र जाति मरण पर्यन्त नष्ट नहीं होती है तैसे ही उसका दासत्वभी नष्ट नहीं होता है ॥४१४॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ ४१५ ॥

जो युद्ध में से जीतकर लायागया हो, जिसने अन्न के लिये दासपना स्वीकार करा हो, जो घरकी दासीका पुत्र हो, जिसको खरीदा हो, जो दान में मिला हो, जिसका पितादि भी दास रहा हो और राजकीय दण्ड से छूटनेको दास बन गया हो शास्त्र में यह सात प्रकार के दास कहे हैं ॥ ४१५ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ॥ यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥४१६॥

स्त्री पुत्र और दास यह तीन निर्धन कहे हैं अर्थात् इन को जो कुछ मिले वह धन उसका है जिसके कि वह हैं ॥ ४१६ ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत ॥ न हि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥४१७॥

ब्राह्मण, शूद्र दास के धनको निःसंदेह ग्रहण करलेय, क्योंकि–शूद्रका किसी वस्तुपर स्वत्व नहीं है उसका सब धन स्वामी को ग्रहण करना कहा है ॥ ४१७ ॥

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥ ४१८ ॥

वैश्य और शूद्रों से प्रयत्न के साथ अपने अपने कर्म करावै, वह यदि अपने कर्मको मर्यादा से न करेंगे तो उन्मत्त होकर जगत्को व्याकुल कर डालेंगे ॥ ४१८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च । आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥ ४१९ ॥

राजा प्रतिदिन अपने पुरुषों के करे हुए कार्यों का परिणाम, वाहन, नियत आमदनी, व्यय, खान और खजाने को देखै ॥४१९॥

एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन् । व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥

इति मनुस्मृतौ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार इन सब व्यवहारों को समाप्त करता हुआ राजा सकल पाप को दूर करके परम गति पाता है ॥ ४२० ॥

इतिश्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवाद-सहितोऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः । संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥

अब आगे धर्मानुकूल मार्ग में स्थित स्त्री और पुरुषों के परस्पर संयोग और वियोग होनेपर अनादि परम्परा के धर्मों को कहेंगे ॥ १ ॥

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् । विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥

पति आदि सम्बन्धी स्त्रियों को रातदिन में किसी समय स्वतन्त्र न होने दे, अनिषिद्ध रूप रसादि में आसक्त होने पर भी अपने वश में करै ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥

कुमार अवस्था में पिता रक्षा करै, युवती अवस्था में पति रक्षा करै और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करैं, स्त्री कभी स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः । मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

विवाहके योग्य समयपर कन्यादान न करनेवाला पिता निन्दित होता है, ऋतुकाल में स्त्रीसमागम न करनेवाला पति निन्दनीय होता है और पतिका मरण होनेपर माता की रक्षा न करनेवाला पुत्र निन्दा पाता है ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥

अतिसूक्ष्म दुःसङ्गोंसे भी विशेष यत्नके साथ स्त्रियों की रक्षा करै, रक्षा न करनेपर दुराचरण में पड़कर स्त्रियें पिता और पति दोनों के कुलको सन्ताप में डालती हैं ॥ ५ ॥

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् । यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

स्त्रियों की रक्षा करने को सब वर्णों का उत्तम धर्म देखतेहुए दुर्बल पति भी स्त्री की रक्षा करने का यत्न करते हैं ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥

जो प्रयत्नके साथ स्त्री की रक्षा करता है वह अपनी सन्तान, चरित्र, कुल, अपनाआपा और अपने धर्मकी भी रक्षा करलेता है ॥७॥

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते । जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

पति वीर्यरूप से स्त्री में प्रविष्ट होकर गर्भरूप को प्राप्त होने से स्त्री में पुत्ररूप से उत्पन्न होता है, जायाका जायात्व यही है कि-जाया में जन्म होता है (जायते पतिःपुत्ररूपेणास्यामिति जाया)इसलिये उसको जाया कहते हैं, अतः जायाकी सब प्रकार से रक्षा करै ॥८॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।।तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

स्त्री जैसे पति का सेवन करती है वैसी ही सन्तान पाती है अर्थात् शास्त्रानुकूल अपने पति के सेवन से उत्तम सन्तान पाती है और शास्त्रनिषिद्ध परपति के सेवन से नीचसन्तान पाती है, तिससे शुद्ध सन्तान के निमित्त यत्न के साथ स्त्री की रक्षा करै ॥ ९ ॥

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् । एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

बलात्कार से स्त्रियों की पूर्ण रक्षा करने को कोई भी समर्थ नहीं है किन्तु इन आगे कहे हुए उपायों के द्वारा उनकी रक्षा होसक्ती है ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥ शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥ ११ ॥

पति, अर्थ के संग्रह, व्यय, घरकी सामग्री और अपने शरीर की शुद्धि, स्थापित अग्नि की सेवादिकार्य, अन्नका पाक और घर की सामग्री की देखभाल इनकार्योंमें स्त्री को नियुक्त करके अर्थात् इन सब कार्योंका भार स्त्री के ऊपर रक्खे ॥ ११ ॥

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः॥ आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

जो स्त्रियें दुःशीलतासे अपनी रक्षा नहीं करती हैं वह आज्ञाकारी आप्त पुरुषों के घर में रोक रखने परभी अरक्षित होती हैं, और जो आप ही अपनी रक्षा करैं वह सुरक्षित होती हैं ॥ १२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥

मद्यपान, दुष्टसंग, पतिसे विरह, इधर उधर फिरना, असमय सोना और पराये घर वास यह छः स्त्रियोंके व्यभिचारादि दोषके कारण हैं ॥ १३ ॥

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

स्त्रियें रूप की परीक्षा नहीं करती हैं, इन की युवा वृद्धादि अवस्थापर भी श्रद्धा नहीं है, सुरूप हो वा कुरूप पुरुष को पाते ही उससे संभोग करती हैं ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ॥ रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥

पुरुष को देखते ही उसके साथ क्रीड़ा करने की इच्छा से, चित्तकी चञ्चलता से, स्वाभाविक स्नेह शून्य होने से, पतिके यत्न के साथ रक्षा करने पर भी स्त्रियें पति से प्रति-

कूल होकर व्यभिचार करती हैं ॥ १५ ॥

एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

प्रजापति का रचाहुआ इनका ऐसा स्वभाव जानकर इनकी रक्षाका पुरुष विशेष यत्न करै ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ॥ द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयेत् ॥ १७ ॥

शय्या, आसन, भूषण, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोहभाव और कुचाल यह सब स्त्रियोंसे हैं ऐसी सृष्टि के समय मनुजी ने कल्पना की थी ॥

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥ १८ ॥

स्त्रियों को जातकर्मादि क्रिया मंत्रोंसे नहीं है ऐसी मन्त्रमर्यादा की धर्मानुसार व्यवस्था है, इन्द्रिय कहिये धर्मविषय में प्रमाणभूत श्रुतिस्मृति आदि तिनसे रहित हैं, क्योंकि अधिकार नहीं है, और इनको किसी मन्त्र के जप में भी अधिकार नहीं है अतः कोई पाप होनेपर मन्त्र जप से उसका अपनोदन नहीं करसक्ती इसकारण यह केवल मिथ्या पदार्थ हैं ॥

तथा च श्रुतयो बह्वयो निगीता निगमेष्वपि ॥ स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥

स्त्रियों के व्यभिचारस्वभाव में श्रुति का प्रमाण कहते हैं, इनकी व्यभिचारशीलता को प्रकाशित करनेवाली श्रुतियें निगमों में भी कही हैं, और उनके व्यभिचार का प्रायश्चित्त भी उन श्रुतियों में कहा है ॥ १९ ॥

यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ॥ तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥

जो मेरीमाता असती भाव को प्राप्त होकर परघर रहने आदि से परपुरुष के सम्भोग के निमित्त लुभिया गई, इस परपुरुष के सम्भोग की इच्छासे दूषित हुआ जो मेरीमाता का रजस्वरूपवीर्य उसको मेरे पिता शुद्ध करैं, ऐसे अर्थका मन्त्र वेद में वर्णित है, यह निदर्शन है ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किंचित्पाणिग्राहस्य चेतसा ॥ तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥

स्त्री परपुरुष समागमरूप पति का अप्रिय जो कुछ चित्त से विचारती है उसके प्रायश्चित्त का यह मन्त्र है, साक्षात् व्यभिचार के प्रायश्चित्तका नहीं है, ऐसा मनुजी का कथन है॥२१॥

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ॥ तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

स्त्री जैसे गुणवाले पतिके साथ विवाह विधि से मिलित हो स्वामी के उसरूप गुण को ही पाती है, जैसे नदी स्वादु जलवाली हो तो भी समुद्रमें मिलकर खारी होजाती है॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥

इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि—अधमयोनि की कन्या अक्षमाला नामक स्त्री, वसिष्ठ जी से संयुक्त होकर और शारङ्गी नामक स्त्री मन्दपाल ऋषि से मिलकर अति मान्य हुई ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसू-

तयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥

यह तथा और भी अनेकों स्त्री अपकृष्ट जाति में जन्मग्रहण करने पर भी स्वामी के गुण से उत्कृष्ट होगईं ॥ २४ ॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥

यह स्त्री पुरुषों का नित्यका लौकिक शुभ आचार कहा, अब इसलोक में और मरणहोने पर परलोक में सुखके कारणभूत प्रजाओं के धर्म कहताहूँ सुनो ॥ २५ ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥

यह स्त्रियें गर्भाधान के निमित्त परम मङ्गल की पात्र हैं अतः वस्त्राभूषण आदि से सन्मान करने योग्य और घरकी शोभारूप हैं, अधिक क्या घरों में स्त्री और श्री (लक्ष्मी) में कुछ भेद नहीं है, स्त्रीहीनघर श्रीहीनसा होता है ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥ प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥

सन्तान को उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई का पालन और प्रतिदिन के घरके कार्य इनकी स्त्रियें प्रत्यक्ष कारण हैं ॥ २७ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ॥ दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥

सन्तान, अग्निहोत्रादि धर्मकार्य, शुश्रूषा, उत्तम रति, पितरों को और अपने को सन्तान द्वारा स्वर्गलाभ यह सब स्त्री के द्वाराही होताहै ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ २९ ॥

जो स्त्री, मन वाणी और शरीर से सावधान होकर पतिका कोई अनिष्ट नहीं करती है, वह पति के पुण्य से सञ्चित करेहुए स्वर्गादिलोकों में पतिके साथ वास करती है और इसलोक में सज्जनों से पतिव्रता कहलाती है॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥ शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥

पतिका अनिष्ट (व्यभिचार) करने से स्त्री इस लोक में निन्दा पाती है और मरकर सियार की योनि पाती है और क्षय आदि पाप रोगों से पीड़ित होती है ॥ ३० ॥

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥

मन्वादि ऋषि और प्राचीन अन्य महर्षियोंने जो पुत्रविषयक पवित्र उपन्यास कहा है, उस विश्व के उपकारी आख्यान को सुनो ३१

भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ॥ आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

भर्त्ताका पुत्र होता है ऐसा मुनि मानते हैं, भर्त्ता के विषय में मतभेद है, कोई विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनेवाले को और कोई पुत्रोत्पत्ति न करने पर भी विवाहकर्त्ता को भर्त्ता कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्॥ क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥

स्त्री खेतरूप है और पुरुष को बीजरूप

कहा है, उन खेत और बीज दोनों के संयोग से सकल प्राणियों की उत्पत्ति है ॥ ३३ ॥

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित्। उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

जिसका क्षेत्र उसकी सन्तान होगी या उत्पादक की ? इस विषयकी व्यवस्था कहते हैं कि—अनियुक्ता में उत्पन्न सन्तान उत्पादक की होती है तहां वीज की प्रधानता कारण होती है, कहीं क्षेत्र की प्रधानता होती है, जिस का क्षेत्र उसकी ही सन्तान, परन्तु जिस सन्तान में क्षेत्र और वीज दोनोंकी समानता हो वह सन्तान प्रशंसनीय होती है ॥ ३४ ॥

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥

बीज और योनि इन दोनों में बीज उत्तम कहाता है, क्योंकि—सब भूतों की उत्पत्ति में बीज (पुरुष) के वर्ण रूपादि के चिह्न प्राय: दीखते हैं ॥ ३५ ॥

यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ॥ तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

उत्पत्ति योग्य समय आने पर क्षेत्रमें जैसा बीज बोयाजाता है वह बीज उसक्षेत्रमें अपने वर्णादि से उपलक्षित अङ्कुररूप होता है॥३६॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ॥ न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥ ३७ ॥

सबही भूमिजात सकल गुल्मलतादिकी उत्पत्ति का कारण क्षेत्रको कहते हैं, परन्तु होके उद्भिद्वस्तु क्षेत्रके अनुसार गुण धर्मों को ग्रहण नहीं करती है किन्तु सबही बीजके अनुसार गुण धर्मों को ग्रहण करते हैं॥३७॥

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

किसान एक खेतके अनेकों स्थान में अनेकों बीज बोते हैं परन्तु उन बीजों से उत्पन्न हुई कोई वस्तु क्षेत्र के धर्मको ग्रहण नहीं करती है वह अपने २ बीजके समान ही रूप-गुण युक्त उत्पन्न होते हैं ॥ ३८ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः । यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥

व्रीहि, शालि, मूंग, तिल, जौ, लहसुन और इक्षु (गन्ना) यह सब बीज के गुणों के अनुसार ही गुणों से युक्त उत्पन्न होते हैं॥३९॥

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते॥ उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति॥

और बोयाजाय और उत्पन्न होजाय ऐसा नहीं होसक्ता किन्तु जिसका जो बीज बोया जाता है वह वही उत्पन्न होता है ॥ ४० ॥

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ ४१ ॥

इसकारण बुद्धिमान, वेद शास्त्रादिके ज्ञाता जो विनीत पुरुष जीवन की आशा करै वह कभी भी परस्त्री में बीज न बोवै ॥ ४१ ॥

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥ यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

जैसे कि—परस्त्री में पुरुष बीज बोवै, इस विषय में पूर्वकाल के ज्ञाता पण्डित वायु की

पितेव पालयेत्पुत्रान्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः । पुत्रवच्चापि वर्तेरन्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ १०८ ॥

बड़ा भ्राता छोटे भाइयोंका पुत्रों की समान पालन करै और छोटे भ्राता भी बड़े भ्राता के साथ पुत्रों की समान धर्मानुकूल व्यवहार करैं ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः । ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥ १०९ ॥

धनका विभाग न करने पर यदि ज्येष्ठ भ्राता धार्मिक होय तो छोटे भ्राता भी उसको देख कर धार्मिक होजाते हैं इस लिए ज्येष्ठही कुल को बढ़ाता है और अधार्मिक होय तो छोटे भ्राता भी क्रम से उसके अनुसार बर्त्ताव करते २ सब अधर्मी होजाते हैं इस प्रकार ज्येष्ठही कुल को नष्ट करदेता है, गुणवान् ज्येष्ठ लोक में अत्यन्त पूजनीय होता है और सत्पुरुष उस की निन्दा भी नहीं करते हैं ॥ १०९ ॥

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः । अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥ ११० ॥

जो ज्येष्ठ भ्राता छोटे भ्राताओं के साथ पिता की समान व्यवहार करता है वह छोटे भ्राताओं का माता पिता की समान माननीय है और ज्येष्ठभ्राता के सा बर्त्ताव न करै तो वह चचा मामा आदि की समान सत्कारके योग्य है ॥ ११० ॥

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया । पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ १११ ॥

इसप्रकार बिना बिभाग करे इकट्ठे रहैं अथवा अलग २ प्रत्येक घरमें पञ्चमहायज्ञादि धर्मानुष्ठान करने की इच्छा करके अलग २ होकर रहैं, क्योंकि-इकट्ठे रहने की दशा में एक के पञ्चमहायज्ञादि करनेपर वह सबका करा-हुआसा होता है, पृथक् २करने की आवश्यकता नहीं है और अलग २ करने से धर्म की वृद्धि होती है अतः अपना २ धर्म-कर्म अलग २ करैं ॥ १११ ॥

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ ११२ ॥

सब भ्राता मिलकर जब पिता का धन बांटैं तब विभाग से पहिले उस सब धन के बीसभाग करके उसमें से एक भाग चाहनेवाले ज्येष्ठको देय और सब द्रव्यों में जो श्रेष्ठ होय वह ज्येष्ठ को देय। मध्यम को चालीस भाग करके उसमें का एक भाग और सबसे छोटे को अस्सी भाग करके उसमें का एक भाग देय और शेष धनको सब समान भाग करके बांटैं ॥ ११२ ॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् । येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ ११३ ॥

ज्येष्ठ और सबसे छोटा यह दोनों पूर्व कहे अनुसार विभाग लैं, उनके सिवाय जितने मध्यम पुत्र हों उनका मध्यम धन (चालीसवां भाग) होगा ॥ ११३ ॥

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः । यच्च सातिशयं किञ्चिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ११४ ॥

यदि ज्येष्ठ भ्राता गुणवान् और अन्य भ्राता निर्गुण हों तो विभाग से पहिले ज्येष्ठ को सब द्रव्यों में से श्रेष्ठ वस्तु और जिसका विभाग न होसकै ऐसी देवप्रतिमादि श्रेष्ठ वस्तु

और गौ आदि दश पशुओं में से एक श्रेष्ठ पशु देय ॥ ११४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किञ्चिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ ११५ ॥

सब भ्राता विद्या आदि में समान गुण हों तो वह पूर्वोक्त उद्धार नहीं होता है ऐसी दशा में ज्येष्ठ के सन्मान के लिये कोई वस्तु देदें ॥ ११५ ॥

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ॥ उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥ ११६ ॥

ऐसे उद्धार का भाग करने के अनन्तर शेष सब धन के समान भाग करैं और यदि ऐसा उद्धार करके विभाग न होय तो आगे के श्लोक में कही हुई रीति से विभाग करैं ॥ ११६ ॥

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ११७ ॥

दोभाग ज्येष्ठ लेय, मध्यम पुत्र डेढ़भाग लेय और मध्यम से आगे के निर्गुण कनिष्ठ भ्राता एकभाग लें यह शास्त्रोक्त व्यवस्था है ॥ ११७ ॥

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ॥ स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥ ११८ ॥

जब सहोदर भ्राता पिताके धनका विभाग करैं और यदि अविवाहिता बहिन होयँ तो उनके विवाहके लिये अपने २ भाग का चतुर्थांश उनको दें और यदि न दें तो पतित होते हैं ॥ ११८ ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ११९ ॥

और विभाग के समय यदि एकशफ घोड़े आदि वा बकरी, भेड़ें विषम अर्थात् भ्राताओं की संख्या से कमती बढ़ती हों अर्थात् जैसे तीन भ्राता और एक घोड़ा आदि होयतो उस का विभाग न करके ज्येष्ठको देदेय और चार भ्राता और पांच घोड़े आदि हों तो एक ज्येष्ठ को देकर चार का विभाग करलें ॥ ११९ ॥

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

यदि छोटा भ्राता नियुक्त होकर ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करै और उस पुत्रके साथ वह छोटा भ्राता जब पिता के धनका विभाग करै तब वह पौत्र अपने पिता की समान ज्येष्ठ का भाग नहीं पावेगा, किन्तु दोनों का समान विभाग होगा ऐसी धर्मानुकूल व्यवस्था है ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ॥ पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ १२१ ॥

अप्रधान क्षेत्री का पुत्र, प्रधान क्षेत्री पिता की समान भाग धर्मानुसार नहीं पासक्ता, अपने क्षेत्र से सन्तान उत्पन्न करने में ही क्षेत्री की प्रधानता है इसकारण पूर्व जो समानभाग कहा है उसको ही ग्रहण करै ॥ १२१ ॥

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ १२२ ॥

यदि प्रथम विवाहिता पत्नी में कनिष्ठ सन्तान होय और पिछली विवाहिता स्त्री में ज्येष्ठ सन्तान होय तो तहाँ कैसे विभाग होय, ऐसा

सन्देह होय तो ॥ १२२ ॥

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥

प्रथम विवाहिता का पुत्र कनिष्ठ होने पर भी माता के बड़ी होने के कारण उसके सन्मान के लिये एक श्रेष्ठ वृषभ उद्धार पावै, और उस श्रेष्ठ वृषभ से कम श्रेष्ठ जो और वृषभ हों उनमें से एक २ द्वितीय विवाहिता स्त्री के, अवस्था में बड़े पुत्र लें अर्थात् द्वितीय की अपेक्षा प्रथम विवाहिता स्त्री श्रेष्ठ है ॥१२३॥

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभ षोडशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥ १२४ ॥

यदि प्रथम विवाहिता का ही पुत्र द्वितीय विवाहिता के पुत्रों से बड़ा होय तो वह पहिले पन्द्रह गौ और सोलहवाँ वृषभ लेलेय तब अन्य अपनी २ माता के विवाह के क्रमसे ज्येष्ठपने के अनुसार शेष गौओं में से बांटलें यह निश्चित व्यवस्था है ॥ १२४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ॥ न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ १२५ ॥

समान वर्ण की स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्रों का विभाग किसी विशेष प्रकार का नहीं होता है, क्योंकि—उनमें माता की ज्येष्ठता से ज्येष्ठता नहीं है अतः उनमें जन्म से ही बड़ाई छुटाई मानी जाती है ॥ १२५ ॥

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् ॥ यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ १२६ ॥

केवल जन्म से ज्येष्ठ को ही ज्येष्ठ का उद्धार मिलेगा ऐसा नहीं है, किन्तु "ज्योतिष्टोमयाप्यो अमुकस्य पिता यजते" इसप्रकार पिता पुत्रका नाम लेकर आह्वान करने में जन्म से ज्येष्ठ पुत्रका ही आह्वान होगा और एकसाथ उत्पन्न हुओंमें जो पहिले भूमि पर आया होगा उसको जन्मसे ज्येष्ठ कहाजायगा॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥ १२७ ॥

जिसके पुत्र न हो कन्याही हो वह इस प्रकार कन्या को पुत्रिका करै कि—जामाता को दानदेते में यह नियम करलेय कि इसमें जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा श्राद्धादि करनेवाला होगा ॥ १२७ ॥

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ॥ विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ १२८ ॥

पहिले दक्ष प्रजापति ने स्वयं अपने वंशकी वृद्धि के लिये इसप्रकार अनेकों पुत्रिका करीं थीं ॥ १२८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥ १२९ ॥

उन दक्षप्रजापति ने होनहार पुत्रिकापुत्रों की आशा पर दश कन्या भगवान धर्म को, तेरह कन्या कश्यपजी को और चंद्रमाको प्रसन्नता के साथ सत्ताईस कन्या दीं थीं१२९

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा॥तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥

जैसे आत्मा है वैसे ही पुत्र है, इन दोनोंमें भेद नहीं है और पुत्रिका करी हुई कन्या भी पुत्र की समान है अतएव पुत्रहीन धनीके धन

को ऐसी पुत्रिका अपनी के होते हुए दूसरा कैसे लेसक्ता है ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१ ॥

माता के धनको कुमारी कन्याही पावेगी पुत्र नहीं अर्थात् पुत्र और कुमारी दोनों के होनेपर कुमारी पावेगी पुत्र नहीं, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि-कुमारी के अभाव में पुत्र पावेगा, कुमारी कन्या और पुत्र दोनों के न होनेपर विवाहिता पुत्री पावेगी तथा पुत्र नहोय तो पुत्रिका का पुत्ररूप दौहित्र ही सबधन पावेगा।

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्॥ स एव दद्याद् द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ १३२ ॥

पुत्रहीन मातामह (नाना)का सब धन दौहित्र ही लेय, और वह पुत्रिका पुत्र मातामह तथा पिता का पिण्डदान करै एवं उनका धन भी पावे ॥ १३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ १३३ ॥

पौत्र और दौहित्रमें लोकमें धर्मानुसार कोई अंतर नहीं है, क्योंकि-पौत्र और दौहित्र इन दोनों के माता पिता उसके शरीर से उत्पन्न हुये हैं ॥ १३३ ॥

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥ १३४ ॥

यदि पुत्रिका करलेने पर पुत्र उत्पन्न होजाय तो पुत्र और पुत्रिका दोनोंका समानभाग होयगा, पुत्रिका के ज्येष्ठ होनेपर भी स्त्रीत्व के कारण ज्येष्ठता नहीं मानीजाती है १३४ ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभर्त्ता हरेतैवाविचारयन् ॥ १३५ ॥

पुत्रिका पिताका धन पाकर यदिपुत्रहीन दशा में ही मरजाय तो धनाधिकारी के क्रम से उस पुत्रहीन पुत्रिकारूप पुत्रके धनमें उस के पिता का अधिकार नहीं होगा, वह धन निःसंदेह उसका पति पावेगा, हां यदि पति न होय तो उस धनको पिता आदि लेसक्ते हैं ॥

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम् ॥ पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ १३६ ॥

विवाह के समय जामाता से जिसका वचन नहीं लिया वह अकृता और जिसका वचन करलिया वह कृता कहाती है, इन दोनों प्रकार की पुत्रिकाओं से जो पुत्र उत्पन्न होय उस पुत्र से मातामह पौत्रवान् होता है अतएव यहपौत्र पिताका वा मातामहका पिण्डदान करै और इनका धन लेय ॥ १३६ ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते॥अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ १३७ ॥

पुत्रसे मनुष्य स्वर्गादि लोकों को जीतता है, पौत्र इन स्वर्गादि लोकों को चिरस्थायी करता है और पौत्रके पुत्र होने से सूर्यलोक मिलता है (दायप्रकरण में पुत्रादि की प्रशंसा करने का यह तात्पर्य है कि-पुत्रादि के न होने पर पौत्रादि धन के स्वामी होते हैं) ॥ १३७ ॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १३८ ॥

क्योंकि-पुत्र पुन्नाम नरक से पिताका निस्तार करता है इसकारण ब्रह्माजीने स्वयं ही

उसको पुत्रशब्द से कहा है ॥ १३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते। दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥ १३९ ॥

पौत्र और पुत्रिका का पुत्ररूप दौहित्र इन दोनों में कुछ विशेषता शास्त्र नहीं कहता है, क्योंकि-पुत्रिका का पुत्ररूप पौत्र परलोक में पिण्डदानादि से धनीका उसी प्रकार निस्तार करता है, इसकारण इन दोनोंका धनमें समान अधिकार है ॥ १३९ ॥

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः। द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥

पुत्रिका पुत्र पहिले माताका पिण्डदान करै, दूसरा पिण्ड माताके पिताको देय और तदनंतर प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको पिण्डदेय ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः। स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥ १४१ ॥

यदि दत्तक लेनेके अनन्तर औरसपुत्र उत्पन्न होय और वह दत्तक यदि विद्यादि सर्वगुणवान् होय तो वह पिताका सबधन पावेगा, चाहे दूसरे गोत्र का ही होय ॥ १४१ ॥

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित्। गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥ १४२ ॥

दत्तक अपने पिताका गोत्र और धन कभी नहीं पासक्ता है, गोत्र और रिक्थ लेना पिंडदान का कारण होता है अतएव दाता के श्राद्धादि में दत्तक का अधिकार नहीं है ॥१४२॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात्। उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥ १४१ ॥

गुरुजनोंने जिसको नियुक्त नहींकरा है उस स्त्री से उत्पन्न हुई संतान और पुत्रवती नियुक्ता में देवर आदि से उत्पन्न हुई संतान यह पिताके धन वा भाग पाने के योग्य नहीं है, क्योंकि अनियुक्ता में उत्पन्न हुए को और जारजात नियुक्ताजात को कामज कहा है॥१४३॥

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः। नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥ १४४ ॥

और नियुक्ता स्त्रीमें यदि घृत मलना, मौन होना आदि नियोग की कहीहुई विधि के बिना संतान उत्पन्न होय तो वह पिता के धन को पाने के योग्य नहीं होती, क्योंकि-वह पतित से उत्पन्न हुई है ॥ १४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः। क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥ १४५ ॥

नियुक्ता के उत्पन्न हुई गुणवान् क्षेत्रज्ञ सन्तान क्षेत्री के और सपुत्र की समान पिता के धन का भागलेय, क्योंकि-वह बीज क्षेत्रिक का है और वह संतान भी धर्म से है ॥१४५॥

धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च। सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ १४६ ॥

यदि विभक्त होकर मरण को प्राप्त होनेवाले भ्राता की स्त्री उसके धनकी रक्षा न कर सके तो गुरुजनों की नियुक्त करी हुई उस भ्राता की स्त्री में द्वितीय भ्राता सन्तान उत्पन्न करके वह धन उस संतान को देदेय ॥ १४६ ॥

या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नु-

यात् ॥ तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ १४७ ॥

नियुक्ता स्त्री यदि अपने आप कामना प्रकाश करके देवरादि से संतान प्राप्त करै तो उस संतान को कामज, पिता के धन की अनधिकारी और वृथा उत्पन्न कहते हैं ॥१४७॥

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत॥

सवर्णा स्त्री में एक पुरुष से उत्पन्न हुई संतान के विभाग की यह विधि जाननी, अब सवर्ण असवर्ण अनेकों स्त्रियों में एक पुरुष से उत्पन्न हुए पुत्रोंके विभाग की व्यवस्था सुनो॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥१४९॥

ब्राह्मण के यदि क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति की स्त्रियें विवाहिता हों और उन सब स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न होय तो उनके विभाग की विधि यह आगे कही है॥

कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च ॥ विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ १५० ॥

ब्राह्मणी के पुत्र को विभाग से पहिले हल जोतने वाला पुरुष, ग्याभन करने वाला बृषभ और घोड़ा आदि सवारी, आभूषण, प्रधान स्थान और जितने भाग हों उनमें से एक प्रधान अंश उद्धार देकर शेषका आगेके श्लोकमें कही हुई रीति से विभाग कर लेय ॥१५०॥

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ॥ वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५१ ॥

ब्राह्मण तीन अंश, क्षत्रिय दो अंश, वैश्या का पुत्र डेढ़ अंश और शूद्रा का पुत्र एक अंश पावै ॥ १५१ ॥

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ॥ धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित् ॥ १५२ ॥

अथवा उद्धारभाग न करके पिता के सब धन को दश भाग में करके, धर्मज्ञ पुरुष इस आगे कही हुई विधि से धर्मानुकूल विभाग करै १५२

चतुरोऽशान् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः॥वैश्यापुत्रो हरेद् द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५३ ॥

ब्राह्मण चार भाग लेय, क्षत्रिया का पुत्र तीन भाग लेय, वैश्याका पुत्र दो अंश लेय और शूद्रा का पुत्र एक भाग लेय ॥ १५३ ॥

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत्॥ नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥

यद्यपि द्विजाति के चारों वर्ण के पुत्र हों चाहे द्विजाति के सवर्ण पुत्र न हों तथापि ब्राह्मणादि का शूद्रासे उत्पन्न पुत्र दशमभागसे अधिक नहीं पावेगा, इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणके स्वजातीय पुत्र न होनेपर क्षत्रियापुत्र और वैश्यापुत्र सब धन पावेंगे ॥ १५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्॥यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥ १५५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का निर्गुण शूद्रापुत्र तथा अनूढा शूद्रा का पुत्र धनका भागी न होगा, उसको पिता जो कुछ देदेगा वही उसका धन होगा ॥ १५५ ॥

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ॥ उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजे-

रन्तितरे समम् ॥ १५६ ॥

द्विजातियों के समान वर्णकी स्त्रियों में जो उत्पन्न हुए हों वह सब पुत्र ज्येष्ठ भ्राता को उद्धार देकर अन्य समान भाग करके बांटलें।

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते।तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ १५७ ॥

शूद्र की अपने वर्ण की भार्या विहित है अन्यवर्ण की नहीं, उस स्त्री में उत्पन्न चाहें सौ पुत्र हों सब का समान भागही होगा॥१५७॥

पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः ॥ तेषां षड् बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥ १५८ ॥

स्वायम्भुव मनुने मनुष्यों के जो बारह पुत्र कहे हैं उन में से पहिले छः बान्धव भी हैं और सगोत्रों के दायाद (भाग पाने वाले) भी हैं, तथा पिछले छः दायाद नहीं हैं केवल बान्धव ही हैं अर्थात् सपिण्ड समानोदक के पिण्ड तर्पणादि के अधिकारी हैं ॥ १५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोऽत्पन्नो ऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ १५९ ॥

औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध यह छः सगोत्र दायाद तथा सब पिण्डतर्पणादि के अधिकारी बान्धव हैं।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ॥ स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ १६० ॥

कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयन्दत्त और शौद्र यह सगोत्र वा भिन्नगोत्र का दायभाग नहीं पासक्ते, केवल उन के श्राद्धादि के अधिकारी हैं ॥ १६० ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम् ॥ तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः ॥ १६१ ॥

तृणादि की बनी कुत्सित नौकाओं से जल को पार करता हुआ पुरुष जैसा डूबजानारूप फल पाता है तैसेही क्षेत्रजादि निन्दित सन्तानों के द्वारा नरक से उद्धार चाहनेवाला असह्य पारलौकिक कष्टरूप फल पाता है ॥ १६१ ॥

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ॥ यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥ १६२ ॥

क्षेत्रिक पिता के क्षेत्रज पुत्र के अनन्तर यदि औरस पुत्र उत्पन्न होजाय तो वह दोनों यद्यपि एक पिताके धनको पाने योग्य होते हैं तथापि जो जिसके उत्पादक पिता का धन होय वही उसको लेय दूसरा न लेय ॥१६२॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥ शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥ १६३ ॥

पिता के धन का स्वामी एक औरस पुत्र ही है, चाहे वह क्षेत्रजादि पुत्रको ग्रहण करने के अनन्तर हुआ हो, परन्तु उन क्षेत्रजादि का अन्न वस्त्रादि से पालन करै, जिससे कि वह बुभुक्षित होकर पापलिप्त न होजायँ ॥ १६३॥

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥ १६४ ॥

औरस पुत्र जिस समय पिता के धनका विभाग करै तब निर्गुण क्षेत्रज को अपने भाग का छठाभाग देय और गुणवान को पंचम भाग देय ॥ १६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ॥ दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ १६५ ॥

औरस और क्षेत्रज पुत्र इस प्रकार पिता के धन को बाँटलें, इनके सिवाय दत्तक आदि अन्य दश गोत्र के भागी होते हैं और क्रमसे अर्थात् पूर्व२ के अभाव में धन के भागी होते हैं॥

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्। तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम्॥ १६६॥

कन्या अवस्था में विवाहित अपने वर्ण की स्त्री में जिसको स्वयं उत्पन्न करै उसको औरस जानै और वही पुत्र सबों में मुख्य माना है॥ १६६॥

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा। स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः॥ १६७॥

पुत्रहीनही मरण को प्राप्त हुए पुरुष का, नपुंसक का वा शक्तिहीन का अपने धर्मानुसार गुरुजनों की नियुक्त करी हुई स्त्री में सपिण्डादि से जो पुत्र उत्पन्न होय उसको क्षेत्री का क्षेत्रज पुत्र कहते हैं॥ १६७॥

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः॥ १६८॥

माता, पिता ग्रहण करने वाले के पुत्र हीनता रूप आपत्तिकाल में जिस प्रीतिसंयुक्त समानवर्ण के पुत्र को हाथ में जल लेकर दें इसको दात्रिम (दत्तक) पुत्र जानना॥१६८॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्। पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः॥ १६९॥

श्राद्ध करने में क्या गुण है और न करने में क्या दोष है इसके ज्ञाता, माता, पिताकी सेवा करना आदि पुत्र के गुणों से युक्त जिस समान वर्ण के को पुत्र करलेय उसको कृत्रिम पुत्र जानना॥ १६९॥

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः। स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः॥ १७०॥

जिसके घर में स्थित स्त्री के पुत्र उत्पन्न हो और यह सजातीय है ऐसा जाननेपरभी यह कौनसे पुरुष से उत्पन्न हुआ है इसका पता न लगै तो वह घर में गुप्तरीति से उत्पन्न हुआ गूढोत्पन्न पुत्र उसका होगा जिसकी स्त्री में हुआ है॥ १७०॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा। यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते॥ १७१॥

माता पिता, दोनों के त्यागे हुए अथवा माता के देहान्त होनेपर पिताके त्यागेहुए वा पिता के मरण होनेपर माता के त्यागेहुए जिस पुत्र को ग्रहण करै वह ग्रहण करनेवाले का अपविद्ध पुत्र कहाता है॥ १७१॥

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम्॥ १७२॥

कन्या पिता के घर एकान्त में समान वर्णके पुरुष से जिस पुत्रको उत्पन्न करै, उस को कानीन नाम से कहै उस कन्या से जो विवाह करै वह सन्तान उसका कानीन पुत्र कहावेगा॥ १७२॥

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती। वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते॥ १७३॥

जिस को गार्भिणी जानकर वा न जानकर उससे जो पुरुष विवाह करै वह गर्भ उस विवाहने वाले काही होता है और उस गर्भ

रची गाथाओं को कहते हैं ॥ ४२ ॥

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः॥ तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥४३॥

जैसे दूसरे के बाण से बिधे हुए मृगके विद्ध छिद्र में दूसरे का छोड़ा हुआ बाण निष्फल है अर्थात् वह बिधा हुआ मृग पहिले पुरुष को ही मिलेगा तैसेही परस्त्री में निक्षेप करा हुआ बीज निष्फल है, उसका फल क्षेत्री को ही मिलता है ॥४३॥

पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

इस विषयमें दृष्टान्त यह है कि इस पृथ्वी के अनेकों स्वामी होगये हैं और आगे को भी होंगे, परन्तु पहिला स्वामी राजा पृथु था इसकारण यह पृथ्वीनाम से प्रसिद्ध है अर्थात् पृथु की स्त्रीरूप से प्रसिद्ध है, जङ्गल को काट कर जो बसाता है उसके नाम से यह पृथ्वी प्रसिद्ध होती है और जो पहिले बाणसे मृग को बेधे उस मृगको उसका ही कहते हैं ॥४४॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ॥ विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥ ४५ ॥

मनुष्य अकेलाही पुरुष नहीं है किन्तु भार्या आप और अपत्य मिलकर पुरुष है, पुरुष अकेला आधा और स्त्रीसहित पूर्ण होता है, क्योंकि जो भर्ता है वह स्त्री से भिन्न नहीं है। तात्पर्य यह कि– जिसकी स्त्री उसमें उत्पन्न सन्तान भी उसी की होती है उत्पादक की नहीं ॥ ४५ ॥

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ॥ एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ॥४६॥

बेचने वा त्यागने से स्त्री का पतिके साथ का सम्बन्ध दूर नहीं होता है, यही पहिले प्रजापति ने कहाहै और इसकोही हम धर्म जानते हैं, तात्पर्य यह कि–बेचने वा त्यागने पर भी दूसरे की उत्पादित सन्तान पति की होगी॥४६॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते- सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ ४७ ॥

भ्राता मिलकर शास्त्र के अनुसार यदि पिता के धनादि का विभाग करलें तो वह एकबार ही होगा फिर लौट नहींसक्ता, पिता आदि ने जिस कन्या को एकवार दियाहो फिर वह दूसरे को नहीं देसक्ते तात्पर्य यह कि–यदि वह एकवार कन्यादान करके फिर दूसरे को देदे और ग्रहीता उसमें सन्तान उत्पन्न करै तो वह सन्तान उत्पन्न करनेवाले की नहीं होगी किन्तु पूर्वग्रहीता की होगी, ऐसेही जो पशु वस्त्रादि पदार्थ एकवार किसी को देदिये वह दुसराकर दूसरे को नहीं देसक्ता ॥ ४७ ॥

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ॥ नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥

जैसे पराई गौ, घोड़ी, ऊँटनी, दासी, भैंस, बकरी और भेड़ में अपने बैल आदि से सन्तान को उत्पन्न करने वाला उस सन्तान को नहीं पाता है तैसेही परस्त्री में उत्पन्न सन्तान उत्पादक की नहीं होती है, स्त्री के स्वामी

१ तथात्र वाजसनेयब्राह्मणम्–अर्द्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्मात् यावज्जायां न विन्दते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति।

कीही होती है ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ॥ ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥

जो क्षेत्रके स्वामी नहीं हैं, बीजवाले हैं और परक्षेत्र में बीज बोते हैं वह पीछे उत्पन्न होने वाले धान्यरूप फल को नहीं पाते हैं ॥४९॥

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ॥ गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥ ५० ॥

एक बैल अन्य की गौओं में सौ वत्स उत्पन्न करदेय, वह वत्स गौवालों के ही होंगे। वृषभ का वीर्य स्वामी के सम्बंध में निष्फल जाता है ॥ ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥ ५१ ॥

तैसे ही जिनका क्षेत्र नहीं है ऐसे पराये क्षेत्र में बीज बोनेवाले क्षेत्र के स्वामी का प्रयोजन करते हैं, क्योंकि उसका फल बीज वाला नहीं पाता है ॥ ५१ ॥

फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ॥ प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

इस स्त्री में उत्पन्न सन्तान हम दोनोंकी होगी ऐसा नियम विना हुए यदि पराई स्त्री में कोई सन्तान उत्पन्न करै तो वह सन्तान निःसन्देह क्षेत्री की होगी, बीज से योनि बलवान् है॥५२॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥ ५३ ॥

इसमें उत्पन्न सन्तान हम दोनों की होगी ऐसा नियम करके बीज बोने को यदि स्वामी क्षेत्र देय तो उसमें उत्पन्न हुई सन्तान क्षेत्रिक और बीजी दोनों की होती है ॥ ५३ ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥

यदि जलके प्रवाह वा वायु के वेग से एक खेत में का बोया हुआ बीज दूसरे खेत में चलाजाय तो वह बीज खेतवाले का ही होगा, बीजवाला उसका फल नहीं पासक्ता ॥५४॥

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ॥ विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥

यही व्यवस्था गौ, घोड़ी, दासी, ऊँटनी, बकरी, भेड़, पक्षी और भैंस की सन्तानके विषय में भी जाननी ॥ ५५ ॥

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥

यह बीज और क्षेत्र की प्रधानता और अप्रधानता तुम से कही, अब आगे स्त्रियोंके आपत्तिकाल में के धर्म कहेंगे ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥ यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ५७ ॥

बड़े भ्राता की स्त्री है वह छोटे भ्राता की गुरुपत्नी (माता की समान) है और छोटे भ्राता की जो स्त्री वह ज्येष्ठ भ्राताकी पुत्रवधू की समान कही है ॥ ५७ ॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥

सन्तान होतेहुए यदि ज्येष्ठ भ्राता नियुक्त होकर भी छोटे भ्राता की स्त्री में गमन करै, इसी दशा में यदि छोटा भ्राता ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री में गमन करै तो दोनों पतित होजाते हैं॥

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ॥ प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥

सन्तान के न होने पर स्त्री, पति आदि के नियुक्त करने पर देवर अथवा और किसी सपिण्ड से इच्छित सन्तान प्राप्त करै ॥५९॥

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन ॥ ६० ॥

विधवा वा सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता वाले पति के न होने से विधवासमान स्त्री में पति आदि गुरुजनों का नियुक्त कराहुआ (देवर वा कोई सपिण्ड) शरीर पर घी लगाकर मौन धारण करेहुए रात्रि में एक पुत्र उत्पन्न करै, दूसरा पुत्र किसी प्रकार नहीं॥६०॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः॥अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥

कोई कोई आचार्य कहते हैं कि-एक पुत्र अपुत्रों में गिनाजाता है, इसलिये एकपुत्र से नियोग का प्रयोजन न हुआ देखकर दूसरा पुत्रोत्पादन भी धर्म से मानते हैं ॥ ६१ ॥

विधवायां नियोगार्थे निर्वृते तु यथाविधि॥ गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

इसप्रकार शास्त्रानुसार विधवामें नियोगफल (गर्भधारण) होने के अनन्तर बड़ा भ्राता और छोटे भ्राताकी स्त्री यह दोनों परस्पर गुरु और पुत्रवधू की समान पूर्ववत् मानैं ॥ ६२ ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातां तु कामतः ॥ तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥

बड़ा और छोटा भ्राता नियुक्त होकर भी यदि घृत के अभ्यङ्ग को त्यागकर फिर कामवश समागम करें तो बड़ा भ्राता स्नुषा (पुत्रवधू) में गमन करनेके और छोटा भ्राता गुरुरूप ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री में गमन करनेमें पापसे लिप्त होकर दोनों पतित होजाते हैं॥६३॥

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः॥ अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥ ६४ ॥

नियोगकी विधि कहकर फिर निषेध करते हैं:- द्विजाति कभी अन्यकी स्त्री को अन्यपुरुष में नियुक्त न करे यदि ऐसा नियोग करे तो अनादिपरम्परागत सनातनधर्म को नष्ट करते हैं६४

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥ न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥

विवाहके जो सकल मन्त्र हैं उनमें ऐसा प्रकाशित नहीं होता कि-एक की स्त्री का अन्य से नियोग है और विवाहविधायक शास्त्र में कहीं यह भी नहीं लिखा है कि--विधवा स्त्री पुनर्विवाहरूप नियोग है ॥ ६५ ॥

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः॥ मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥

१ आगे नियोगको अधर्मरूप कहा है,यहां व्यवहारप्रकरण में विवादनिवारणार्थ कहा है । और यहां नियोग की जो विधि कही है वह इस कलियुग में शास्त्रानुसार होना जैसा कि-आगे के श्लोकों में कहा है एकप्रकार असम्भव सी है अतएव कलियुग की प्रधानस्मृति पाराशरी में इस युग में देवर से सुतोत्पत्ति के निषेधद्वारा नियोग का निषेध करा है ॥

एक स्त्री में दूसरे का गमन यह माननीय धर्म नहीं है। राजा वेन ने राज्य को शासन करते हुए मनुष्यों से कहा था इसकारण यह आधुनिक और निन्दित पशुधर्म है॥ ६६॥

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा। वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहतचेतनः॥ ६७॥

पहिले उस राजर्षिश्रेष्ठ वेन ने सकल पृथ्वी को भोगते हुए काम के वशीभूत होकर पूर्वापर के विचार की शक्ति नष्ट होने पर वर्णों का सङ्कर करके वर्णसङ्कर सृष्टि उत्पन्न करी॥

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्॥ नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः॥ ६८॥

उस समय से जो पुरुष मोहवश, मृतभर्तृका आदि स्त्री को सन्तान के निमित्त नियुक्त करता है उसकी साधुपुरुष निन्दा करतेहैं॥ ६८

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः॥ तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥ ६९॥

जिस कन्या का विवाह के लिये वाग्दान होजाने पर वर मरजाय, उसको आगे के श्लोक में कही हुई रीति से उसका देवर ग्रहण करले॥

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्॥ मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ॥ ७०॥

वह देवर उसको विवाह की विधि से स्वीकार करके विधवाके चिह्न शुक्ल वस्त्रादि धारण करने वाली और शरीर-मन-वाणी से शुद्धाचार उस स्त्री से निर्जनस्थान में संतान होने पर्यन्त ऋतुकाल में समागम करै, तात्पर्य यह कि जिसके निमित्त पहिले वाग्दान हुआ था वह सन्तान उसकी ही होगी॥ ७०॥

न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः॥ दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥ ७१॥

विचारवान पुरुष, एक के निमित्त वाग्दत्ता हुई कन्या, उस वर के मरजाने पर भी किसी दूसरे को फिर न देय। जो कन्या को एकवार देकर फिर दूसरे को देता है वह पुरुष के विषय में मिथ्या साक्षी देनेके पापसे लिप्त होता है॥

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्॥ व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्॥ ७२॥

विधिपूर्वक कन्यादान लेकर भी यदि उस के वैधव्यादि लक्षण दोष, उत्कट रोग, क्षतयोनिपना, अधिकाङ्गतादि गुप्तदोष प्रतीत होयँ और सप्तपदीगमन आदि विवाहकर्म न हुआ होय तो उसको त्यागदेय॥ ७२॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत्॥ तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः॥

और जो दोषयुक्त कन्या को विना कहे दान करके देय तो कन्यादान करनेवाले दुरात्मा के दान को कन्या का त्याग करके व्यर्थ कर देय॥

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः॥ अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि॥ ७४॥

जिसको परदेश जाने का आवश्यक कार्य हो वह मनुष्य अपनी स्त्री के भोजन वस्त्र का प्रबन्ध करके जाय, ऐसा न करने से सुशीला स्त्री भी भोजन वस्त्र का कष्ट पाने पर प्रायः व्यभिचार करने लगती है॥ ७४॥

१पहिले नियोग की विधिकही और अब उसका निषेध करा; इसकी व्यवस्था यह है कि--कालि से अन्य युगमें नियोग विहित है, कलियुग में निषिद्ध है अथवा नियोग से अनियोगपक्ष श्रेष्ठ है।

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ॥ प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ ७५ ॥

भोजन वस्त्र का प्रबन्ध करके पति के परदेश को जाने पर शृंगार और पराये घर जाना आदि को त्यागकर नियम से रहै और पति दरिद्रता के कारण यदि भोजन वस्त्र का प्रबन्ध बिना करे परदेशको चला जाय तो सूत कातना आदि अनिन्दित शिल्प कार्योंसे जीविका करै ॥ ७५ ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ॥ विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ ७६ ॥

स्त्री गुरुजनों के कहने में रहकर किसी धर्मकार्यके लिये परदेश गयेहुए पति की आठवर्ष तक बाट देखै, फिर पति के पास चलीजाय। विद्या के निमित्त गयेहुए पति की छःवर्ष, अपनी विद्या का प्रकाश दिखाकर यश पाने के लिये गयेहुए पति की छः वर्ष, अन्यस्त्री से भोग करने को परदेश गयेहुए पति की तीन वर्ष बाट देखै, फिर पति के पास चली जाय ॥ ७६ ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥

पति अपने से द्वेष करनेवाली स्त्री की एक वर्षतक प्रतीक्षा करै, उसके बीच में द्वेष को न छोडदेय तो अपने दियेहुए आभूषणादि लेकर उससे समागम न करै ॥ ७७ ॥

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तमेव वा ॥ सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥ ७८ ॥

और जो स्त्री द्यूत आदि से प्रमत्त और मद्य पान आदिसे मत्त तथा रोगपीडित पतिकी शुश्रूषा आदि न करके तिरस्कार करै उससे वस्त्र आभूषण आदि छीनकर तीनमासपर्यन्त गमन न करै ॥ ७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ॥ न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥ ७९ ॥

उन्मत्त, ब्रह्महत्यादि से पतित, क्लीव, वीर्यहीन, कोढ आदि रोगसे पीड़ित ऐसे पति की यदि स्त्री शुश्रूषा न करै तो उसको पति न त्यागसक्ता है और न उससे वस्त्र आभूषणादि लेसक्ता है ॥ ७९ ॥

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ॥ व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा ॥ ८० ॥

निषिद्ध, मद्यपान में आसक्त, दुराचारिणी और पति के प्रतिकूल आचरण करनेवाली, कुष्ठआदि रोगग्रस्त, पतिपुत्रादि को ताडनाकरने वाली और हिंसक, धनकी नाशक स्त्री होय तो पति दूसरा विवाह करलेय ॥ ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥

प्रथम ऋतु से आठ वर्षपर्यन्त यदि सन्तान न होय तो उसको वन्ध्या समझै और दूसरा विवाह करलेय, और स्त्री यदि केवल कन्या को उत्पन्न करै तो ग्यारह वर्ष के अनन्तर उस स्त्री के होतेहुए भी दूसरा विवाह करलेय। जिसकी सन्तान जीवित न रहकर मरजाती होय उस स्त्री के होतेहुए दशवर्ष के अनन्तर विवाह करलेय और यदि अप्रियभाषिणी

होय तो तत्काल दूसरा विवाह करलेय ८१

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥ सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥ ८२ ॥

जो स्त्री रोगिणी अथवा पति के अनुकूल और सुशीला होय उसकी सम्पत्ति लेकर दूसरा विवाह करै, किसी प्रकार भी उसका अपमान न करै ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥ ८३ ॥

एक स्त्री के होतेहुए दूसरी स्त्री से विवाह होने पर पहिली स्त्री को अधिविन्ना कहते हैं, वह अधिविन्ना यदि क्रुद्ध होकर घर से बाहर चलीजाय तो तत्काल उसको रोककर रक्खै अथवा पिता आदि के सामने उसको त्यागदेय॥

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ॥ ८४ ॥

और जो क्षत्रियादि स्त्री, पतिकी निषेध करी हुई यदि विवाहादि उत्सव में निषिद्ध मद्यपान करै और नाचनेगाने की सभामें जाय अथवा और किसी जनसमूह में जाय तो उसके ऊपर आठ कृष्णल सुवर्ण दण्ड करै ॥८४॥

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥ तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥ ८५ ॥

यदि कोई ब्राह्मणादि सजातीय अथवा भिन्न जातीय स्त्रियों से विवाह करे तो जो स्त्री जिस वर्ण की होय उसका वैसाही बड़प्पन और वस्त्र आभूषण स्थान आदि से सत्कार करे ॥८५॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन

किन्तु भर्त्ता के शरीर की सेवा, अतिथिसेवा आदि नित्य का धर्मकार्य, सब की सजाति की पत्नी करै, अन्य जाति की कभी न करै ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया ॥ यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ८७ ॥

जो मोहवश, अपनी जाति की स्त्री के होते हुए अन्य जाति की स्त्री से यह सब कार्य करावे तो जैसे ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न को चाण्डाल कहते हैं तैसे ही पूर्व पण्डितों ने इसको भी कहा है ॥ ८७ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ॥ अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

कुल और आचारमें उत्तम, सुरूप और सजातीय वर मिलनेपर, कन्या विवाहयोग्य अवस्था को न हुई हो तोभी उसका विधिपूर्वक दान कर देय ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥ न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

ऋतुमती होकर भी कन्या जीवनभर घर रहै यह तो अच्छा, परन्तु विद्यादि गुणहीन पुरुष को कभी भी न देय ॥ ८९ ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

पिता आदि यदि गुणवान् वर को न दें तो कन्या ऋतुमती होकर भी तीन वर्षतक बाट देखै और इतने समय के अनन्तर तो समान-जाति के वर को स्वयं वर लेय ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥ नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं सोऽधिगच्छति ॥ ९१ ॥

पिता आदि की न दीहुई कन्या यदि यथा समयपर अपने आप पति को वर लेय तो उस कन्या का कुछ दोष नहीं है और जिसको वरै उस भर्त्ता का भी कोई दोष नहीं है ॥९१॥

अलङ्कारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ॥ मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥ ९२ ॥

इसप्रकार स्वयंवरा कन्या, पिता, भ्राता वा माता के स्वयं पति को वरने से पहिले के दिये हुए आभूषणों को न लेय यदि उन को लेजाय तो चोर होगी ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ॥ स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥

इस ऋतुमती कन्या से जो विवाह करै वह कन्या के ऊपर उसके पिता को कुछ धन न देय, क्योंकि ऋतु होनेपर कन्या को विवाह से रोकरखने के कारण उसका स्वामित्व नष्ट होजाता है ॥ ९३ ॥

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

गुरुकुल से विद्या पढ़कर यदि तीस वर्ष की अवस्था में लौटे तो बारह वर्ष की मनोहारिणी कन्या से विवाह करै, चौबीस वर्ष की अवस्था में गुरुकुल से लौटने वाला आठ वर्ष की कन्या से विवाह करै गुरुकुल से लौटाहुआ शीघ्रता से विवाह कर गृहस्थाश्रम को स्वीकार करै। यह अवस्था का नियम नहीं है किन्तु त्रिगुण होने का दृष्टान्तमात्र है। यहां 'धर्मे सीदति सत्वरः' इस वाक्य का सर्वज्ञनारायण ने यह अर्थ किया है कि अपने कर्त्तव्य गृहस्थ धर्म के मन्द होने के कारण शीघ्रता करै। राघवानन्द ने यह अर्थ करा है कि-सन्तान होनेपर श्रौताधान होता है। इसके न होने के कारण श्रौतधर्म में मन्दता देखकर शीघ्रता करै। नंदन ने यह अर्थ करा है कि--ब्रह्मचर्य व्रतरूप धर्म के खण्डित होने की सम्भावना होय तो शीघ्रता करै। और रामचन्द्र ने यह अर्थ करा है कि—जिस कन्या से विवाह होय यदि उसके रजोदर्शन का समय आगया होयतो शीघ्रता करै ॥९४

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ॥ तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥

पति पहिले देवता की दीहुई भार्या को पाता है, पति अपनी इच्छासे भार्या को नहीं पाता है, देवता की दीहुई इस पतिव्रता भार्या को पाकर देवताओं का प्रिय करताहुआ उस भार्या का भोजन वस्त्रसे नित्य पालन करै ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः ॥ तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ९६ ॥

विधाता ने स्त्रियों को गर्भ ग्रहण करने के निमित्त और पुरुषों को गर्भकी स्थापना करने के निमित्त रचा है, तिससे जिसप्रकार स्त्री के साथ गर्भ धारणका कार्य होसकै तैसे स्त्री के साथ अग्न्याधान आदि धर्म कर्म करै॥९६॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ॥ देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥

यदि विवाह के लिए कन्या के पिता आदि

को शुल्क दिया हो और विवाह होने से पहिले ही शुल्क देने वाला वर मरजाय और कन्या यदि स्वीकार करै तो उसके देवर के साथ विवाह करदेय ॥ ९७ ॥

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन्॥ शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

शूद्र भी कन्याका दान करता हुआ इसके ऊपर शुल्क न लेय और शास्त्र का जानने वाला ब्राह्मणादि तो कभी लेयही नहीं यदि लेयतो वह गुप्तरीति से कन्या का बेचने वाला है॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः॥ यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥

ऐसा न पहिले शिष्टों ने कभी करा और न वर्त्तमान काल के साधु पुरुष करते हैं कि-एक को कन्या देने की प्रतिज्ञा करके फिर दूसरे को देदें ॥ ९९ ॥

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु॥ शुल्कसंज्ञेन मूल्येनच्छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

हमने पूर्वकल्पों में भी कभी ऐसा नहीं सुना कि शुल्क का नाम करके गुप्तरीति से कन्या बेची जाय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ॥ एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १०१ ॥

स्त्री और पति धर्मार्थ काम आदि के विषय में परस्पर का मरण होने पर्यन्त एकमत रहैं। यह संक्षेप से स्त्री पुरुषों का परमधर्म जानना॥

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ। यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्॥

स्त्री पुरुष सदा ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्मार्थ काम के विषय में उनमें परस्पर वियोग होकर प्रतिकूलता न होय॥ १०२॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः॥ आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥

यह तुम से मैंने स्त्री पुरुषों का परस्परका अनुरागयुक्त धर्म और अपुत्रतारूप आपत्ति काल में क्षेत्रज आदि सन्तान की प्राप्ति कही। अब पिता आदि के धनका विभाग कहते हैं सुनो १०३

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ॥ भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥ १०४ ॥

पिता वा माता के मरने के पीछे सब भ्राता इकट्ठे होकर माता पिता के धन को समानभाग करके बांटलें और माता पिता के जीवित होतेहुए उनके धनपर पुत्रोंका स्वामित्व नहीं है॥१०४॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ॥ शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५ ॥

जहां बड़ा पुत्र धार्मिक हो और सब इकट्ठे रहने की इच्छा करैं तो पिता का सब धन ज्येष्ठ पुत्र ही ग्रहण करै, शेष छोटे भ्राता, जैसे पिता के पास रहते थे तैसे उसके पास रहकर निर्बाह करैं ॥ १०५ ॥

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥ पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ १०६ ॥

ज्येष्ठ पुत्रके उत्पन्न होते ही मनुष्य पुत्रवान् जाता है और पितरों के ऋण से भी छूट-जाता है, इस कारण ज्येष्ठ पुत्र सकल धन पानेके योग्य है ॥ १०६ ॥

यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥ स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ १०७ ॥

जिसके उत्पन्न होतेही पिता पितरों का ऋण चुकाता है, जिसके द्वारा मोक्ष पाता है वह ज्येष्ठ ही धर्मज पुत्र है, उससे छोटे सब पुत्र कामज (कामबश उत्पन्न) समझे गये हैं ॥

से उत्पन्न सन्तान उसका सहोढ पुत्र कहाता है॥

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो-र्यमन्तिकात् ॥ स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥ १७४ ॥

सन्तान के लिये माता पिताको मूल्य देकर उनसे जिसको लेय वह समानवर्ण हो वा असमानवर्ण हो उसका क्रीतकपुत्र कहलाता है ॥ १७४ ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥

पति की त्यागी हुई अथवा विधवा स्त्री अपनी इच्छा से पुनर्भू (फिर दूसरे की स्त्री) होकर जिस पुत्र को उत्पन्न करै वह उत्पादक का पौनर्भव पुत्र कहलाता है ॥ १७५ ॥

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥

वह स्त्री यदि अक्षतयोनि अर्थात् परपुरुष के सम्पर्करहित हो तो उससे जो विवाह करै अथवा जो स्त्री पतिको बालक देख विरक्त होकर कुछदिनों अन्यपुरुष के पास रहकर यदि फिर पहिले पति के पास आवै तो भर्त्ता उससे फिर विवाह करलेय तो वह पुनर्भू स्त्री होगी (यह विवाह द्विजातियों के लिये निन्दित है) ॥ १७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥ आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ॥ १७७ ॥

जो माता पिता हीन हो अथवा जिसको माता पिता ने निष्कारण त्याग दिया हो ऐसा पुत्र जिसको स्वयं अपना दान करके देदेय वह उस ग्रहण करनेवाले का स्वयं दत्तपुत्र कहाता है ॥ १७७ ॥

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ॥ स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥ १७८ ॥

ब्राह्मण, विवाहिता शूद्रा में कामवश जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह पुरुष जीतेहुए उसका श्राद्धादि करने में अयोग्य होने के कारण मृतक समान है इसलिये पण्डित उसका पारशव नाम कहते हैं ॥ १७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७९ ॥

ध्वजाहृता दासी में वा जिस दासपत्नी के पहिले लक्षण कहे हैं उस दासी में शूद्र से उत्पन्न सन्तान इस शूद्र पिता की इच्छासे इसके औरस पुत्र के समान भाग पावै, यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ १७९ ॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ॥ पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ १८० ॥

पुत्रोत्पन्न करने की विधि और श्राद्धादि क्रिया का लोप न होय इस लिये क्षेत्रजादि ग्यारह प्रकार के पुत्रों की विधि पण्डितों ने कही है ॥ १८० ॥

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥ यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ १८१ ॥

प्रसङ्ग से यह जो अन्य के बीज से उत्पन्न होनेवाले पुत्र कहे हैं वह जिसके बीज से उत्पन्न हुए होंगे उसीके होंगे अन्यके नहीं ॥

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भ

वेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥

एक पिता से उत्पन्न हुए भ्राताओं में से यदि एक पुत्रवान् होय तो मनुजी ने उस पुत्र से उन सबों को पुत्रवान् कहा है ॥ १८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥

एक पति की बहुतसी स्त्रियों में से एक यदि पुत्रवती होय तो मनुजी ने उस पुत्र से ही सब को पुत्रवती कहा है अर्थात् सपत्नी के पुत्र होनेपर स्त्री दत्तक पुत्र नहीं करसक्ती ॥

श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थमर्हति ॥ बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ १८४ ॥

औरसादि के क्रमसे जो पुत्र कहे हैं उनमें अगले २ की अपेक्षा पहिला २ श्रेष्ठ है । जैसे कि-क्षेत्रज से औरस श्रेष्ठ है, उन में श्रेष्ठ २ के अभाव में नीच श्रेणी का पुत्र धन पाने के योग्य होसक्ता है और यदि पौनर्भव आदि एक श्रेणी के ही बहुत से पुत्र हों तो वह सब समान भाग पानेवाले हैं ॥ १८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥ पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १८५ ॥

यदि क्षेत्रज आदि सगोत्र पुत्र हों तो भ्राता वा पिता यह धन के अधिकारी नहीं हैं, यदि किसीप्रकार का पुत्र न हो तो पिता वा सहोदर भ्राता धन के अधिकारी होते हैं ॥१८५॥

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ।

पिता, पितामह और प्रपितामह का तर्पण तथा पिण्डदान करै, चौथा देनेवाला होता है और पञ्चम अर्थात् प्रपौत्र का पुत्र और वृद्ध प्रपितामह इनका सपिण्डता सम्बन्ध नहीं है ॥

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् । अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥ १८७ ॥

सपिण्डों में जो समीप का होगा उस २ का ही धनपर स्वामित्व होगा, यदि कोईभी सपिण्ड न होय तो जो कुल में समीप का होगा वह अधिकारी होगा,उसके भी अभावमें आचार्य और आचार्य के भी न होनेपर शिष्य अधिकारी होगा ॥ १८७ ॥

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥ १८८ ॥

यदि इन सबोंका अभाव हो तो तीनों वेदों के पढे, पवित्र तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण धनके भागी होते हैं, ऐसा करनेसे धर्म क्षीण नहीं होता है ॥ १८८ ॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ १८९ ॥

ब्राह्मण का धन राजा न लेय, उपरोक्त ब्राह्मण न मिलै तो साधारण ब्राह्मण लें ऐसी नित्य की मर्यादा है । परन्तु क्षत्रियादि और वर्णों का धन यदि ब्राह्मणपर्यन्त कोई न मिले तो राजा लेलेय ॥ १८९ ॥

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन् प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

पुत्रहीन मरण को प्राप्तहुए पुरुष की स्त्री को किसी सगोत्र से पुत्र दिलवादेय और

उस स्त्री के पास जो कुछ धन आदि होय वह उस पुत्रको देदेय ॥ १९० ॥

औरसौ तु यौ विर्वदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने। तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥ १९१ ॥

औरस पुत्र उत्पन्न करके पति के मरजाने पर स्त्री सन्तानको बालक समझकर उस को धन न देय और अपने पासही रखकर दूसरे पुरुष का आश्रय करके एक और पौनर्भव सन्तान उत्पन्न करै, पीछे पौनर्भव के पिता का भी मरण होनेपर वह धन स्त्री के हाथ में आजाय और कुछ काल में वह औरस तथा पौनर्भव सन्तान लेने के लिये विवाद करैं तो उनका विवाद दूर करने के लिये औरस के पिताका धन औरस को देय और पौनर्भव के पिता का धन पौनर्भव को देय ॥ १९१ ॥

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः। भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ १९२ ॥

माता का मरण होजाने पर माता के धन को सब सहोदर भ्राता और अविवाहिता सगी बहिनें समान भाग करके बांटलें और विवाहिताओं को भी अपने भाग में से चतुर्थांश दें १९२॥

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ॥ मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १९३ ॥

और उन विवाहिताओं की जो अविवाहिता कन्या (माता की धेवती) हों उनको भी यथायोग्य प्रसन्नता के साथ उनकी मातामही के धन में से कुछ देय ॥ १९३ ॥

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ १९४ ॥

स्त्री का धन छः प्रकार का है—१अध्यग्नि (विवाह के समय पिता आदिका दियाहुआ)- २ अध्यावाहनिक (पिता के घर से पति के घर जाते समय जो कुछ स्त्री को मिले), ३प्रसन्नता के कार्य में पिता आदि का दिया हुआ, ४ भ्राताओं का दियाहुआ, ५ माता का दिया हुआ, और ६ पिता का दिया हुआ ॥ १९४ ॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ १९५ ॥

विवाह के अनन्तर पिता, माता, पति, पितृकुल, भ्रातृकुल और भर्तृकुल से प्राप्तहुआ जो धन उसको अन्वाधेय कहते हैं, प्रसन्नता के कारण पति से प्राप्तहुआ धन और पूर्वोक्त छःप्रकार का धन, पति की जीवित दशा में इस स्त्रीकी सन्तान पूर्व कथनानुसार पावेगी॥

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥

ब्राह्म, दैव, गान्धर्व, प्राजापत्य, इत्यादि छः प्रकार के विवाह के समय प्राप्तहुआ यह पूर्वोक्त छःप्रकार का धन, सन्तानहीन स्त्री का मरण होने पर उस का पति पावेगा ॥१९६॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ॥ अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ १९७ ॥

और आसुर आदि विवाह के समय प्राप्तहुआ दहेज का धन छोड़कर यदि सन्तानहीन स्त्री मरजाय तो वह धन पाहिले माता का और उसके न होने पर पिता का होगा ॥ १९७॥

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ १९८ ॥

ब्राह्मणके यदि चारों वर्णकी स्त्री हों उनमें से क्षत्रिया स्त्री यदि सन्तानहीन मरजाय तो उसके पिता के धन को सपत्नी ब्राह्मणी की कन्या लेय, वह न होय तो उसकी सन्तान लेय ॥ १९८ ॥

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ॥ स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥ १९९ ॥

सब कुटुम्ब में साझी रहकर कोई स्त्री सर्वसाधारण कुटुम्ब के धन में से आभूषण आदि के लिये धन अलग करके इकट्ठा न करै और अपने पति की आज्ञा बिना अपने धन में से भी कुछ धन अलग न करै ॥ १९९ ॥

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् ॥ न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥२००॥

स्त्री पति की जीवित दशा में पति की सम्मतिसे जो आभूषण धारण करै पतिके मरण के अनन्तर उस पति के भ्राता आदि दायाद उसको बांटकर न लें, यदि उस को बांटें तो पातकी होते हैं ॥ २०० ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ॥ उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ २०१ ॥

नपुंसक, पतित, जन्मांध, जन्मबधिर तथा उन्मत्त, जड़ (पागल), गूंगा और जो इन्द्रियविकल हों वह पिता के धन के अधिकारी नहीं हैं ॥ २०१ ॥

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ॥ ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २०२ ॥

धन को पानेवाला बुद्धिमान् शक्ति के अनुसार इन नपुंसक आदि सबों को आजन्म भोजन वस्त्र देय, यदि न देय तो पाप का भागी होता है ॥ २०२ ॥

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ॥ तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥

यदि उनको स्त्री के ग्रहण करने की इच्छा होय तदनन्तर उनके जो पुत्र होय वह यदि क्लीबता आदि दोषरहित होय तो पितामह के धन का भागी होता है ॥ २०३ ॥

यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ॥ भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ २०४ ॥

पिता के मरण के अनन्तर बिना विभाग करे ज्येष्ठभ्राता अपने बाहुबल से जो कुछ धन प्राप्त करै उसमें विद्याभ्यास करने वाले छोटे भ्राताओं का भाग होगा ॥ २०४ ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ॥ समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥ २०५ ॥

और यदि पिता का धन न होने पर चार पांच भ्राता मिल कर कोई खेती और कोई व्यापार आदि से सब पुरुषार्थ करके गृहस्थ का निर्वाह करें और कुछ काल के अनन्तर यदि वह परस्पर विभाग करें तो उन सब बिद्याहीनों का समान भाग होगा ॥ २०५ ॥

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ॥ मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ २०६ ॥

जो विद्याधन जिसका है वह उसका ही होगा, मित्रों से मिला हुआ वा विवाह के समय श्वशुर आदि से मिला हुआ, मधुपर्क के समय पूज्यभाव से मिलाहुआ ज्येष्ठ का धन उसका ही होगा, इसमें छोटे भ्राताओं का किसी प्रकार का भाग नहीं होता है ॥ २०६ ॥

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ॥ स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥ २०७ ॥

जो पुरुष राजसभा में जाने आदि से धन पैदा करने को समर्थ होय और सब के साझे के धन को बाँटने की इच्छा न करै भ्राता उस को शास्त्रानुसार भाग न देकर कालान्तर में उसके पुत्रादि का विवाद दूर करने के लिये कुछ धन इस भ्राता को देकर अपने सब धन को परस्पर बांट लें ॥ २०७ ॥

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ॥ स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ २०८ ॥

पिता के धन को व्यय न करके केवल कृषि वाणिज्य आदि परिश्रम के द्वारा जो धन प्राप्त होय अपने परिश्रम से प्राप्त करेहुए उस धन की इच्छा न करने पर दूसरे को उसका भाग न देय ॥ २०८ ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ २०९ ॥

पैतृक (मौरूसी) धन यदि पिता की उपेक्षा से दूसरे के हाथ में चलागया होय और पुत्र अपने परिश्रम और युक्ति से उसको पाजाय तो वह धन उसका अपना है, यदि इच्छा न होय तो उसमें से किसी को भाग न देय २०९

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

भ्राता पहिले विभाग करके अलग २ होगये हों और पीछे से सब इकट्ठे होकर रहैं तो फिर विभाग करने के समय उनका समान भाग होगा, ज्येष्ठ को उद्धार नहीं मिलेगा २१०

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ॥ म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥ २११ ॥

भ्राताओं में जो बड़ा वा छोटा भ्राता दूसरे आश्रम में प्राप्त हो वा मरण आदि से अपने भागको विभाग के समय न पावै तो उसका भाग लुप्त नहीं होगा किन्तु वह भाग अलग निकालना होगा ॥ २११ ॥

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥ २१२ ॥

इकट्ठे रहनेवाले सहोदर भ्राता, सहोदरा बहिनें, सौतेले भ्राता, यह सब पुत्र, स्त्री, पिता, माता के अभाव में जो धन होय उस को समान भाग करके बाँटलें ॥ २१२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥ २१३ ॥

जो ज्येष्ठ भ्राता लोभवश छोटे भ्राताओं के पिता आदि के धन से वञ्चित करै वह

---

१ विद्याधनञ्च व्याहृतं कात्यायनेन—"परभक्तप्रदानेन प्राप्ता विद्या यदान्यतः । तयाप्राप्तञ्च विधिना विद्याप्राप्तं तदुच्यते ॥ उपन्यस्ते च यल्लब्धं विद्यया पणपूर्वकम् विद्याधनन्तु तद्विद्याद्विभागे न विभज्यते ॥ शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात्संदिग्धप्रश्ननिर्णयात् । स्वज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राध्ययनाच्चयत् । विद्याधनन्तु तत्प्राहुर्विभागे न विभज्यते ॥

ज्येष्ठता के कारण से उनका पूज्य नहीं होगा, उद्धार भाग नहीं पावेगा और राजाका दण्डनीय भी होगा ॥ २१३ ॥

सर्वएव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ॥ न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ २१४ ॥

जो भ्राता पतित न होकर यदि द्यूत, वेश्यादि निन्दित कर्म में आसक्त होजाय वह दाय का अधिकारी नहीं होगा और ज्येष्ठ भ्राता छोटों को कुछ न देकर साधारण धन में से सञ्चय करके अपना असाधारण धन न करलेय।

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥ न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥ २१५ ॥

यदि पिता के साथ अविभक्तदशा में रहकर सब भ्राता मिलकर कोई कुछ, कोई कुछ इस प्रकार धन उपार्जन करें तो फिर विभाग के समय पिता सब को समान भाग करके देय, कमती बढ़ती कभी न करै ॥ २१५ ॥

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ॥ संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥ २१६ ॥

पिता, अपने जीते में ही पुत्रों को विभाग करके देदेय उसके अनन्तर यदि और पुत्र उत्पन्न होय तो वह पुत्र, पिता के जीवते में वा मरण के अनन्तर पिता का धन पावेगा और पिता यदि किसी विभक्त करेहुए भी पुत्र के साथ रहतेहुए मरण को प्राप्त हो तो वह उन विभक्त होकर साथ रहनेवालों से समान भाग बाँटलेय ॥ २१६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ २१७ ॥

सन्तानहीन पुरुष के धन के ऊपर माता पिता दोनों का अधिकार है, यदि माता मरजाय तो पिता की माता उस धन को लेय ॥

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ॥ पश्चाद्दृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥ २१८ ॥

पिता के धन के विभाग के अनन्तर यदि पिता के ऊपर कुछ ऋण होय वा किसी के पास पिता का कुछ धन आता होय तो उस को भी सब पूर्ववत् बाँटलें, उसमें से ज्येष्ठ को उद्धार भाग न दें ॥ २१८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥ योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥

विभाग होने से पहिले जो अल्पमूल्य के वस्त्र, वाहन, और आभूषण कि जो किसीके वर्ताव में हों, विभाग के समय उसका विभाग नहीं होगा वह जिसके उपभोगमें होगा उसीका होगा, परन्तु जो वस्त्रादि बहुमूल्या होगा उसका बेचकर अवश्य विभाग होगा। पक्वान्न, कूप आदि का जल, दासी आदि स्त्री यदि कम होंगी तो उनका भी विभाग नहीं होगा, योग क्षेमके हेतु मन्त्री, पुरोहितादि तथा गौ आदिकों के चराने के स्थान का भी विभाग नहीं होगा ॥ २१९ ॥

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः ॥ क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥ २२० ॥

यह तुम से विभाग की व्यवस्था और क्षेत्रजादि पुत्रों का क्रम से अधिकार यथाविधि कहा, अब द्यूतक्रीड़ा की व्यवस्था सुनो॥२२०॥

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्। राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २२१ ॥

द्यूतक्रीड़ा और समाह्वय को राजा अपने राज्य से दूर करै, क्योंकि यह दो दोष राजाओं के राज्य के नाशक हैं ॥ २२१ ॥

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ॥ तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत्

जो द्यूत और समाह्वय नाम की क्रीडा है वह प्रकाशरूप से बटमारी है, राजा इन दोनों को नष्ट करने में सदा यत्न करता रहै॥२२२॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥ प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २२३ ॥

फाँसे आदि प्राणहीन पदार्थों से जो क्रीड़ा होती है उसको पण्डित द्यूत कहते हैं और भेंड़े, भैंसे, मुर्गे, कबूतर आदि प्राणियों के द्वारा जो क्रीड़ा हो उसको समाह्वय कहते हैं ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ॥ तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २२४ ॥

उस द्यूत और समाह्वय को जो पुरुष अपने आप करै अथवा सभिक (फड़दार) होकर औरोंसे करावै उनको अपराध की छुटाई बड़ाई के अनुसार हाथ कटवाने से लेकर प्राणान्त पर्यन्त शारीरिक दण्ड देय और द्विज के यज्ञोपवीतादि चिह्न धारण करनेवाले शूद्रों को भी इसी प्रकार दण्ड देय ॥ २२४ ॥

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ॥ विकर्मस्थाञ्शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥ २२५ ॥

द्यूतादि करनेवाले, नाचने और गानेवाले, वेद से द्वेष करने वाले, एवं वेद और स्मृति में निषिद्ध लालवस्त्र और मुण्डनादि के व्रतधारी आपत्तिकाल के विना भी दूसरे का कर्त्तव्य कार्य करनेवाले और मद्य बनानेवाले इन सब मनुष्यों को राजा बहुत शीघ्र नगरसे बाहर निकालदेय ॥ २२५ ॥

एते राष्ट्रे वर्त्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ॥ विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २२६ ॥

यह सब गुप्त चोर पुरुष राजा के राज्य में हों तो नानाप्रकार की वञ्चनाओं से श्रेष्ठ प्रजाओं को नित्य पीड़ा देते हैं ॥ २२६ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्॥ तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २२७ ॥

पहिले कल्प में भी इस द्यूत को अतिवैरकारक देखा है जिससे बुद्धिमान हास्य के लिये भी द्यूतका सेवन न करै ॥ २२७ ॥

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ॥ तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २२८ ॥

गुप्तरूप से वा प्रकाशरूप से जो पुरुष उस द्यूत की क्रीड़ा करै उसके विषय में दण्ड का विकल्प है, राजा को जैसा उचित प्रतीत हो वैसाही दण्ड करै ॥ २२८ ॥

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ॥ आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥ २२९ ॥

क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र हारजाने के कारण धन दण्ड देने को असमर्थ होय तो उसकी जाति के योग्य कर्म कराकर दण्ड से उऋण करै और ब्राह्मण हारने के कारण धनदण्ड

न देसकै तो वह धीरे २ देय ॥ २२९ ॥

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ॥ शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥

शारीरिक दण्ड के योग्य हारेहुए स्त्री, बालक और बूढ़ोंको बेंत, बाँसकी खपची से वा रस्सी से बाँधकर दण्ड देय ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ॥ धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥ २३१ ॥

जो राजाके नियत करे हुए पुरुष उत्कोच (रिशवत) लेकर अर्थी, प्रत्यर्थीके कार्यों को बिगाड़ दें उनको राजा निर्धन करके राज्यसे निकाल देय ॥ २३१ ॥

कूटशासनकर्तृंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ॥ स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥ २३२ ॥

राजा के नाम से झूठी आज्ञा चलानेवाले, मन्त्री आदि प्रकृति में भेद करानेवाले स्त्री-बालक-तथा ब्राह्मणों की हत्या करनेवाले और शत्रुसे मिलनेवालों को राजा मरवादेय ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ॥ कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत् ॥ २३३ ॥

धर्मशास्त्रानुसार विवाद में दण्डपर्यन्त निर्णय एकवार होजानेपर फिर उसको न चलावै ॥ २३३ ॥

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ॥ तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥ २३४ ॥

राजा के नियत करेहुए मन्त्री वा प्राड्विवाक (हाकिम) अर्थी, प्रत्यर्थियों के कार्य का ठीक २ निर्णय न करैं तो राजा फिर स्वयं उसका विचार करै और उन ठीक २ निर्णय न करनेवाले मंत्री आदि के ऊपर सहस्र पण दण्ड करै ॥ २३४ ॥

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एते सर्वे पृथक् ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ २३५ ॥

ब्राह्मण की हत्या करनेवाला, मद्यपान करनेवाला, चोरी करनेवाला और गुरुपत्नी से सम्भोग करनेवाला, इनमें से प्रत्येकको पृथक् २ महापातकी कहते हैं ॥ २३५ ॥

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ॥ शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ २३६ ॥

यह चारोंपातकी यदि शास्त्र के अनुसार प्रायश्चित्त न करैं तो इन को आगे के श्लोकमें कहेहुए प्रकार से अपराध के अनुसार राजा शारीरदण्ड वा धनदण्ड देय ॥ २३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥ स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ २३७ ॥

गुरुपत्नी से भोग करनेवाले के मस्तक पर भग का चिह्न दागदेय, मद्य पीनेवाले के मस्तक पर मद्यके पात्र का चिह्न दागदेय, चोर के मस्तकपर कुत्ते के चरण का चिह्न दाग देय और ब्रह्महत्यारे के ललाटपर शिरोहीन पुरुष के धड़ का चिह्न दागदेय ॥ २३७ ॥

असम्भोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः ॥ चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ २३८ ॥

ऐसे चिह्नधारी पापियों के साथ भोजन न करै, इनको यज्ञ न करावै, पढ़ावै नहीं और इनके साथ विवाहादि सम्बन्ध भी न करै,

किन्तु यह निर्धन और सर्वधर्मोंसे बाहर होकर पृथ्वीपर विचरैं ॥ २३८ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ॥ निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ २३९ ॥

जातिके पुरुष और मातुल आदि सम्बन्धी पुरुष, ऐसे दागे हुओं को सबप्रकार से त्याग दें, इनके ऊपर दया न करैं; और अवस्था आदि में बड़े होनेपर भी ऐसों को नमस्कार न करैं, ऐसी मनुजी की आज्ञा है ॥

प्रायश्चित्तन्तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ॥ नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥ २४० ॥

यदि सब वर्ण शास्त्र में कहे अनुसार प्रायश्चित्त करैं तो राजाको मस्तकपर चिह्नित नहीं करना चाहिये, परन्तु उत्तम साहस का दण्ड देय ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ॥ विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ २४१ ॥

यदि गुणवान् ब्राह्मण अनिच्छा से यह सब अपराध करै तो मध्यम साहस का दण्ड करै, गुणहीन ब्राह्मण के ऊपर उत्तम साहस का दण्ड करै और इच्छा से इन अपराधों को करै तो धन धान्यादि सामग्री सहित ब्राह्मण को देश से निकाल देय ॥ २४१ ॥

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ॥ सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥ २४२ ॥

और क्षत्रियादि यदि अनिच्छा से इन अपराधोंको करैं तो राजा उनका सर्वस्व छीन लेय, इस दण्डके योग्य हैं और इच्छा से ऐसे अपराध करैं तो उनको प्राणान्त का दण्डदेय ॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनां धनम् ॥ आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ २४३ ॥

राजा इन महापातकियों से दण्ड में लिये हुए धनको ग्रहण न करै, यदि धनके लोभ से ग्रहण करै तो उस दोषसे लिप्त होता है ॥ २४३ ॥

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ २४४ ॥

इन महापातकियों से जो दण्डका धन पावै वह वरुण के उद्देश्य से जल में डलवा देय अथवा व्रत स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मण को अर्पण करदेय ॥ २४४ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥ ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ २४५ ॥

क्योंकि महापातकियों से दण्डरूप जो धन मिलै उसके स्वामी वरुण देवता हैं, क्योंकि वह राजाओं को भी दण्ड देनेवाले हैं और वेदपारगामी ब्राह्मण सकल जगत् का ईश है ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ॥ तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥ २४६ ॥ निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ॥ बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ २४७ ॥

जिस देशमें राजा पापियों से धन लेनेको त्याग देता है तहाँ दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रहनेवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं और वैश्य धान्यों को जिस प्रकार बोते हैं उसप्रकार ही अलग २ वह सब धान्य उत्तमता से उत्पन्न होते हैं, असमय बालकोंका मरण नहीं होता

है और लूले आदि विकारयुक्त पुरुष उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥ हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ २४८ ॥

शूद्र यदि इच्छा से ब्राह्मणको शारीरिक पीड़ा देय वा धन छीनकर पीड़ा देय तो राजा शूद्र के हाथ, पैर, नाक, कान कटबाना आदि असह्य वध के उपायों से वध करै ॥ २४८ ॥

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ २४९ ॥

राजा यदि वध के अयोग्य पुरुष का वध करै तब जो अधर्म होता है, जो वध के योग्य है उसका वध न करने से भी राजा को वैसा ही अधर्म होता है, शास्त्रानुकूल दण्ड देनाही राजाका धर्म है ॥ २४९ ॥

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

ऋणदेना आदि व्यवहार के अठारह मार्गों में परस्पर विवाद करनेवालों के व्यवहार का यह निर्णय विस्तार के साथ कहा ॥२५०॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥ देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥ २५१ ॥

इसप्रकार धर्मानुकूल अर्थि प्रत्यर्थियों के कार्यों का निर्णय करताहुआ राजा, देश में अनुराग होनेपर अप्राप्त देशों को लेनेकी इच्छा करै और प्राप्तदेशों का पालन करै॥२५१॥

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ २५२ ॥

राजा जाङ्गल देशमें किला बनवाकर तहां बसता हुआ, शास्त्र की आज्ञानुसार चोर, साहसिक आदि सकल क्षुद्र शत्रुओं के निवारण का सदा यत्न करता रहै ॥ २५२ ॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ २५३ ॥

सदाचारवान पुरुषों की रक्षा करने से और चोर डाकू आदि कांटों को दूर करने से, प्रजा का पालन करने में तत्पर रहनेवाले राजे इस पुण्य से स्वर्ग को जाते हैं ॥ २५३ ॥

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ॥ तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ २५४ ॥

जो राजा चोर आदि दुष्टों को दण्ड न देकर प्रजा से छठा भाग आदि बलि लेता है उस राजाके ऊपर प्रजाओं का प्रेमभाव नहीं रहता है और इस कुकर्म से उत्पन्नहुए दुरदृष्ट के कारण राजा स्वर्गप्राप्ति से वञ्चित रहता है ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥ तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥ २५५ ॥

जिस राजाके भुजबल से राज्य चोरादिकों से निर्भय रहता है, उस राजा का राज्य जल से सिंचतेहुए वृक्षकी समान नित्य वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ २५५ ॥

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ॥ प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ २५६ ॥

छपकर और प्रकाशरूपसे पराया धन हरने वाले इन दोनों प्रकार के चोरों को राजा, गुप्त दूतों के द्वारा जानै ॥ २५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥ प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ २५७ ॥

तोल को कमती बढ़ती करके जो सुवर्णादि को बेचते हैं वह प्रकाशरूप से चोर हैं और जो कूमल देना आदि गुप्तरूप से चोरी करते हैं वा जङ्गलमें रहकर दूसरों का धन छीनलेते हैं वह प्रच्छन्न चोर हैं ॥ २५७ ॥

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ॥ मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥ २५८ ॥ असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ २५९॥ एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाल्लोककण्टकान् ॥ निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः २६० ॥

जो पुरुष अर्थीप्रत्यर्थी से उत्कोच (रिशवत) लेकर उनका कार्य करना तो दूर रहा और उलटा करदेता है तथा मिथ्या भय दिखाकर धन लेता है, सुवर्ण आदि यथार्थ वस्तु लेकर पीतल आदि दूसरी वस्तु देने का धोखा देता है, द्यूत खेलनेवाले ठग, तुम्हें धन पुत्रादि प्राप्त होगा ऐसी मिथ्या बातों में फुसलाकर धोखा देनेवाले जिनका कि नाम मङ्गलादेशवृत्त है, जो भीतर पापकर्म करें और बाहर सदाचार दिखाकर पराया धन लें, जो हाथ की रेखा देखकर अट्टसट्ट फल कहकर जीविका करें, महामात्र (हाथी को उलटी शिक्षादेनेवाले) चिकित्सक, शिल्प के उपाय से उत्साह देकर धन लेनेवाले, औरों को वश में करने में निपुण वेश्या स्त्री इत्यादिकों को प्रकाशरूपसे लोककण्टक जानै, इनको तथा द्विजवेषधारी-शूद्रों का वृत्तान्त राजा अपने गुप्तदूतों के द्वारा जानता रहै ॥ २५८ ॥२५९ ॥ २६० ॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ॥ चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साह्य वशमानयेत् ॥ २६१ ॥

राजा, इन कहेहुए वञ्चकों को, गुप्तरूप से विचरनेवाले, सदाचार पुरुषों के द्वारा, उस कार्यको करने में प्रवीण चोरों के द्वारा और व्यापार करनेवालों के द्वारा इत्यादि अनेकों प्रकार से जानकर उनको उत्साहित कर अपने वशमें करै ॥ २६१ ॥

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥ २६२ ॥

राजा उनके कूमल देना आदि दोषों को लोक में ढंढोरे के द्वारा प्रसिद्ध करके फिर उनके अपराध और दण्डको सहने की शक्ति के अनुसार ठीक २ दण्ड देय ॥ २६२ ॥

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥ स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ २६३ ॥

चोर डांकू आदि बाहर से सदाचार दिखाने वाले और हृदय में पापबुद्धि गुप्तरूप से इस पृथ्वीपर विचरनेवाले इन पुरुषों को दण्ड दिये बिना वशमें करना कठिन है अतः इनको दण्ड देय ॥ २६३ ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ॥ चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ २६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ॥ शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥ २६५॥

एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः॥ तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत्॥

सभा, जलपिलाने का स्थान, पुए आदि बिकने का स्थान, मद्य और अन्न बिकने के स्थान, चौराहे, प्रसिद्ध वृक्षों की जड़, जनसमूह के स्थान (बैठकें), जङ्गल, शिल्पियोंके स्थान, मनुष्यशून्यस्थान, ग्राम आदि के बाग बगीचे, इन सब स्थानों में नानाप्रकार की सेना, कोई एक स्थान पर रहनेवाली, कोई घूमनेवाली भेजकर चोर आदिकों को रोके, क्योंकि प्रायः ऐसे ही स्थानों पर चोर आदि रहते हैं॥ २६४॥ २६५॥ २६६॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः॥ विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः॥

जो ऐसे पुरुषों के सहायक वा अनुगामी हों तथा जो इनके चरित्रों को भलीप्रकार जानते हों, तथा जो कूमल आदि के कार्य में चतुर हों ऐसे पहिले चोरी का कार्य करनेवालों से चोरादिकों को जाने और उनको दूर करे २६७

भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः॥ शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम्॥ २६८॥

आओ अपने घर चलें, चलकर लड्डू खीर आदि खायँगे, हमारे देश में ऐसे ब्राह्मण हैं कि-वह जिसकी जो अभिलाषा होती है सो पूरी करदेते हैं चलो उन ब्राह्मण को देख आवें, एक पुरुष ऐसा आया है कि-अकेलाही पचास पुरुषों के साथ युद्ध करसक्ता है चलो उसको देख आवें, इसप्रकार गुप्तदूत बनेहुए पूर्वकाल के चोर, भक्ष्यभोज्य, ब्राह्मणदर्शन और शूरपुरुषों के दिखाने आदिका छल करके चोर और साहसियों को ले आवें, तब राजा उनको दण्ड देय॥ २६८॥

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये॥ तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान्॥ २६९॥

जो उस स्थानपर न आवें और जो राजा के भेजेहुए गुप्तदूतरूप पूर्वकाल के चोरों के साथ दण्डके भयसे न मिलें राजा उनको बलात्कार से मित्र-ज्ञाति-बान्धवों सहित मारडाले॥ २६९॥

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः॥ सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्॥ २७०॥

चोरी के पदार्थ और कूमल आदि देने की सामग्री के बिना चोररूप से निश्चित हुए बिना धार्मिक राजा उनका वध न करे, परन्तु चोरी के पदार्थ और कूमल देने आदि की सामग्री के साथ देखे तो उनका बिना विचारे वध करे॥ २७०॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः॥ भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्॥ २७१॥

ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें जो कोई चोरोंको जानकर भोजन देतेहों तथा चोरी की सामग्री और चोरोंको रहने को स्थान देते हों, उन सबों को राजा मरवादेय॥ २७१॥

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान्॥ अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम्॥ २७२॥

जो राज्यमें रक्षाके काम पर नियुक्त हों और जो राज्यकी सीमा (सरहद) पर रहते हों, वह अपने आप क्रूर कर्म न करके भी यदि चोरी आदि कार्य में मध्यस्थ होयँ

तो इनको राजा मरवादेय ॥ २७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः॥ दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २७३ ॥

जो ब्राह्मण यज्ञ कराना, दान लेना आदि से दूसरे के यज्ञ दानादि को उत्पन्न करके जीविका करता है वह यदि अपने धर्मसे च्युत होय तो राजा उसको दण्ड देकर पीडित करै ॥२७३॥

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ॥ शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥ २७४ ॥

चोरों से ग्रामों के लूटनेपर, जलकी बाँध टूटकर जलमें डूबने के कारण खेती का नाश होनेपर और मार्ग में डांका पड़नेपर जो उसके रोकने को न दौड़े उनको राजा सामग्रीसहित देश से निकाल देय ॥२७४॥

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विविधै दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥ २७५ ॥

जो राजाके खजाने में से धन चुरावैं, जो राजा की आज्ञा से प्रतिकूल कार्यों में संलग्न रहें और जो शत्रुओं के साथ राजा का वैरभाव बढ़ावैं राजा नानाप्रकार के दण्डों से उनका घात करै ॥२७५॥

संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥ तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥ २७६ ॥

जो चोर रात्रि में कूमल लगाकर पराया धन हरण करैं, राजा उनके हाथ कटवाकर तीक्ष्ण शूली पर चढ़ावै ॥ २७६ ॥

अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे॥ द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥

यदि कोई गाँठ काटकर दूसरे का वस्त्र में बँधाहुआ सुवर्ण आदि चुरावै तो पहिलीवार उसका अँगूठा और तर्जनी अंगुली कटवा देय, दूसरी बार हाथ पैर कटवादेय और तीसरी बार उसका बधकरना ही उचित है ॥

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ॥ संनिधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ २७८ ॥

गँठकटे आदि चोरों को जानकरभी जो शीत निवारण के लिये अग्नि दें, भोजन को अन्न दें तथा सोने को स्थान दें और चुराईहुई वस्तु को अपने पास रक्खैं, इनका राजा चोर की समान बध करै ॥ २७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा॥ यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम्

जो सर्वसाधारण के स्नान पान आदि के विषय में उपकारी तालाव आदि के बाँधआदि को तोड़ जलको बाहर निकालकर नष्ट कर देय, राजा उसको जल में डुबाकर अथवा चाहें जिस प्रकार से मरवादेय; यदि वह जैसा पहिले था तैसाही बनवादेय तो उत्तम साहस का दण्ड करै ॥ २७९ ॥

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्॥ हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन्॥

राजाका अन्नभण्डार, धनभण्डार और अस्त्रशस्त्रादि का स्थान वा देवमन्दिर इनको जो तोड़ैं और जो राजा के हाथी, घोड़े, रथादि को चुरावैं उनका राजा विना विचारे ही बध करदेय ॥ २८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आगमं वाप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ २८१ ॥

जो पुरुष प्रजा के लिये बनायेहुए तड़ागका जल हरता है और बाँध से जल के मार्ग को रोकता है उसके ऊपर राजा प्रथम साहस का दण्ड करै ॥ २८१ ॥

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ॥ स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥ २८२ ॥

जो पुरुष, रोगआदि आपत्तिकाल के बिना राजमार्ग में (आमसड़कपर) विष्ठा करै उस के ऊपर दो कार्षापण दण्ड करै और विष्ठा को उसके द्वारा उठवावै ॥ २८२ ॥

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥ परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ २८३ ॥

यदि रोगी, वृद्ध वा गर्भिणी ऐसा करै तो उस को धमकादेय और उनके द्वारा विष्ठा उठवा देय ऐसी मर्यादा है ॥ २८३ ॥

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥

देहके व्रणादि की चिकित्सा करनेवाले यदि गौ आदि पशुओं में ठीक चिकित्सा न करै तो प्रथम साहस का दण्ड करै और मनुष्यों के विषय में चिकित्सा की गड़बड़ी करै तो मध्यम साहस का दण्ड करै ॥ २८४॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ २८५ ॥

जल के ऊपरको जाने को काठ शिलाआदि ध्वजा (राजद्वारकाचिह्न), पुष्करिणी आदि में जलकी गहराई जताने को गाड़ीहुई लकड़ी और प्रतिमाओं का तोड़नेवाला, इनके ऊपर पाँचसौ पण दण्ड करै और उन तोड़ीहुई वस्तुओं को उससे नई बनवालेय ॥२८५॥

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ॥ मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः॥२८६

आदूषित पदार्थों को दूषित करनेपर वा तोड़नेपर तथा मोती आदि कहींका कहीं वेधदेने पर प्रथम साहस का दण्ड होताहै ॥ २८६ ॥

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ॥ समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ २८७ ॥

जो समान मूल्य की वस्तु एक को थोड़े मूल्य में देय और दूसरे को अधिक मूल्यमें देयतो उस के ऊपर राजा प्रथम साहस वा मध्यम साहस का दण्ड करै ॥ २८७ ॥

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥ २८८ ॥

बन्दीघर आदि सब राजमार्ग में (आम सड़कपर) बनावै, जहाँ पापकर्म करनेवाले कमभोजन आदि मिलने से कातरहुए सब के देखने में आवैं ॥ २८८ ॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥ द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ २८९ ॥

घर वा नगर आदिका परकोटा तोड़नेवाले, नगर के चारों ओर की खाईको पाटनेवाले और द्वार तोड़नेवाले को राजा तत्काल नगर से निकाल देय ॥ २८९ ॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतो दमः ॥ मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

दूसरे को मारने के निमित्त शास्त्रोक्त सकल अभिचार होम आदि करनेपर, चरणधूलि ग्रहण आदि लौकिक अभिचार कर्म करनेपर,

धन ठगने के निमित्त झूठा वशीकरण आदि करने पर और उच्चाटन आदि करने के लिये क्रियानुष्ठान करनेपर दोसौ पण दण्ड करै ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ॥ मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥ २९१ ॥

जो धान्यआदि अङ्कुर निकलने के योग्य न हो उसको यदि बीजके योग्य कहकर बेचै, या उन निरर्थक बीजों में कुछ अच्छे बीज मिलाकर सब को अच्छा बताकर बेचै और जो ग्राम आदिकी सीमाको नष्ट करै राजा इन सब को नाक कान आदि कटवाकर विकृत करनारूप वध करै ॥ २९१ ॥

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ॥ प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ २९२ ॥

जितने क्षुद्रशत्रु हैं उनमें सुवर्णकार अतिपापी है, यह जिससमय तराजू को अन्यथा करके वा कसौटी का कस बदलकर सुवर्ण की चोरीकरै तो अपराध की छुटाई बड़ाई को विचार कर तीक्ष्णधार के छुरों से उसको कण २ करके कटवावै ॥२९२॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २९३ ॥

जुतती हुई भूमिको हल कुदाल आदि, शस्त्र और औषधि की चोरी होनेपर उस चोरी से कितने समयमें और कितनी हानि हुई यह सब विचारकर राजा दण्ड नियत करे ॥२९३॥

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥

राजा, मन्त्री, राज्य, खज़ाना, हाथी, घोड़े आदि दण्ड और तीन प्रकार के मित्र, यह सात राज्य की प्रकृति हैं, इस कारण राज्य को सप्ताङ्ग कहते हैं ॥ २९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ २९५ ॥

इन राज्य की सात प्रकृतियों में पहिले २ अङ्गके विनाशरूप व्यसन को अतिमहान् जानै ॥२९५॥

सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥ २९६ ॥

जैसे चार अंगुल के बालों से बँधे हुए त्रिदण्डों में किसी दण्ड की अधिकता नहीं है तैसेही सातों अंगों में किसी अङ्गकी अधिकता नहीं है, तात्पर्य यह कि–पूर्व २ अङ्गकी समान पर २ अङ्गको भी सहायता की अपेक्षा है॥२९६॥

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ॥ येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते ॥ २९७ ॥

जिस अङ्ग के द्वारा जो कार्य सिद्ध होता है उस कार्य में वही अङ्ग श्रेष्ठ है, वह कार्य दूसरे से सिद्ध नहीं होसक्ता ॥२९७॥

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ २९८ ॥

सातवें अध्याय में कहेहुए कापटिक आदि चार पुरुषों के द्वारा और अपनी सेना के प्रोत्साहन से राजा अपनी और शत्रुकी शक्तियों को जानै ॥२९८॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि

तथैव च ॥ आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ १९९ ॥

नारीआदि सकल पीड़ा और अपने तथा शत्रु के राज्य के सकल व्यसन इनकी न्यूनाधिकता का विचार करके शत्रुके साथ सन्धि, विग्रह आदि कार्य करने का प्रारम्भ करै २९९

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ १०० ॥

राजा अपने राज्य को बढ़ाने और शत्रुके राज्य को घटानेके लिये कार्य करने में अतिकष्ट पड़ने से खिन्न होकर भी फिर २ कर्म का आरम्भ करै, क्योंकि जो पुरुष नित्य कार्य में लगा रहता है स्वयं लक्ष्मी उसकी सेवा करती है ॥३००॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥

क्योंकि—सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि यह चारों युग राजा की चेष्टारूप हैं, इस कारण राजा को युग कहते हैं ॥३०१॥

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ ३०२ ॥

सोता हुआ अर्थात् अज्ञानादि से कार्य का उत्साह न करनेवाला राजा कालियुग कहाता है और जागताहुआ अर्थात् कार्य के गुण दोष जानकर भी कार्य न करनेवाला द्वापरयुग कहाता है, कर्मानुष्ठान में तत्पर त्रेतायुग कहाता है और जब अनुष्ठान करता हुआ उत्साहयुक्त रहता है तब सत्ययुग कहाता है ॥३०२॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च॥ चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३०३ ॥

राजा इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि और पृथ्वी के तेज के अनुसार बर्ताव करै ॥३०३॥

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥३०४॥

जैसे इन्द्र वर्षा के चार मास तक वर्षा करता है तैसे इन्द्रका व्रत धारण करे हुए राजा अपने देश में आये हुए साधुओं को इच्छित पदार्थ देकर पूर्ण मनोरथ करै ॥ ३०४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः॥ तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ३०५ ॥

जैसे सूर्यदेव मार्गशीर्ष आदि आठ मासतक किरणों से थोड़ा २ जल खेंचते हैं तैसे ही राजा अपने राज्य से करलेय, यह सूर्यव्रत है॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ३०६ ॥

जैसे प्राणवायु प्राणी के भीतर प्रवेश करके विचरता है तैसे ही राजा चारों के द्वारा अपने और शत्रुके राज्यके भीतर प्रवेश करै, इस का नाम वायुव्रत है ॥ ३०६ ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ३०७ ॥

जैसे यमराज समय पड़नेपर प्रिय और द्वेष्य दोनों को अपराध का समान दण्ड देते हैं तैसे ही राजाको प्रजाओं का विचार करना चाहिये, यही यमव्रत है ॥ ३०७ ॥

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ॥ तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥

जैसे वरुणपाश से बँधने योग्य प्राणी वरुणपाशों से बँधाहुआ ही दीखता है तिसीप्रकार राजा पापियोंको दण्डदेय,यहही वारुणव्रत है ॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ॥ तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ३०९ ॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर सकललोक प्रसन्न होते हैं तैसे ही प्रकृति राजाको देखकर प्रसन्न हों यह चन्द्रव्रत है ॥ ३०९ ॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

पापकर्म करनेवाले पुरुषों को अतिदण्डादि देने से प्रचण्ड और असह्य होय तथा दुष्टता करनेवाले सामन्तों का प्राणान्त करावै इस को आग्नेयव्रत कहते हैं ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ३११ ॥

जैसे पृथ्वी सकल प्राणियों को समानभाव से धारण करती है तैसे ही प्रजाके सकल प्राणियों को समदृष्टि से पालन करनेवाले राजा का पार्थिव व्रत कहाता है ॥ ३११ ॥

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ॥ स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥

राजा इन उपायों से तथा अपनी बुद्धि के अनुसार अन्य उपायों से सदा निरालस होकर अपने राज्यके और दूसरे राज्य से आकर चोरी करके लेजानेवाले चोरोंको दण्ड देय ॥ ३१२ ॥

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ॥ ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥ ३१३ ॥

परमआपत्तिको पाकरभी ब्राह्मणोंको कोपित न करै, क्योंकि–वह कोपित होकर शाप अभिचार आदि से इस राजाका सेना वाहनादि सहित तत्काल नाश कर देते हैं ॥३१३॥

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ॥ क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ ३१४ ॥

जिन ब्राह्मणों ने क्रुद्ध होकर अग्नि को सर्वभक्षी किया, समुद्रको खारी करा, चन्द्रमा को पहिले क्षयी करके पीछे अनुग्रह से पूर्ण करा, ऐसे ब्राह्मणों को कुपित करके कौन नष्ट न होगा ॥ ३१४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ॥ देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥ ३१५ ॥

जो कोपित होकर स्वर्गादि लोकों की और सकल दिक्पालों की सृष्टि करसक्ते हैं और देवताओं के ऊपर क्रुद्ध होकर शाप देकर उनको मनुष्य करसक्ते हैं ऐसे ब्राह्मणों को कोपित करके कौन बढ़सक्ता है ॥ ३१५॥

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ॥ ३१६ ॥

पृथिवी आदि लोक और देवता यजन याजनादि करनेवाले जिन ब्राह्मणोंका आश्रय करके स्थित हैं, और वेद ही जिनका धन है उन ब्राह्मणों की हिंसा कौन जीवित रहनेकी इच्छा करनेवाला करेगा ॥ ३१६ ॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥

ब्राह्मण विद्याहीन हो वा विद्वान् हो सबका परम देवतास्वरूप है, जैसे संस्कृत वा असंस्कृत अग्नि परम देवता स्वरूप है ॥ ३१७ ॥

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ॥ हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥

महातेजा अग्नि श्मशान में शवका दाह करने के कार्य से भी अपवित्र नहीं होता है और वही अग्नि यज्ञकर्म में हूयमान होकर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३१८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥

तैसे ही ब्राह्मण यदि निन्दित कार्य में प्रवृत्त होयँ तथापि वह सब के पूजनीय हैं, क्योंकि- ब्राह्मण परम देवतास्वरूप हैं ॥ ३१९ ॥

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ॥ ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

ब्राह्मण पीड़ा देनेवाले क्षत्रिय को शाप अभिचार आदि के द्वारा दमन करै, क्योंकि- क्षत्रिय ब्राह्मण से उत्पन्न है ॥ ३२० ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३२१ ॥

जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है, अग्नि का तेज सब वस्तुओं को जलाता है, क्षात्रियका तेज सबको दबादेता है और लोहे के शस्त्र सब को काट डालते हैं और अन्त में यह सब तेज अपने उत्पत्तिस्थान में शान्त होजाते हैं॥

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥ ३२२ ॥

ब्राह्मणविहीन क्षत्रिय कभी वृद्धि नहीं पासक्ता और ब्राह्मणभी क्षत्रिय के विना वृद्धि नहीं पासक्ता। क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व एकत्र मिलने पर इसलोक और परलोकमें परस्पर वृद्धि पाते हैं ॥ ३२२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ ३२३ ॥

राजा कभी किसी अनिष्टदर्शन से वा असाध्य रोग आदि से अपने को आसन्नमृत्यु समझै तो महापातकी के धनके सिवाय दण्ड से पाया हुआ व्यय से शेषरहा हुआ धन ब्राह्मणों को देकर तथा पुत्रको राज्य देकर युद्ध में अथवा अनशन व्रत से प्राणों को त्याग देय ॥ ३२३ ॥

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥ हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥ ३२४ ॥

इसप्रकार राजधर्म में यत्न के साथ व्यवहार करके राजा सब लोकों के हितके लिये सब मंत्रियों को व्यवहार के देखने पर नियत करै॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ॥ इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ ३२५ ॥

राजा के परम्परा से चलनेवाले कार्य के अनुष्ठान की विधि तुम से कही। अब वैश्य और शूद्र के कर्म कहते हैं सुनो ॥ ३२५ ॥

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ ३२६ ॥

वैश्यवर्ण उपनयनपर्यन्त संस्कार से संस्कृत

होकर स्त्री को ग्रहण करने के अनन्तर खेती आदि कार्य सिद्ध करने के लिये सदा पशुपालन में लगारहै ॥ ३२६ ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ ३२७ ॥

प्रजापति ने पशुओं को रचकर वह पालन करने के निमित्त वैश्य को दिये, और प्रजाओं को रचकर वह रक्षा करने के निमित्त ब्राह्मण और क्षत्रियों को सौंप दी ॥ ३२७ ॥

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ॥ वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ ३२८ ॥

वैश्यवर्ण कभी ऐसी इच्छा न करै कि—मैं नीचकर्म पशुपालन को न करूँगा, क्योंकि—वैश्य के पशुपालन में समर्थ होतेहुए दूसरा पशुपालन का अधिकारी नहीं होसक्ता॥३२८॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ ३२९ ॥

वैश्य मणि, मोती, मूँगे,लोहा आदि धातु, वस्त्र आदि, कपूर आदि गन्ध, लवण आदि रस इनके मूल्य की न्यूनाधिकता को जानै ॥

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥ मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

वैश्य बीजों के बोने की रीति को जानै, खेतों के दोषगुणों को जानै, प्रस्थ द्रोण आदि परिमाण और सब प्रकार की तोलों को जानै ॥ ३३० ॥

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥ लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥ ३३१ ॥

वस्तुओं की उत्तमता और अप्रमाणता को जानै, किस देश में वस्तु लेजाने से लाभ और किस देश में लेजाने से हानि होगी एस देशों के गुण दोषों को जानै, तथा वस्तुओं को कितने दिन रखने से लाभ वा हानि होगी यह और इस देशकाल में तृणयवादि से पशुओं की वृद्धि वा क्षीणता होगी यह सब जानै ॥ ३३१ ॥

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३३२ ॥

गोपालादि भृत्यों का देश, काल, कर्म के अनुसार वेतन जानै, मनुष्यों की देशानुसार अनेकों प्रकार की भाषा जानै, द्रव्यों के रखने की रीति और खरीदने बेचने की रीति जानै ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥

धर्मानुसार द्रव्य के ऊपर वृद्धि लेने में उत्तम यत्न करै, उद्योग करके सकल दीन प्राणियों को अन्न देय ॥ ३३३ ॥

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ॥ शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३३४ ॥

वेद जाननेवाले, गृहस्थ, अपने धर्म का अनुष्ठान करने से प्रसिद्ध ब्राह्मणों की सेवा करना शूद्र का और धर्मों की अपेक्षा उत्तम धर्म है तथा परमकल्याण का हेतु है ॥३३४॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ॥ ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ३३५ ॥

बाहर और भीतर से पवित्र तथा अपनी जाति से उत्तम जाति की सेवा करनेवाला

तथा निरहङ्कार, मधुरभाषी, प्रथम तो ब्राह्मण का आश्रित उसके अभाव में क्षत्रिय वा वैश्य का आश्रित जो शूद्र वह अपनी जाति में उत्तमता को प्राप्त होता है ॥ ३३५ ॥

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ॥ आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ३३६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यह निरापद् दशा का सब वर्णों का उत्तम धर्म कहा। अब उनको आपत्तिकालमें जो धर्म कहा है उसको क्रम से सुनो ॥ ३३६ ॥

इति श्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवाद-सहितोनवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥

वैश्य शूद्रों के कर्म कहकर, अनुलोम, प्रतिलोम और सङ्करजातियोंके धर्मोंकी अनुक्रमणिका में प्रतिज्ञा है, उनका वर्णन करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के प्रधान धर्म अध्ययन और ब्राह्मण का अध्यापान पहिले कहा है तथापि उसको फिर कहते हैं, ब्राह्मणादि तीनों वर्ण अपने २ कर्म में स्थित होकर वेद को पढ़ें, उनमें से केवल ब्राह्मणही पढ़ावे । इससेही क्षत्रिय और वैश्य को पढ़ाने के कार्य को करने का निषेध सिद्ध होता है यह शास्त्र का निश्चय है ॥ १ ॥

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २ ॥

सकल वर्णों की शास्त्रानुसार जीविका का उपाय ब्राह्मण जानै और उन उपायों का तिन सबों को उपदेश देय और आप भी शास्त्र की आज्ञानुसार सकल कर्मों को करें ॥ २ ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ॥ संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ३ ॥

जाति की उत्तमता से, हिरण्यगर्भ के उत्तमाङ्ग से उत्पन्न होने के कारण, वेद पढ़ना पढ़ाना आदि नियम को धारण करने से और संस्कारों की विशेषता से ब्राह्मण सब वर्णों का प्रभु है ॥ ३ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजाति कहाते हैं, क्योंकि इनका उपनयन संस्कार होता है, चौथी एक जाति शूद्र है, पांचवां वर्ण कोई नहीं है ॥ ४ ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥ आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥

अक्षतयोनि विवाहिता ब्राह्मणी के विषय ब्राह्मण की उत्पन्न करीहुई सन्तान ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय में क्षत्रिय से उत्पन्न क्षत्रिय, वैश्या में वैश्य से उत्पन्न वैश्य और शूद्रा में शूद्र से उत्पन्न शूद्र होता है, समान वर्ण की पत्नीकी सन्तान ऐसी होगी । इन कही हुई पत्नियों से अन्य पत्नियों में उत्पन्न पुत्र वर्ण का न होकर अन्यजाति का होगा ॥

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ॥ सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

ब्राह्मण से क्षत्रिया में क्षत्रिय से वैश्या में और वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुई सन्तानहीन जाति की माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण निन्दित होने से पिता आदि की सदृश होगी, पिता की सजातीय नहीं होगी ऐसा मनुजी आदि ने कहा है ॥ ६ ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ॥ द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मण से क्षत्रिया में, क्षत्रिया से वैश्या में और वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुई सन्तान की सनातनविधि कही अब दो वर्णों में एक वर्ण वा दो वर्ण का व्यवधान होकर अर्थात् ब्राह्मण से वैश्या में क्षत्रिय से शूद्रा में और ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुई सन्तान के धर्म की यह विधि जानै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥ निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

ब्राह्मण से विवाहिता वैश्यकन्या में अम्बष्ठ नामक सन्तान होती है और ब्राह्मण से विवाहिता शूद्रकन्या में उत्पन्नहुई सन्तान को निषाद कहते हैं जो कि पराशव कहाता है॥८॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥ क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥

क्षत्रिय से विवाहिता शूद्रकन्या में उत्पन्न संतान अतिक्रूर आचार विहारवाली, तथा क्षत्रिय और शूद्रके सम्बन्धी शरीर को धारण करेहुए और उग्र नामक उत्पन्न होती है ।९।

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः॥ वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

ब्राह्मण की क्षत्रियादि तीन वर्णों में, क्षत्रिय के वैश्यादि दो वर्णों में और वैश्य की एक शूद्र वर्ण में उत्पन्न यह छः सन्तान, सवर्णा स्त्री में उत्पन्न हुए पुत्र से नीच हैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ॥ वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११ ॥

क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र शूद्रजाति वाला होता है, वैश्य से क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुए पुत्र क्रम से मागध और वैदेह जाति के होते हैं ॥११॥

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

शूद्र से वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ण की स्त्रियों में उत्पन्नहुए पुत्र क्रम से आयोगव, क्षत्ता और मनुष्यों में अधम चण्डाल जाति के वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥ क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥

एक का अन्तर देकर अर्थात् ब्राह्मण से वैश्य कन्या में और क्षत्रिय से शूद्रकन्या में उत्पन्न अम्बष्ठ और उग्र सन्तान अनुलोमभाव से जैसे स्पर्शादि के योग्य होती है वैसेही प्रतिलोमभाव से एकजाति का अन्तर करके अर्थात् शूद्र से क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न क्षत्ता और वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न वैदेह यह दो जाति स्पर्श योग्य होंगी ॥१३॥

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ॥ ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

एक वर्ण से अगले वर्ण की स्त्री में जो द्विजों के पुत्र क्रम से कहे, उनको हीन जाति की माता के दोष से माता की जाति के संस्कारों के योग्य कहते हैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते। आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥

क्षत्रिय से शूद्र में उत्पन्न हुई जो उग्र जाति की कन्या तिस में ब्राह्मण से आवृत जाति की सन्तान उत्पन्न होती है ब्राह्मण से अम्बष्ठ कन्या में उत्पन्न सन्तान आभीर जाति की और आयोगवी में ब्राह्मण से उत्पन्न सन्तान धिग्वण जाति की होती है ॥ १५ ॥

आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम्। प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्राद‍पसदास्त्रयः ॥ १६ ॥

आयोगव, क्षत्ता और मनुष्यों में अधम चण्डाल यह तीनों प्रतिलोमभाव से शूद्र से उत्पन्न होते हैं अतः यह तीनों पुत्र कार्य करने में असमर्थ हैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु। प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः॥१७

वैश्य से क्षत्रिया में उत्पन्न मागध और ब्राह्मणी में उत्पन्न वैदेह तथा क्षत्रियसे ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत यह तीनोंभी प्रतिलोमभाव से उत्पन्न होनेके कारण पुत्रकार्य से रहित हैं।

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः। शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

निषाद से शूद्रा में उत्पन्न पुत्र जाति में पुक्कस नाम से कहा जाता है और जो निषाद कन्या में शूद्र से उत्पन्न हो वह कुकुट जाति वाला मन्वादिकों ने कहा है ॥ १८ ॥

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते। वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते॥

क्षत्ता पुरुष से उग्रा में उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहाता है और वैदेह जाति के पुरुष से अम्बष्ठ जाति की स्त्री में उत्पन्न सन्तान वेण कहाती है ॥ १९ ॥

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्। तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

द्विजाति, बिबाहिता सवर्णा स्त्रियों में जिन पुत्रों को उत्पन्न करते हैं वह पुत्र यदि यज्ञोपवीत आदि व्रतरूप संस्कारहीन हों तो गायत्री से भ्रष्टहुए उनको व्रात्य नाम से व्यवहार करें ॥ २० ॥

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः। आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥

व्रात्यब्राह्मण से सवर्णास्त्री में जो सन्तान हो वह पापात्मा भूर्जकण्टक जाति का होता है और इसीको आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख भी कहते हैं ॥ २१ ॥

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च। नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्री में झल्ल, मल्ल, निच्छिबि, नट, करण, खश और द्राविण नामक जातिसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न होता है॥

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च। कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥

व्रात्य वैश्य से सवर्णा स्त्री में सुधन्वाचार्य

कारुष, विजन्म, मैत्र और सात्वतनामक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ॥ स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

ब्राह्मणादि वर्णों के व्यभिचार से, विवाह के अयोग्य सगोत्रादि स्त्री के साथ विवाह करनेसे और अपने कर्मोंको त्यागने से वर्णसङ्कर होजाते हैं ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥

जो प्रतिलोम और अनुलोम से उत्पन्न होने वाले वर्णसङ्करजाति हैं वह कहे और जो सङ्कर जातियों में परस्पर सन्तान उत्पन्न हों उन सबका वर्णन करते हैं ॥ २५ ॥

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ॥ मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥ २६ ॥ एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ॥ मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥

सूत, वैदेहक, मनुष्यों में अधम चण्डाल मागध, क्षत्ताजाति तथा आयोगव, यह छः अपनी २ जाति की स्त्रीमें अपने समान वर्णों को उत्पन्न करते हैं और ब्राह्मणादि श्रेष्ठजातियों में तथा शूद्रजाति में भी सन्तान माता की जाति की समान होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ॥ आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ॥ २८ ॥

जैसे क्षत्रियादि तीनों वर्णों में से क्षत्रिया और वैश्या स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न सन्तान इस ब्राह्मण का आत्मा अर्थात् द्विज होता है ऐसे ही वैश्य से क्षत्रिया में उत्पन्न सन्तान और क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न सन्तान जो मूर्धावसिक्त आदि तिससे अपने योनिकी स्त्री में उत्पन्न सन्तान और आयोगवादि बाह्यजातियों की अपनी जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न सन्तान उनके समान जातिकी ही होती है ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ॥ परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥

सूत आदि जो निन्दित सन्तान उत्पन्न होती हैं वहभी अपनेसे भी अधिक दूषित, सत्कर्मों से बहिर्भूत और निन्दित सन्तानों को परस्पराकी स्त्रियों में सङ्करभाव से उत्पन्न करते हैं ॥ २९ ॥

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तु प्रसूयते ॥ तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

जैसे शूद्र ब्राह्मणी में सत्कर्म से बहिर्भूत चण्डाल प्राणीको उत्पन्न करता है तैसेही यह चण्डाल आदि बाह्यजाति ब्राह्मणादि वर्णोंकी स्त्रियोंमें अपनेसे भी नीच सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ॥ हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥ ३१ ॥

शूद्र से उत्पन्न हुए आयोगव, क्षत्ता और चण्डाल यह तीन बाह्यजाति के हीन पुरुष, चारों वर्ण की स्त्रियोंमें और अपनी २ जाति की स्त्री में जिस २ सन्तान को उत्पन्न करते हैं वह अपने २ अपेक्षा और भी नीच होती हैं जोकि पन्द्रह प्रकार की होती हैं ॥ ३१ ॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥ सैरन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ।३२।

शूद्र से वैश्या में उत्पन्न दस्युजाति आयोगवी स्त्री में जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह बालों की रचनादि कार्य को जानने वाला, जूठन खाना आदि दास कर्म से रहित, शरीर दाबना आदि दास कर्म करने वाला तथा जाल बनाकर मृगवध से जीविका करने वाला सैरन्ध्र नाम वाला होता है ॥ ३२ ॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते॥ नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये॥

वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह जाति का पुरुष, पूर्व कहीहुई आयोगवी स्त्री में मैत्रेयनामक मधुर भाषी सन्तान को उत्पन्न करता है। जो कि प्रातःकाल घण्टा आदि बजाकर राजा आदि मनुष्यों की स्तुति करता है ॥ ३३ ॥

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण से विवाहिता शूद्रामें उत्पन्न निषाद नामक सन्तान आयोगवी स्त्री में नौका का कर्म करके जीविका करनेवाली दास नामक संतान को उत्पन्न करती है जिसको आर्यावर्त्त देश के वासी कैवर्त्त जाति कहते हैं ॥ ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ॥ भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥

मृतकोंके वस्त्र धारण करनेवाली निन्दित भोजन करनेवाली आयोगवी स्त्रियों में यह जाति में हीन भिन्न २ तीन सन्तान होती हैं ॥३५॥

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते ॥ वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ॥३६।

निषाद से वैदेही स्त्री में उत्पन्न कारावर नामक चर्मकार जाति उत्पन्न होती है और वैदेहिक जाति से कारावर अन्ध्रजाति उत्पन्न होती है, तथा निषाद की स्त्री में मेद नामक जाति उत्पन्न होती है, यह दोनों जाति ग्राम से बाहर बसैं ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥ आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥

चण्डाल से वैदेह जाति की स्त्रीमें बांस के व्यवहार से जीविका करने वाला पाण्डुसोपाक नामक पुत्र उत्पन्न होता है और निषाद पुरुष से वैदेह जाति की स्त्री में आहिण्डिक पुत्र उत्पन्न होताहै,काराबार जाति और आहिण्डिक जाति के माता पिता एक होने पर भी वृत्ति के भेद से नाम का भेद है ॥ ३७ ॥

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ॥ पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

निषाद से शूद्रामें उत्पन्न हुई पुक्कसीके विषै चण्डाल से जो सन्तान उत्पन्न हो वह मारण के योग्य अपराध करने वालेका प्राणान्त करने से आजीवका करनेवाला, सज्जनों में निन्दित और अतिपापकारी होता है इस पापिष्ठ जाति को सोपाक कहते हैं ॥ ३८ ॥

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ॥ श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥ ३९ ॥

निषाद जाति की स्त्रीमें चण्डालसे अन्त्यावसायी नामक,श्मशानमें बसनेवाला, चंडालों में भी निन्दित पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥ ४० ॥

सङ्कर होने पर पिता माता का नाम लेकर

यह जाति कही, जिनके माता पिता ज्ञात न होंऐसे गुप्त वा प्रकट पुरुषों की जाति उनके कर्मों से जानै ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥

द्विजों की अपने २ वर्ण की स्त्री में उत्पन्न सन्तान, यह तीन और ब्राह्मणसे क्षत्रिया में, क्षत्रिय से वैश्या में तथा वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न सन्तान, यह तीन ऐसे यह छः सन्तान द्विजधर्म का अवलम्बन करनेवाली हैं अतः इनका उपनयन आदि संस्कार करना चाहिये और जो द्विजातियों से प्रतिलोमरूप से सूतादि उत्पन्न हों वह शूद्र धर्मी होते हैं अर्थात् उनका उपनयन संस्कार नहीं है ॥ ४१ ॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ॥ उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

यह छः प्रकार की सन्तान तपस्या के प्रभाव से विश्वामित्रादि की समान और बीज के प्रभाव से तथा सत्य त्रेतादियुगों के माहात्म्य से ऋष्यशृङ्गादि मुनियों की समान जाति के उत्कर्ष और आगे कहेहुए कारणों से हीनता को भी प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥

आगे के श्लोक में कहेहुए यह सब क्षत्रिय क्रम से उपनयन आदि संस्कारहीन होने के कारण, यज्ञ कराने, पढ़ाने और प्रायश्चित्तादि के निमित्त ब्राह्मणों का दर्शन न होने से शूद्रभाव को प्राप्त होजाते हैं ॥ ४३ ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्राविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ॥ पारदापल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

पौण्ड्रक, उड्र, द्राविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, अपल्हव, चीन, किरात, दरद, खश, यह सब पूर्वोक्त कर्मदोष से शूद्रभाव को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण क्षत्रियादिकों में जो सब जातियें कर्म लोप आदि दोष से बाह्यजातिपन को प्राप्त होजायँ, वह म्लेच्छ भाषी हों वा आर्यभाषी हों सब दस्यु कहलाते हैं ॥ ४५ ॥

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥

जो द्विजातियों से अनुलोमभाव से उत्पन्न हुए हों वह अपसद, तथा जो प्रतिलोमभाव से उत्पन्न हुए हों वह अपध्वंसज, यह दोनों जाति, ब्राह्मणादि के उपकारक नीचकर्मों के द्वारा जीविका करैं ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥ वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥

सूतों की, घोड़ों का सारथि होना, अम्बष्ठों की चिकित्सा करना, वैदेहकों की रणवास की रक्षा आदि करना और मागधों की स्थल मार्ग सेवा जलमार्ग से व्यापार करना वृत्ति है ॥ ४७ ॥

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ॥ मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥

निषादों की वृत्ति मत्स्यमारना, आयोगवों की वृत्ति काठ का छीलना फाड़ना, ब्राह्मण वैदेहक स्त्रीमें उत्पन्न चुञ्चूजाति और ब्राह्मण से वन्दीकी स्त्री में उत्पन्न जाति तथा मेद और अन्ध्रजाति की वृत्ति जङ्गली पशुओं का वध करना है ॥ ४८ ॥

क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ॥ धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥

क्षत्ता, उग्र और पुक्कस जातियें बिलों(भट्टों) में रहने वाले जीवों का वध और बन्धन कर के जीविका करैं, धिग्वण चमड़े का कार्य करैं और वेणजाति करताल मृदङ्गादि बजाकर जीविका करैं ॥ ४९ ॥

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥ वसेयुरेते विज्ञाना वर्त्तयन्तः स्वकर्मभिः॥

ग्रामआदि के समीप जो बड़े वृक्ष हों उन को चैत्य कहते हैं, तिनकी मूल में, श्मशान में पर्वतों के समीप वा बागों के समीप यह सब जातियें अपने कर्मों से जीविका करते हुए बसैं ॥ ५० ॥

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥

चण्डाल और श्वपचों का ग्राम से बाहर वास हो और इनको पात्र व्यवहार में न लावै तथा कुत्ते और गर्दभ इनका धन होय ॥५१॥

वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥ कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

यह मृतकों के ऊपर के वस्त्रों को पहिरैं, टूटे हुए पात्रों में भोजन करैं, लोहे के आभूषण पहिरैं और सदा भ्रमण करते रहैं, सदा एक स्थानपर ही न बसैं ॥ ५२ ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥

साधुपुरुष जिस समय वैधकर्म का अनुष्ठान करैं उस समय इनका दर्शन आदि न करैं, यह अपने जातिवालों से ऋणदेना आदि व्यवहार करैं और अपनी समान जातिवालों में ही विवाहादि सम्बन्ध करैं ॥ ५३ ॥

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

साधुपुरुष इनको साक्षात् अन्न न दें, किन्तु सेवक के द्वारा टूटेहुए पात्र में दें, यह रात्रि के समय ग्राम और नगरों में न विचरैं ॥५४॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः॥ अबान्धवं चैव शवं निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥

यह दिन में, खरीदने बेचने आदि व्यवहार के निमित्त, राजाकी आज्ञासे किसी चिह्न से युक्त होकर विचरैं और अनाथ मृतकों को ग्राम से बाहर लेजायँ ॥ ५५ ॥

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥ वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

सदा राजा की आज्ञा के अनुसार शास्त्र की आज्ञाको मानकर, यह वध के योग्य अपराध करनेवालों का वध करैं और उन वध्यों के जो वस्त्र, शय्या और आभूषण आदि हों उनको ग्रहण करैं ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनि-

जम् ॥ आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥

वर्णों से बहिर्भूत सङ्करजाति होती है, परन्तु किसप्रकार सङ्कर है ऐसा जिसके विषय में विशेषरूप से निश्चय न हो एसे पुरुष की जाति आगे कहेहुए निन्दित कर्मों के अनुसार जानै ॥ ५७ ॥

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ॥ पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

निष्ठुरता, कठोर भाषण करना, हिंसकता, वैधकर्मों का अनुष्ठान न करना यह सब बातें लोक में पुरुषों की निन्दित जाति को प्रकाश करती हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥ न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥

जो निन्दित जाति का होता है वह पिता के वा माता के अथवा दोनों के दुष्ट स्वभाव को धारण करता है, निन्दित जातिवाला माता पिता के स्वभाव को कभी नहीं छुपासक्ता ॥

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसंकरः ॥ संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

श्रेष्ठकुल में उत्पन्नहुए भी जिस पुरुष की माताका गुप्तरूप से व्यभिचार होता है तो वह थोड़े वा बहुत उत्पन्न करनेवाले के स्वभाव को धारण करता ही है, छुपा नहीं सक्ता ॥

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥

जिस राज्य में वर्णको दूषित करनेवाली वर्णसङ्कर जाति उत्पन्न होती है, वह राज्य सकल बसनेवाली उत्तम प्रजाओं के साथ नष्ट होजाता है, अतएव वर्णसङ्कर जाति को राज्य से निकाल देय ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ॥ स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण, गौ, स्त्रियें और बालक इनपर विपत्ति आवै तो इनकी रक्षा करने के लिये किसी लौकिक प्रयोजन के बिना शरीर देदेना प्रतिलोमज बाह्यजातियों को भी स्वर्ग का कारण होता है ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शरीर की शुद्धि, और इन्द्रियों को वशमें रखना यह मनुजी ने संक्षेपसे चारों वर्णोंका धर्म कहा है।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ॥ अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

विवाहिता शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न हुई पारशवी कन्या यदि अन्य ब्राह्मण से विवाहिता हो उसके द्वारा उसमें उत्पन्नहुई कन्या यदि ब्राह्मण से विवाहित हो इसप्रकार सात जन्मतक होते होते सातवें जन्म में वह पारशव जाति बीजकी उत्तमताके कारण ब्राह्मण हो जाती है ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

क्रमसे शूद्र भी ब्राह्मणभावको प्राप्त होजाता है और ब्राह्मण भी शूद्रभाव को प्राप्त होजाता है, इसमें दृष्टान्त जैसे ब्राह्मण की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न पारशव जाति, यदि शूद्रा से

विवाह करके उसमें पुत्र उत्पन्न करै, वह पुत्र भी शूद्रा से विवाहकर उसमें पुत्र उत्पन्न करै तो ऐसाही शूद्रा के साथ विवाह होते २ सातवें जन्म में वह वास्तविक शूद्रजाति होजाता है, और ब्राह्मण होने का दृष्टान्त ऊपर के श्लोक में कहाही है, इसी प्रकार क्षत्रिय की विवाहिता शूद्रा में जो कन्या उत्पन्न हो उसमें यदि अन्य क्षत्रिय विवाह करके कन्या उत्पन्न करै इस प्रकार पांचवें जन्म में उससे उत्पन्न संतान क्षत्रिय होगी ऐसेही क्षत्रिय से शूद्रा में उत्पन्न पुरुष यदि शूद्रा से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करै, इसप्रकार होते २ पांचवें जन्म में उस की संतान शूद्र होजायगी; इसी प्रकार वैश्य की विवाहिता शूद्रा में जो कन्या उत्पन्न होय वह यदि वैश्य से विवाह करके और कन्या उत्पन्न करै इसप्रकार तीसरे जन्म में उसकी संतान वास्तविक वैश्य होजायगी तथा वैश्य शूद्रा से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करै और वह शूद्रा से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करै इसप्रकार तीसरी पीढ़ी की सन्तान शूद्र होजायगी ॥ ६५ ॥

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया। ब्राह्मण्यामप्यनार्याच्च श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥

शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न सन्तान और ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न संतान होय तो इन दोनों में से किस में श्रेष्ठता है ऐसा प्रश्न होय तो ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः। जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥

ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न सन्तान यदि पाकयज्ञादि के अनुष्ठान रूप गुणों से युक्त होय तो वह श्रेष्ठ है और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न सन्तान तो स्वभाव से ही अधम होती है. ऐसा निश्चय जानै ॥ ६७ ॥

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः। वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

यह दोनों संस्कार के योग्य नहीं हैं ऐसी धर्मकी व्यवस्था है, पहिला पारशव शूद्रा में उत्पन्न होनेके कारण जातिमें विगुणता होने से उपनयन के योग्य नहीं है और प्रतिलोमभाव से शूद्र के द्वारा ब्राह्मणी में उत्पन्न होने के कारण दूसरा चण्डाल जाति जन्म में विगुणता होने के कारण उपनयनादि संस्कारोंके योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा। तथाऽऽर्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥

जैसे उत्तम खेत में उत्तमबीज बोने से अति-उत्तम अन्न उत्पन्न होता है तैसे ही सवर्णा द्विजातिस्त्री में सवर्ण द्विजाति पुरुष से उत्पन्न हुई संतान उपनयनादि सब संस्कारों के योग्य होती है ॥ ६९ ॥

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः। बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

ऋष्यशृङ्गादि हरिणी आदि में उत्पन्न होकरभी उत्तमहुए हैं, यह देखकर कोई पण्डित बीज की प्रशंसा करते हैं, कोई जिसका क्षेत्र उसीकी संतान होती है ऐसा देखकर क्षेत्र की प्रशंसा करते हैं और कोई २ पण्डित बीज और क्षेत्र दोनों की प्रशंसा करते हैं, इस विषय में यह आगे कहीहुई व्यवस्था जानना चाहिये।

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्य-

ति ॥ अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१

ऊषर भूमि में बोयेहुए बीज का अंकुरित होना तो दूर रहा वह बीज ही नष्ट होजाता है और उत्तम खेतमी बीज न पड़ने से स्थंडिल (कल्लड़) होकर निष्फल होजाता है ॥ ७१

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ॥ पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥ ७२ ॥

क्योंकि–बीज के प्रभावसे हरिणी आदि से उत्पन्न ऋष्यशृङ्गआदि महर्षि होगये, और वह सब के पूजनीय तथा वेद के ज्ञान आदि के द्वारा सब से प्रशंसित हुए इसकारण बीज प्रशंसा कियाजाता है ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्॥ सम्प्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७३ ॥

शूद्र यदि द्विजाति का कर्म करता होय और द्विजाति यदि शूद्र का कर्म करता होय तो यह दोनों समान नहीं हैं और असमान भी नहीं हैं ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है, तात्पर्य यह है कि शूद्र द्विजाति के कर्म करने से भी द्विजाति की समान नहीं होसक्ता, क्योंकि–शूद्र द्विज के कर्म का अधिकारी नहींहै फिर द्विजाति कैसे होसक्ता है । और द्विजाति शूद्र के समान नहीं होसक्ता, क्योंकि–निन्दित कर्म करने से जाति का नाश नहीं होता है ॥७३॥

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ॥ ते सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथा क्रमम् ॥ ७४ ॥

जो ब्राह्मण, ब्रह्मप्राप्ति के कारण ब्रह्मध्यान में निष्ठ और अपने कर्मों के करने में निष्ठावान् होते हैं वह आगे कहेहुए अध्यापन आदि छः कर्मों को क्रम से करके उचित आजीविका करें ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा॥ दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः॥

अङ्गों सहित वेद का पढ़ाना, पढना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान करना और प्रतिग्रह यह छः कर्म ब्राह्मणों के हैं ॥ ७५ ॥

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ॥ याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

उन छः कर्मों में, यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और सत् दान लेना, यह तीन कर्म ब्राह्मण की जीविका के हैं ॥ ७६ ॥

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ॥ अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ७७ ॥

अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह यह तीन कर्म जीविका के लिये ब्राह्मण की अपेक्षा क्षत्रिय से निवृत्त होजायँगे अतः क्षत्रिय के केवल पढना, यज्ञ करना, दान करना यह तीन कर्म जानने ॥ ७७ ॥

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ॥ न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥ ७८ ॥

तैसे ही वैश्य के विषय में भी यह तीन कर्म निवृत्त होंगे ऐसी शास्त्र की मर्यादा है, क्योंकि प्रजापति मनुजीने इन दोनों जातियों के लिये अध्यापन आदि कर्म नहीं कहे हैं ॥७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ॥ आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥

प्रजा की रक्षाके लिये खड्गादि शस्त्र और बाणआदि अस्त्र धारण करना क्षत्रिय की वृत्ति व्यापार पशुपालन और खेती करना वैश्य की जीविका के लिये हैं तथा क्षत्रिय वैश्य के दान, अध्ययन और याग धर्मार्थ हैं ॥ ७९ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् । वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

ब्राह्मण का अपने कर्मों में वेदका अभ्यास क्षत्रिय का प्रजापालन और वैश्य का वाणिज्य तथा पशुपालन विशेषधर्म है ॥ ८० ॥

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥

यदि ब्राह्मण शास्त्रोक्त अपने कर्म से कुटुम्बके पालन पूर्वक जीविका न करसकै तो क्षत्रिय के धर्मसे जीविका करै क्योंकि यह धर्म ब्राह्मणों का आसन्नधर्म है ॥ ८१ ॥

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥

स्वधर्म और क्षत्रियधर्म के द्वारा ब्राह्मण की जीविका न चलै तो कैसे होय ? इसका उत्तर यह है कि–खेती गोपालन आदि करके वैश्यकी जीविका से निर्वाह करै ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा । हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥

वैश्यवृत्ति से भी जीविका करतेहुए ब्राह्मण और क्षत्रिय, हल कुदाल आदि से भूमिमें के जन्तुओं की हिंसासे युक्त और बैलआदि के अधीन खेती के काम को यत्न करके त्यागै ॥

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता । भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥ ८४ ॥

कोई पण्डित खेती को अच्छा मानते हैं परन्तु वह साधुपुरुषों में निंदित है, क्योंकि हल कुदाल आदि अग्रभाग में लोहालगाहुआ काठ भूमि और भूमिमें के सकल जन्तुओं का नाश करता है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् । विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय यदि अपनी जीविका न होनेपर धर्मपर यथावत् निष्ठा न रखसकैं तो वैश्य के बेचनेके द्रव्यों से आगे कहेहुए जिन द्रव्यों के बेचने का निषेध है उन को छोड़ कर अन्य द्रव्यों के विक्रय से जीविका करैं ॥

सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह । अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

सकलरस, पक्वान्न, तिल, पत्थर, लवण पशु और मनुष्यों को न बेचै ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥

लालवर्ण के सबप्रकार के सूती वस्त्र और सन अलसी तथा मेषके लोमोंके वस्त्र लाल न हों तौभी न बेचै और फल, मूल तथा औषधि न बेचै ॥ ८७ ॥

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः । क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमलताकारस, कपूर आदि गन्ध द्रव्य, दूध, दही, घी, तेल,

गुड़, कुशा, शहत, यह न बेचै ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥ मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥ ८९ ॥

सबप्रकार के जङ्गली पशु, सिंह आदिदाँतोंवाले पशु, तोता मैना आदि पक्षी, मद्य, नील, लाख तथा जुड़ेहुए खुरवाले घोड़े आदि पशुओं को न बेचै ॥ ८९ ॥

काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ॥ विक्रीणीत तिलाञ्छुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥ ९० ॥

आप हलजोतकर तिलउत्पन्न करके और उनमें दूसरी वस्तु बिनामिलाये वा धोकर कर्म के लिये यथेष्ट बेचसक्ता है परन्तु उनको उत्पन्न होने के अनन्तर ही बेचडालै, लाभ की आशा से अधिक दिन रखकर न बेचै ९०

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥

भोजन, उबटन और दान के सिवाय अन्य कार्य के लिये यदि तिल बेचै तो इस दोष से परलोक में पिता-पितामह-प्रपितामह सहित कृमि होकर श्वान की विष्ठा में पड़ताहै ९१

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवण के बेचने से ही पतित होजाता है, तीनदिन बराबर दूध बेचने से शूद्रभाव को प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ॥ ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥

ब्राह्मण, मांसादि के सिवाय अन्य निषिद्ध पदार्थ इच्छा करके सातदिनतक बेचै तो वैश्य भाव को प्राप्त होता है ॥ ९३ ॥

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥ कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

घृतादि रसके स्थान में गुड़ादि रस होसक्ता है परन्तु लवणरस का परिवर्तन कभी नहीं होसक्ता, पक्कान्न के स्थान में कच्चा अन्नहोसक्ता है, तिल धान्यों की समान होसक्ते हैं परन्तु तोल में समान हों ॥ ९४ ॥

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥ न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥

विपत्तिग्रस्त क्षत्रिय, ब्राह्मण को आपत्तिकाल में कहीहुई जीविका से आजीवन करै, परन्तु ब्राह्मण की वृत्ति से जीविका करनेका कभी मनसे विचार भी न करै ॥ ९५ ॥

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

यदि नीचजाति लोभ में आकर उत्तम जाति की वृत्ति से जीविका करै तो राजा उसको, सर्वस्व छीनकर शीघ्रही देशसे निकाल देय ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥

अपना धर्म निकृष्ट हो तब भी श्रेष्ठ है, दूसरे का धर्म भलीप्रकार करना भी अच्छा नहीं है, जो अपने धर्म से जीवन में समर्थ होकर भी यदि परधर्म करता है तो वह तत्काल

पतित होता है ॥ ९७ ॥

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्त्तयेत्। अनाचरन्नकार्याणि निवर्त्तेत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

वैश्य जब अपनी वृत्ति से जीविका न कर सकै तो जूठन खाना आदि अकर्म न करके, द्विजों की शुश्रूषा शूद्रवृत्ति के द्वारा जीविका करै परन्तु आपात्ति से छूटकर शूद्रकी वृत्ति को त्यागदेय ॥ ९८ ॥

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ॥ पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥

शूद्र यदि अपनी वृत्ति से स्त्री पुत्रादि के भरण पोषण का निर्वाह न करसकै तो सूपकार (छाजबनानेवाला) आदि के कर्म से जीविका करै ॥ ९९ ॥

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ॥ तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १०० ॥

जिन कर्मों के करने से द्विजातियों की सेवा होय ऐसे अनेकों प्रकार के कारुकर्म और शिल्प काठ छीलना चित्र बनाना आदि करै॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वपथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १०१ ॥

अपने मार्ग में स्थित ब्राह्मण वृत्ति के अभाव से दुःखित होकर यदि क्षत्रिय वा वैश्य की वृत्ति न करै तो इस आगे के श्लोक में कहेहुए धर्म का आचरण करै ॥ १०१ ॥

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः॥ पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥

विपत्तिग्रस्त ब्राह्मण निन्दित आदि सबों से प्रतिग्रह लेनेपर भी दूषित नहीं होता है, क्योंकि अतिपवित्र गङ्गाजल आदि नाली के जल आदि से अपवित्र होजाता है यह बात शास्त्रकी मर्यादा से ठीक नहीं होसक्ती॥१०२

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ १०३ ॥

आपत्तिकाल में निन्दित पुरुष को पढ़ाने और यज्ञ कराने से तथा प्रतिग्रह करने से ब्राह्मण को कोई दोष नहीं होता है, क्योंकि ब्राह्मण स्वभाव से ही अग्नि और जलकी समान पवित्र हैं ॥ १०३ ॥

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ॥ आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४ ॥

जो ब्राह्मण प्राणान्त होने की दशा को प्राप्त होकर इधर उधर से अन्न लेकर भोजन करता है व जैसे आकाश धूलिसे मलिन नहीं होता है, तैसे पाप से लिप्त नहीं होता है॥ १०४॥

अजीगर्त्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः॥ न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥

भूँखे अजीगर्त्त ऋषि भूँख का उपाय करने को शुनःशेप नामक पुत्रको बेचकर एक सौ गौ पाने के लिये उस पुत्रको यज्ञ के खंभ में बांधकर बध करने को उद्यतहुए तथापि भूँख के दूर करने के निमित्त ऐसा करने के कारण पाप से लिप्त नहीं हुए ॥ १०५ ॥

श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ॥ प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ १०६ ॥

धर्म अधर्म को जानने में प्रवीण वामदेव-ऋषि, भूँख से व्याकुल होकर श्वान के मांस

को खाने की इच्छा करतेहुए भी पाप से लिप्त न हुए ॥ १०६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने। बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥ १०७ ॥

महातपस्वी भरद्वाज मुनिने भूँख से कातर होकर, पुत्रसहित निर्जन वन में वास करते समय वृधुनामक बढ़ई से बहुत सी गौओं का प्रतिग्रह करा तथापि वह इस असत्प्रतिग्रह से पतित नहीं हुए ॥ १०७ ॥

क्षुधार्त्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम्। चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥

धर्म अधर्म के लक्षणों को जानने में चतुर विश्वामित्र ऋषि ने भूँख से कातर होकर कुत्ते की जांघ का मांस चण्डाल के हाथ से लेकर भक्षण करने का विचार करा, तथापि इससे वह पापी नहीं हुए ॥ १०८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि। प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ १०९ ॥

निन्दित को पढ़ाना, यज्ञ कराना और उस से दानलेना इनतीनों में प्रतिग्रह अतिनीच है और परलोक में ब्राह्मण को नरकगति देने वाला है ॥ १०९ ॥

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम्। प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

आपत्काल हो चाहें सम्पत्काल हो, ब्राह्मण उपनयन संस्कार से संस्कृत द्विजाति को यज्ञ करावै और पढ़ावै, नीचजाति शूद्र से भी प्रतिग्रह लेय; इससे यह सिद्ध हुआ कि याजन और अध्यापन की अपेक्षा प्रतिग्रह अतिनिन्दितकर्म है ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम्। प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥ १११ ॥

शूद्रादि को यज्ञ कराने और पढ़ाने से उत्पन्न हुआ पाप जप होमके द्वारा नष्ट होता है, असत्प्रतिग्रह से होनेवाले पापका प्रायश्चित यह है कि दान लिये हुए पदार्थको त्याग कर एक मास तक दूध पीकर तप करता रहै ॥ १११ ॥

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः। प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

विप्र अपनी वृत्ति से जीविका करने को असमर्थ होय तो उत्पातकी आदि से शिल अर्थात् मंजरीरूप से अन्न को ग्रहण करै अथवा अन्न का एक २ दाना बीनकर उञ्छवृत्ति करै यह भी अच्छा है, परन्तु शिलोञ्छवृत्ति होसकै तो असत्प्रतिग्रह कभी न करै ॥ ११२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः। याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ ११३ ॥

उञ्छवृत्तिके भी न होसकने पर दुःखित होते हुए और ताम्र कांसी आदि तथा सुवर्ण आदिधन की इच्छा करतेहुए स्नातक ब्राह्मण, राजासे याचना करैं और वह न देना चाहे तो उसको त्यागदें

अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च। हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ ११४ ॥

गृहस्थ जिस खेत में अन्न बोवै उस खेत के अन्नके लेने की अपेक्षा अपने बिनाबोये अन्न

के खेत में से प्रतिग्रह लेना श्रेष्ठ है, गौ, बकरा, मेष, सुवर्ण, वस्त्र, धान्य, पक्वान्न इन सबों में अगले २ की अपेक्षा पहिले २ द्रव्यका प्रतिग्रह अदूषित है, तात्पर्य यह है कि इनमें से पहिले पहिले का प्रतिग्रह मिले तो अगला २ न लेय ॥ ११४ ॥

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः॥ प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ ११५ ॥

दायभाग से वा पिता आदि वंशपरम्परासे प्राप्त धन, मित्र से मिला हुआ धन और खरीदा हुआ धन यह तीन प्रकारका धन चारों वर्णों को धर्मानुकूल है, बल और दण्ड से प्राप्तहुवा धन केवल क्षत्रिय को ही धर्मानुकूल है अन्न से तथा खेती और व्यापार से लाभ होकर प्राप्त हुआ धन सुवर्ण आदि वैश्यों के लिये श्रेष्ठ है, और सत्प्रतिग्रह केवल ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ है ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः॥ धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ ११६ ॥

आपत्ति न होने पर जिसको जो जीविका निषिद्ध है आपत्तिकाल में उसकी अनुमति देते हैं, जैसे विद्या (तर्क विद्या और विष को दूर करने आदि की विद्या), शिल्प (लिखना आदि), भृति (नौकरी लेकर दासभाव), सेवा (दूसरे की आज्ञाका पालन करना) व्यवहार के निमित्त गौ आदि पशुओं का पालन, व्यापार करना, अपनेआप खेती करना, सन्तोष भिक्षा मांगना, और व्याज लेना यह दश आपत्तिकाल में ब्राह्मणादि सब की जीविका के हेतु हैं॥ ११६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैवप्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥ ११७ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय आपत्तिकाल में भी सूद पर धनका व्यवहार न करें, यदि आवश्यकता ही होय तो नीचकर्म करनेवाले को थोड़े सूद पर धन देंय ॥ ११७ ॥

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥ ११८ ॥

शक्ति के अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाला राजा, आपत्तिकाल में उत्पन्नहुए अन्नका चौथाभाग लेने से अधिक कर लेने के पाप में लिप्त नहीं होगा ॥ ११८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः॥ शस्त्रेण वैश्यान्रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ ११९ ॥

शत्रुको जीतना राजा का स्वधर्म है अतः युद्ध में पीठ न देय, और शस्त्र से वैश्यों की रक्षा करके उनसे धर्मानुसार कर लेय॥११९॥

धान्येऽष्टमं विंशं शुल्कं विंशं कार्षापणावरम्॥ कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ १२० ॥

आपत्तिकाल में वैश्यों से, उत्पन्नहुए अन्न का आठवाँ भाग करलेय, सुवर्ण से लेकर कार्षापण पर्यन्त का आपत्तिकाल में बीसवाँ भाग करलेय, और शूद्र, सूपकार आदि कारु तथा शिल्पियों से किसी समय कर न लेय किन्तु उनसे कार्य करालेय ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ १२१ ॥

शूद्र यदि ब्राह्मणों की सेवा से जीविका

न करसकै तो क्षत्रिय की सेवासे जीविका करै, इसके भी अभाव में वैश्यों की सेवासे जीविका करै और इन सबके अभाव में पूर्वोक्त कर्म करै ॥ १२१ ॥

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः। जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १२२ ॥

शूद्र स्वर्ग के लिये वा स्वर्ग और अपनी जीविका दोनों के लिये ब्राह्मणकी सेवा करै, क्योंकि यह ब्राह्मणका सेवक है। यह शब्द ही शूद्र के लिये प्रसिद्ध होय तो इससे ही शूद्रकी कृतार्थता है ॥ १२२ ॥

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते॥ यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्

शूद्र के अन्य कर्मों से ब्राह्मणसेवा उत्तम कर्म है, इस के सिवाय शूद्र के और सबकर्म निष्फल हैं ॥ १२३ ॥

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ॥ शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥ १२४ ॥

ब्राह्मण सेवा करनेवाले शूद्र की सेवा करने की शक्ति, उत्साह और पालन करनेयोग्य उसके कुटुम्ब के पुरुषों की संख्या का विचार करके उसकी जीविका का निश्चय करें॥१२४॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ॥ पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥ १२५ ॥

ब्राह्मण, सेवक शूद्रको खाने को जूठा अन्न देय और पहरने को पुराने वस्त्र देय तथा धान्य का पिराल और पुरानी तोसक आदि बिछाने को देय ॥ १२५ ॥

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ॥ नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ २१ ॥

शूद्र लहसुन आदि खाय तो पाप का भागी नहीं होता है, उसके उपनयन आदि द्विजाति संस्कार नहीं हैं, उसको अग्नि होत्रादि यज्ञ का अधिकार नहीं है और पाकयज्ञादि कर्म का निषेध भी नहीं है॥ १२६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ १२७ ॥

जोधर्मज्ञ शूद्र धर्मलाभ की इच्छासे द्विजातियों का आचार व्यवहार करैं वह पञ्चमहायज्ञादि कर्मों को नमस्कारमन्त्रों से करैं तो कोई दोषनहीं है किन्तु उससे प्रशंसा पातेहैं॥

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः। तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ १२८ ॥

पराये गुणों की निन्दा न करनेवाला शूद्र जैसे २ द्विजों के आचार का अनुष्ठान करै तैसे २ लोकमें अनिन्दित होकर मान्य होता है और परलोक में स्वर्गादि पाता है॥१२८॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२९ ॥

समर्थ होकर भी शूद्र धनका संचय न करै, क्योंकि शास्त्रको न जाननेवाला शूद्र धन पाकर शुश्रूषा आदि न करताहुआ ब्राह्मणों को पीड़ा देता है ॥ १२९ ॥

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ॥ यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

यह चारों वर्णों के आपत्तिकाल के धर्म

कहे जिनको ठीक २ करतेहुए पुरुष परमगति पाते हैं ॥ १३० ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः॥१०॥

यह चारों वर्णों के धर्म की विधि पूर्णरीति से कही इसके अनन्तर शुभकारी प्रायश्चित्त की विधि कहूँगा ॥ १३१ ॥

इतिश्रीमानवेधर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहितो दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥ नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः॥२॥

प्रायश्चित की विधि कहने से पहिले दान को प्रायश्चित्त के मध्य में गिना है उसदान के पात्र नौ प्रकार के ब्राह्मण होते हैं—सन्तान के निमित्त विवाहकी इच्छा करनेवाला, अवश्य करने योग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करने की इच्छावाला, बटोही, जिसने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दक्षिणा दी हो, विद्या के लाभ के निमित्त, गुरु के भोजन वस्त्र के निमित्त, पिता माता के पोषण के निमित्त और वेदका स्वाध्याय करने के निमित्त भोजन वस्त्र की इच्छा करने वाले और रोगी, ऐसे इन नौ स्नातक ब्राह्मणों को धर्मभिक्षुक जानै, इन निर्धन ब्राह्मणों को विद्या की न्यूनाधिकता के अनुसार दानदेय ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ॥ इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥

इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यज्ञकी ४ वेदी में बुलाकर दक्षिणासहित अन्न देय और जो इन के सिवाय और आवैं उनको वेदी से बाहर पक्वान्न देना शास्त्रों में कहाजाता है॥३॥

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ॥ ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

राजा, वेद के विद्वान् ब्राह्मणों को उनकी विद्या की योग्यता के अनुसार मणिमुक्ता आदि सकल रत्नयज्ञ के निमित्त दक्षिणा रूप से देय ॥ ४ ॥

कृतदारोऽपरान्दारान् भिक्षित्वा योऽधिगच्छति॥ रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥

जो विवाह करके उस स्त्री के होते हुए सन्तति होने पर भी कामवश भिक्षा मांगकर उस धन से दूसरी स्त्री से विवाह करता है, उसको केवल मैथुनमात्रका फल मिलता है और उससे उत्पन्न हुई सन्तान धन देनेवाले की होती है तात्पर्य यह है कि—भीख मांगकर ऐसा विवाह करना वा ऐसे विवाह की इच्छा करने वाले को भिक्षा देना उचित नहीं है ॥ ५ ॥

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ॥ वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

वेदको जाननेवाले और स्त्री पुत्रादि के भरण पोषण में खेदको प्राप्त होनेवाले ब्राह्मण को जो अपनी शक्ति के अनुसार धन का

दान करके देता है वह परलोक में स्वर्ग भोगता है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥

जिसके पास तीनवर्ष वा इस से अधिक समय पर्यन्त भृत्योंका पालन करने के लिये अन्नादि पर्याप्त होय वह पुरुष काम्य सोमयाग करै, वह सोम पीने के योग्य है ॥ ७ ॥

अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ॥ स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

इस से थोड़ा द्रव्य होने पर जो विप्र सोमयाग करके सोमपियै वह पहिले किये हुए सोमयाग के फलको भी नहीं पाता है ॥ ८ ॥

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ॥ मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥

जो पुरुष, यश पाने के निमित्त अवश्य प्रतिपाल करने योग्य माता पिता स्त्री आदि परिवार के दुःखित होने पर भी यदि और को धनका दान करके देय तो उसको धर्म के प्रतिरूप, आदि में मधुर प्रतीत होनेवाले उस दान से लोक में यश तो होता है परन्तु अन्त में वह विषका स्वाद देता है अर्थात् उससे पुण्य न होकर नरक ही होता है ॥ ९ ॥

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

जो, अवश्यपालन करने योग्य स्त्री पुत्रादि को पीड़ा देकर परलोक में धर्मकी वृद्धि होने के निमित्त दानादि धर्म करता है वह दाता को जीवते में और मरनेपर दुःखरूप फल देता है १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ॥ कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

शास्त्र को जाननेवाले धार्मिक राजा के राज्य में क्षत्रिय यजमान और विशेष करके ब्राह्मण यजमान का प्रारम्भ कराहुआ यज्ञ धन के अभाव से किसी अङ्ग में पूर्णविनाहुए रह जाय तो जो वैश्य बहुत से पशुधनादि वाला, पञ्चमहायज्ञादि क्रिया से हीन और सोमयाग न करनेवाला होय उससे बलात्कार करके अथवा बिना बूझे उचित धनलेकर उस अङ्गको पूर्ण करै ॥ ११ ॥ १२ ॥

आहरेत् त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ॥ नहि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥

और ब्राह्मण वा क्षत्रिय के यज्ञमें यदि तीन वा दो अंग विकल हों तो वैश्यके न होने पर शूद्रके घर से बलात्कारसे वा बिनाबूझे निःशङ्कभाव से धन लाकर उस अंङ्ग को पूर्णकरै ॥

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

जो आहिताग्नि नहो, एकसौ गौवोंवाला और आहिताग्नि होकर भी यागयज्ञहीन यथा सहस्रोंगौओं का स्वामी हो उससे पूर्वोक्तरीति से धन लेकर उस अङ्ग को पूर्णकरै परन्तु ब्राह्मण ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय से ही लेय और क्षत्रिय केवल क्षत्रिय के घर से लेय ॥ १४ ॥

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः । तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥

जो पुरुष प्रतिग्रह आदि से नित्य धन इकट्ठा करै और इष्टापूर्तादि कार्य में कुछ न देय उस से पूर्वोक्त यज्ञ के दो अंगों की वा तीन अंगों की पूर्त्ति के लिये जो ब्राह्मण याचना से धन न पाकर बलात्कार से वा विना बूझे धनले लेय तो लोकमें उसकी प्रसिद्धि और धर्मकी वृद्धि होती है ॥१५॥

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

प्रतिदिन सायं प्रातः काल के दो भोजन इस प्रकार तीनदिन के छः भोजनहुए चौथे दिनका दुपहर सातवें भोजनका समय है। उस समय अन्न न मिलने से भूँखा पुरुष दानादि धर्म रहित पुरुष से एकदिन के खाने योग्य पदार्थ बलात्कार से लेसक्ता है ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते । आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥

दानादि धर्महीन पुरुष के पैरमें से, खेतपर से, घरमें से अथवा और किसी स्थानपरसे विना बूझे अन्न लेलेय, यदि खेतका स्वामी कहै कि क्यों लेता है तो उसको अपना प्रयोजन बतादेय ॥ १७ ॥

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन । दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥ १८ ॥

इसदशा में भी ब्राह्मण का धन क्षत्रिय न लेय, वैश्य तथा शूद्र उत्तमजाति का धन न लें, परन्तु अत्यन्त आपत्ति में निषिद्धाचरण और विहितकर्म का अनुष्ठान न करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय से क्षत्रिय अपहरण करसक्ता है ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति । स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥

जो पुरुष, यज्ञादिकी पूर्त्ति केलिये क्रियाहीन से धन लेकर यज्ञमें वरण करेहुए ऋत्विक् आदि को देता है वह जिसका धनलिया है और जिसको देता है इन दोनों को अपनी डोंगी बनाकर दुःख के पार करता है ॥१९॥

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः । अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

यज्ञ करनेवालों का जो धन है उसको पण्डित देवधन जानते हैं, और यज्ञ न करने वालों का जो धन है वह आसुर धन कहलाता है ॥ २० ॥

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः । क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥२१॥

इस कहेहुए प्रयोजन से बलात्कार करके वा विनाबूझे धन लेने वाले के ऊपर धार्मिक राजा दण्ड न करै, क्योंकि क्षत्रिय राजाकी मूर्खता से ही ब्राह्मण दुःख पाता है ॥ २१ ॥

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः । श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

क्षुधा से दुःखितहुए ब्राह्मण के अवश्य प्रतिपाल करने योग्य परिवार, शास्त्रज्ञान और सदाचार को जानकर राजा उसका धर्मानुसार वृत्ति नियत करदेय ॥२२॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समं

न्ततः॥ राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात्॥ २३॥

इस ब्राह्मण की जीविका का इस प्रकार प्रबन्ध करके राजा चोर आदि से सब प्रकार रक्षा करै, ऐसा करने से ब्राह्मण का कराहुआ जो धर्म होगा उसका छठा भाग राजा पावेगा २३

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित्॥ यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते॥ २४॥

ब्राह्मण यज्ञ के निमित्त शूद्र से कभी भिक्षा न करैं, शूद्र से भिक्षा करेहुए धनके द्वारा यज्ञ करके ब्राह्मण मरण के अनन्तर चण्डाल होता है, विनामांगे शूद्रके धन से यज्ञ करने में हानि नहीं है॥ २४॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति॥ स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥ २५॥

यज्ञ के लिये धनकी भिक्षा करके जो वह सब धन यज्ञ में नहीं देता है वह विप्र जन्मान्तर में सौवर्ष पर्यन्त उस पाप से भासपक्षी वा काक होता है॥ २५॥

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः॥ स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति॥ २६॥

जो पुरुष लोभ के वश में होकर देवताका अथवा ब्राह्मण का धन हरलेता है वह जन्मान्तर में गिद्धपक्षी की जूठन खाने वाला होता है॥ २६॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये॥ क्लप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसम्भवे॥ २७॥

यदि पशुयाग और सोमयाग न हुआ हो तो उसके दोष को शान्त करने के लिये ब्राह्मण, शूद्र से भी धन लेकर उस धन के द्वारा वर्ष के अन्त में वैश्वानरी इष्टि करै॥ २७॥

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः॥ स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम्॥ २८॥

यदि कोई विना आपत्तिकाल के आपत्तिकाल में कहेहुए कर्मों को करै तो वह परलोक में उन कर्मों का फल नहीं पाता है यह मनु आदिकों ने स्थिर सिद्धान्त करा है॥ २८॥

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः॥ आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः॥ २९॥

विश्वेदेव नामक देवता और साध्यगण तथा मृत्युसे डरेहुए महर्षि ब्राह्मणों ने आपत्तिकाल में सोमादि यज्ञके स्थान में वैश्वानरी आदि इष्टि करी है॥ २९॥

प्रभुःप्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते॥ न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्॥ ३०॥

जो पुरुष प्रथम कल्पमें कहेहुए कर्मों को करने में समर्थ होकर आपत्तिकाल में विधान करे हुए प्रतिनिधि कर्मका अनुष्ठान करता है उस दुर्बुद्धि को परलोक का अभ्युदयफल और प्रत्यवाय को दूर करने का फल नहीं प्राप्त होता है॥ ३०॥

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किञ्चिद्राजनि धर्मवित्॥ स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानपकारिणः॥ ३१॥

धर्मज्ञ ब्राह्मण का यदि कोई कुछ अपकार करै तो उसका राजा से निवेदन न करै, अपनी शक्ति के अनुसार अभिचार आदि कार्य के

द्वारा अपराधी को दण्डदेय, विरोधी के ऊपर अभिचार करना दोषकारक नहीं है और राजा से निवेदन करने के सर्वथा निषेध में भी तात्पर्य नहीं है ॥ ३१ ॥

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥ ३२ ॥

अपनी शक्ति और राजाकी शक्ति इन दोनों में से अपनी शक्ति बलवान् है, तिससे द्विज अपनी शक्ति से ही शत्रुओं को वश में करै॥

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥ ३३ ॥

अथर्ववेदमें कहीहुई आङ्गिरसी श्रुति अर्थात् अभिचारके मंत्र निःसन्देह पढ़े, यह ब्राह्मण का वाक्शास्त्र है इस मन्त्रात्मकवाक्यरूप शस्त्र से ब्राह्मण शत्रुओं का विनाश करै ॥ ३३ ॥

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ॥ धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

क्षत्रिय बाहुबल करके आपत्ति से पारहोय, वैश्य और शूद्र धनसे और ब्राह्मण अभिचार-रूप होम जप तपस्या आदि के द्वारा विपत्ति से छुटकारा पावै ॥ ३४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ ३५ ॥

विहितकर्म का अनुष्ठान करनेवाला, पुत्र शिष्यादि का शासन करनेवाला, प्रायश्चित्तादि बतानेवाला और सब प्राणियों से मित्रभाव रखनेवाला ब्राह्मण कहाता है, अतएव ऐसे ब्राह्मण को अमङ्गलशब्द न कहै और शुष्क बातें भी न कहै ॥ ३५ ॥

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥

अविवाहिता कन्या, युवति, थोड़ी विद्यावाला मूर्ख, रोगी और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो इनको वैदिक वा स्मार्त होममें कोई विद्वान होता न बनावै ॥ ३७ ॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ॥ तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥

यह कन्या आदि यदि होम करैं और जिनके प्रतिनिधि होकर हवन करै यह दोनों नरकगामी होते हैं तात्पर्य यहकि हवन करानेवाला श्रौतकर्ममें प्रवीण और वेदपारगामी होना चाहिये ॥ ३७ ॥

प्राजापत्यमदत्त्वाऽश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

जो पुरुष, सम्पदा होतेहुए आधानकार्य में ऋत्विक् को दक्षिणा में प्रजापति देवताका अश्व नहीं देता है वह अग्न्याधान का फल न पाकर निरग्नी ही रहता है ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथंचन ॥ ३९ ॥

जो पुरुष, यज्ञशास्त्र में कहीहुई दक्षिणा देने को समर्थ न हो वह यज्ञ न करके श्रद्धा के साथ इन्द्रियों को वश में करेहुए जप, तप और तीर्थयात्रादि कर्मका अनुष्ठान करै थोड़ी दक्षिणावाले यज्ञों से किसीप्रकार यजन न करै।

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥ ४० ॥

अल्प दक्षिणा का यज्ञ नेत्रादि इन्द्रियें,

प्रसिद्धि, स्वर्ग, आयु, कीर्त्ति, सन्तान और पशुओं का नाश करता है इसकारण थोड़े धन वाला पुरुष यज्ञ न करै ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणःकामकारतः ॥ चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥

अग्निहोत्री यदि सायं प्रातःकाल को जानकर होम न करै तो एकमासतक चान्द्रायण व्रत करै, क्योंकि वह हवन न करना पुत्रहत्या की समान है ॥ ४१ ॥

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ४२ ॥

जो पुरुष शूद्र से मांगकर धन लेय और पूर्वोक्त आधानपूर्वक अग्निहोत्रका होमकरै, वह शूद्रों के ऋत्विज् कहलाते हैं और वेद जानने वालों में निन्दित होते हैं ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ॥ पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत् ॥ ४३ ॥

जो शूद्र के धन से आधान करके अग्निहोत्र का हवन करते हैं उन अज्ञानियों के मस्तक को चरण से दबाकर दाता शूद्र सदा नरकों से निस्तार पाता है, यजमान को कुछ फल नहीं होता है ॥ ४३ ॥

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ॥ प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

विहित कर्म न करके निन्दित कर्म करता हुआ और इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता हुआ पुरुष प्रायश्चित्तके योग्य होताहै॥४४॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः॥ कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥

किन्हीं पण्डितों ने अज्ञान से करेहुए पापके विषय में प्रायश्चित्त कहा है और कोई जान कर करे हुए पापके विषय में भी प्रायश्चित्त कहते हैं, इस विषय में श्रुति का दृष्टान्त भी है। जिसका अर्थ यह है कि—इन्द्र ने कितने ही यतियों को खाने के लिये जानकर कुत्तों को दिया, तब आकाशवाणी हुई कि-तुम बड़े पापी हो, प्रायश्चित्त करो, तब इन्द्र ब्रह्माजी के पास गये तब ब्रह्माजी ने उसे जानकर करे हुए पाप को दूर करने के निमित्त उपहव्य नामक प्रायश्चित्त बताया ॥ ४५ ॥

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्ध्यति ॥ कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥

अज्ञानवश करे हुए लघु पाप का प्रायश्चित्त वेदाभ्यास से ही होजाता है, बड़े पाप का प्रायश्चित्त नानाप्रकार का है,चित्त में रागद्वेषादि होने के कारण जानकर करे हुए पाप का नाना प्रकार का प्रायश्चित्त कहा है ॥ ४६ ॥

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥ न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रमाद से इसजन्म में वा पूर्व जन्म में करे हुए किसी दुष्कर्म के कारण क्षय रोगादि से ग्रसित होकर प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं, वह जब तक प्रायश्चित्त न करैं तब तक साधु पुरुष उनके साथ यज्ञ कराने आदि का सम्बन्ध न रक्खें ॥ ४७ ॥

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ॥ प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

कोई इस जन्ममें दुराचार करने से कुनखी आदि रूपविकार को प्राप्त होते हैं, कोई पूर्व जन्म में करेहुए पाप को भोगने के अन्त में कुष्ठ आदि रोग से विकृताकार होजाते हैं॥४८॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावद-न्तताम् ॥ ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥४९॥ पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूति वक्त्रताम् ॥ धान्यचौरो ऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः ॥५०॥ अन्नहर्त्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः॥ वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥५१॥ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ॥ हिंसया व्याधिभूतस्तु स्फीतोऽन्यं स्त्र्यभिमर्शकः ॥५२॥ एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः॥ जडमूकान्धबधिरः विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

ब्राह्मण का अस्सी रत्ती सोना चुराने से विरूपनखवाला, मद्यपान करने से काले दांतोंवाला ब्रह्महत्यारा, क्षयी रोग से ग्रस्त, गुरुपत्नी से समागमकरनेवाला, चर्मरोगी, चुगलपीनसरोगी किसीको मिथ्यादोष लगानेवाला, मुखकी दुर्गंध का रोगी, धान्य चुरानेवाला अङ्गहीन, अन्न में खमेल करके बेचनेवाला, अधिकाङ्ग, अन्नचुराने वाला, मंदाग्नि का रोगी, गुरुकी आज्ञा के बिना पढ़नेवाला, गूंगा, वस्त्र चुराने वाला, श्वेतकुष्ठी, घोड़ा चुराने वाला, लूला, दीपक चुराने वाला अन्ध होगा, दीपक बुझाने वाला काणा होगा साधारण प्राणियों की हिंसा करने वाला अनेकों रोगों से पीड़ित और दूसरे की स्त्रीको दूषित करने से वातरोग से स्थूल शरीर होता है इसप्रकार पूर्वजन्म के पाप से नरक भोगने के अनन्तर शेष रहे पाप के कारण सत्पुरुषों में निंदितबुद्धि, वाक्य, नेत्र और कर्णविहीन विरूप पुरुष उत्पन्न होते हैं॥४९॥५०॥५१॥५२॥५३॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये॥ निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५४ ॥

क्योंकि इन सब कुकर्मों को करके प्रायश्चित्त न करने से दूसरे जन्म में निन्दनीय लक्षणों से युक्त होकर जन्म लेना पड़ता है इसलिये कुकर्म करके अवश्यही शास्त्रानुसार पापको दूर करने के लिये प्रायश्चित्त करै, न करने से कर्मवश अनेकों नरक भोगने के अन्त में शेष पापके फल से क्रम से सात जन्मों में निंदित लक्षणों से युक्त होते हैं ॥ ५४ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः॥ महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ५५ ॥

ब्रह्महत्या; मद्यपीना, ब्राह्मण का अस्सी रत्ती सोना चुराना और सौतेली माता से समागम तथा ऐसे पापियों का साथ बराबर एक बर्ष तक सहबास इन पांच को महापातक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्बंधः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५६ ॥

जाति में उत्तम बनने के विषय में मिथ्या बोलना, राजदरबार में किसी की चुगली करना, गुरुको मिथ्या दोष लगाना यह सब ब्रह्महत्या की समान (अनुपातक) हैं॥५६॥

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥ गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥ ५७ ॥

ब्राह्मण का पढ़ेहुए वेदको भूलजाना, निन्दित शास्त्रका आश्रय करके वेदकी निन्दा करना, झूठी गवाही देना, मित्रका वध, निन्दित लहसुन आदि और अभक्ष्य विष्ठा मूत्रादि भोजन करना यह छः पातक मद्यपान की समान हैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

ब्राह्मण से अन्य की धरोहड़ मारखना, मनुष्य घाड़ा, चांदी, भूमि, हीरा और मणि चुराना, इनको सुवर्ण की चोरी की समान पातक कहा है ॥ ५८ ॥

रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५९ ॥

अपनी सगीबहिन, कुमारी, चण्डाली मित्र और पुत्र की स्त्री से समागम करने पर मन्वादिकों ने गुरुपत्नी समागम की समान प्रायश्चित्त कहा है ॥ ५९ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ६१ ॥ कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ॥ तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च । भृत्याच्चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ६३ सर्वाकरेष्वाधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥ हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ॥ आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्नितास्तेयमृणानामनपक्रिया ॥ असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥ धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

गोहत्या, पतित को यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपने को बेचना, गुरु माता पिता को त्यागना, ब्रह्मयज्ञादि स्वाध्याय न करना, अग्निहोत्रादि न करना, पुत्र के जातकर्म आदि संस्कार न करना, बड़े भ्राता के अविवाहित और अग्निहोत्रादि रहित होते हुए छोटे भ्राता का विवाह परिवेदन कहाता है, इस दशा में बड़े भ्राताको परिवित्ति कहते हैं, ऐसे ज्येष्ठ और कनिष्ठभ्राता को कन्या देना तथा ऐसे विवाह में होम आदि का पुरोहित बनाना, रजस्वला न हुई कन्याको अंगुली से दूषित करना, व्याज से जीविका, ब्रह्मचारी होकर स्त्री समागम करना, तालाब उद्यान स्त्री और सन्तान को बेचना, सोलह वर्ष बीतने पर भी उपनयन न होने को व्रात्यता कहते हैं, चचा ताऊ आदि माननीय पुरुषोंकी सेवा न करना, नियम के साथ विद्यार्थी से वेतन लेकर पढाना, शास्त्र में निषेधकरे हुए तिलआदि का बेचना, सोने आदि की खानों पर राजा की आज्ञा से अधिकार करना, जल के प्रवाह को रोकने वाले बन्ध बांधना, उत्पन्न होतेही औषधियों को तोड़ डालना, स्त्री से जार को मिला कर जीविका करना, श्येनयाग आदि अभिचार कर्म से निरपराधी का बध, मन्त्रादि से दूसरे को वशमें करना, ईंधन के लिये हरे वृक्ष काटना, अनातुर का देवपितर आदिके उद्देश्य के विना पाक यज्ञादि करना, एकवारभी जानकर लहसुन आदि खाना, अधिकार होतेहुए अग्निहोत्रादि न करना, सुवर्ण के सिवाय अन्यसार वस्तु को चुराना, ब्रह्मचर्य धारण और पुत्रोत्पत्ति के द्वारा ब्रह्मर्षि औरपितरों का ऋण न चुराना, वेदस्मृति से विरुद्धशास्त्र का पढ़ना, नाचने गाने और बजाने से जीविका

करना, धान्य ताँबा लोहा और पशु आदि की चोरी, मद्यपीनेवाली स्त्री से समागम स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रिय की हत्या और नास्तिकता यह सब उपपातक हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ॥ जैह्मयं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥

ब्राह्मण को पीडादेना वा दण्ड आदि से मारना, सूँघने के अयोग्य वस्तु और मद्यको सूंघना, कुटिलता, पुरुष मैथुन इन को जातिसे भ्रष्ट करनेवाला कहा है ॥ ६८ ॥

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयंमीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

गधा, घोड़ा, ऊंट, मृग, हाथी, बकरी, और भेड़का वध तथा मछली, सांप और भैंसेका वध, यह जातिसङ्कर करनेवाले हैं ६९ ॥

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेय मसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥

निन्दितों से धनलेना, असत् व्यापार, शूद्रकी सेवा और असत्य बोलने को अपात्रीकरण पातक अर्थात् पंक्तिसे बाहर करनेवाला कहते हैं ॥ ७० ॥

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ॥ फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

कृमि, कीट और पक्षियों की हत्या, मद्य के साथ एकपात्र में लायेहुए पदार्थों का भोजन फल,-ईंधन और फूल चुराना तथा थोड़ीसी हानि होनेपर मनमें अधिक विकलता होना, इनको मलावह कहते हैं ॥ ७१ ॥

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ् निबोधत ॥ ७२ ॥

यह सब जैसे पृथक् २ कहे हैं, तैसेही जिस २ प्रायश्चित्त से दूर होते हैं, उन सब को मुझसे सुनो ॥ ७२ ॥

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥ भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ ७३ ॥

ब्रह्महत्यारा वन में कुटीबनाकर- जिसकी हत्या करी हो उस मृतक के मस्तक का कपाल या वह न मिले तो उसका चिह्न ऊपर टांगकर बारहवर्षतक भीखमांगकर खाता हुआ अपनी शुद्धि के लिये बसे ॥ ७५ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ॥ प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥ ७४ ॥

अथवा ब्रह्महत्याके पापसे छूटनेके निमित्त शस्त्रधारी जानकार योधाओं का अपनी इच्छा से लक्ष्य (निशाना) बने अथवा जलतीहुई अग्नि में शरीरको नीचे को मुख करके डाले ऐसातीन बारकरै तब प्राणान्त होकर पापदूर होजाता है ॥ ७४ ॥

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ॥ अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥

वा अनजान में हुई ब्रह्महत्या का पाप दूर करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अश्वमेध यज्ञकरैं, स्वर्जित यज्ञ वा गोसव यज्ञ करैं अभिजित् और विश्वजित् यागकरैं, त्रिवृत् वा अग्निष्टुत् यज्ञ करै ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं

व्रजेत् ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥

अथवा अनजान में होनेवाले जातिमात्र के ब्राह्मण के वधका पाप दूर करने के निमित्त किसी वेदका जपकरता हुआ अल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर एकसौ योजन तक जाय ॥ ७६ ॥

सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

वा ब्राह्मण, अनजान में हुई ब्रह्महत्या का पाप दूर होनेके निमित्त, वेदके विद्वान् ब्राह्मण को उसके जीवनभर की जीविका के योग्य सर्वस्व धन वा सब सामग्री सहित अपना घर देदेय ॥ ७७ ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ॥ जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥

वा ब्राह्मण, जानकर करेहुए जातिमात्रके ब्राह्मण के बध का पापदूरकरने के लिये, हविष्य का भोजन करताहुआ प्रसिद्धप्लक्षस्रवण से लेकर पश्चिम समुद्र पर्यन्त सरस्वती के प्रवाह के अभिमुख होकर गमन करै अथवा थोड़ा भोजन करताहुआ तीनवार वेदसंहिता का जप करै ॥ ७८ ॥

कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥

अथवा मुंडन कराकर गौ ब्राह्मण के हितकरने का विचार करके ग्राम के समीप वा गोठ में अथवा किसीपवित्र आश्रम में वृक्षकी मूल में वसै ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥ ८० ॥

जिसने ब्रह्महत्या का पापदूरकरने के लिये बारहवर्ष के व्रतका प्रारम्भ करा हो उसके बीच में ही अग्निमें वा जलमें पड़ेहुए अथवा सिंह आदि से घिरेहुए ब्राह्मण वा गौ के लिये प्राणत्याग देय तो बारहवर्ष पूरे विना हुए भी ब्रह्महत्या के पापसे छूटजायगा वा ऐसी रक्षाकरने में मरै नहीं तो भी निष्पाप होगा ॥ ८० ॥

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ॥ विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

ब्राह्मण का सर्वस्व छीनकर लिये जाते हुए लुटेरों को देखकर प्राणार्पण से यत्नके साथ वह वस्तु लौटाने के लिये तीनबार चोर आदि के साथ युद्ध करके यद्यपि उस धनको न लासकै तो भी ब्रह्महत्या के पाप से छूटजाता है। अथवा एक वार युद्ध करके वह द्रव्य ले आवै तो भी उस पाप से छूटजाता है अथवा छीनीहुई वस्तु को लौटाने के लिये क्लेश के साथ युद्ध में मरने को प्रवृत्तहुए ब्राह्मण को देखकर अपने पास से उस गयेहुए द्रव्य की समान धन देय तो भी ब्राह्मण की प्राणरक्षा करने के कारण उस पाप से छूटजाता है॥८१॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥

ऐसे नित्य दृढव्रतधारी ब्रह्मचारी, सावधानी से शुद्ध शान्त रहकर बारहवर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्महत्या का नाश करता है ॥ ८२ ॥

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ॥ स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

गुणी ब्राह्मण अनजान में निर्गुण ब्राह्मण का वध करके क्षत्रिय यजमान के प्रारम्भ करे हुए अश्वमेधयज्ञ की सभा में पुरोहित आदि ब्राह्मणोंको अपना कर्म निवेदन करके यज्ञान्त स्नान करके उस पापसे छूटता है ॥८३॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ॥ तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण धर्म का मूल है, राजा धर्म का अग्रभाग है तिस से ब्राह्मण क्षत्रियों की सभा में अपना पाप जताकर उस पाप से शुद्ध हो-जाता है ॥ ८४ ॥

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम्॥ प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥ ८५ ॥

ब्राह्मण उत्पत्ति से ही मनुष्य तो क्या देवताओं का भी पूज्य है और सब लोक का प्रमाण है अर्थात् सब लोकों को ब्राह्मण के कथन का प्रमाण करना चाहिये । क्योंकि— उस प्रमाण का कारण वेदहै ॥ ८५ ॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम् ॥ सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥ ८६ ॥

उन ब्राह्मणों में से तीन भी वेद जाननेवाले ब्राह्मण, पाप का जो प्रायश्चित्त बतावैं वह पापियों को पवित्र करता है, क्योंकि—वेदके विद्वान् ब्राह्मणोंकी वाणी ही पवित्र है ८६

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः॥ ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥

अतः इन कहेहुओं में से किसी एक प्रायश्चित्त की विधि को सावधानी के साथ करके ब्राह्मण आत्मज्ञानी होनेके कारण ब्रह्महत्या करने के पाप को नष्ट करता है ॥ ८७ ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥

स्त्री-पुरुष वा नपुंसकरूप से न जानेहुए ब्राह्मण के गर्भ वा यज्ञ करनेवाले क्षत्रिय वा वैश्य अथवा रजस्वला इन सब की हत्या होजानेपर भी ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै॥८८॥

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८९ ॥

साक्षी में मिथ्या कहकर, गुरु को मिथ्या दोष लगाकर, धरोहड़ मारकर, रजस्वला वा अग्निहोत्रीब्राह्मण की स्त्री का वध करके तथा मित्रका वध करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करै ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥

अनजान से ब्राह्मण का वध करने पर यह शुद्धि कही और जानकर ब्राह्मण का वध करने पर अधिक प्रायश्चित्त विनाकरे निस्तार नहीं होता है ॥ ९० ॥

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ ९१ ॥

द्विज मोहसे सुरा को पीकर प्रायश्चित्त के लिये अग्नि की समान जलतीहुई सुरा पियै, उस से अपना शरीर भस्म होनेपर तिस पापसे मुक्त होता है ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव

वा ॥ पयो घृतं वाऽऽमरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥ ९२ ॥

अथवा अग्नि की समान धमकताहुआ गोमूत्र वा जल, वा दूध, वा घृत वा गोबर का रस मरणपर्यन्त पिये ॥ ९२ ॥

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९३॥

अनजान में सुरा पीने पर गौ के बालों का वस्त्र पहिने, जटा बढ़ाये, सुरा का पात्र हाथमें लेकर, चावलों की कनी वा खल रात्रि को एकबार खाय, सुरा पीने का दोष दूर करने को एक वर्ष तक ऐसा ही करै ॥ ९३ ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥

सुरा अन्नका मल है और पापको भी मल कहते हैं इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कभी सुरा न पियै ॥ ९४ ॥

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

सुरा तीन प्रकार की जाननी, १ गौडी(गुड की), २ पैष्टी (पिट्ठी की) और३ माध्वी (महुए के फूलों की); जैसी एक वैसी ही सब द्विजश्रेष्ठों को सुरा कभी नहीं पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ ॥

मद्य दाख खजूर आदि की), मांस सुरा (ऊपर कही हुई तीनप्रकार की और आसव (तत्काल खेंचा हुआ मद्य) यह चारों यक्ष राक्षस, पिशाचों का भोजन है, देवताओं का हवि खानेवाले ब्राह्मणों को इनका सेवन न करना चाहिये ॥ ९६ ॥

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

ब्राह्मण मद्यपान से मत्त होकर अपवित्र स्थान में गिरेगा वा वेदवाक्यों का उच्चारण करेगा वा और कोई कुकर्म करेगा ॥ ९७ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९८ ॥

जिस ब्राह्मण के शरीर में स्थितवेद एक बार भी मद्य से मिलता है तो उसकी ब्राह्मणता नष्ट होती है और शूद्रपन प्राप्त होताहै ॥

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

यह सुरा पीने का विचित्र प्रायश्चित्त कहा, अब आगे सुवर्ण चुराने का प्रायश्चित्त कहेंगे।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ १०० ॥

सुवर्ण चुरानेवाला ब्राह्मण, राजाके पास जाकर अपना दोष कहकर यह कहै कि—आप मुझे दण्ड दें ॥ १०० ॥

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ॥ वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १०१ ॥

यह सुनकर राजा मूसल लेकर अपने आप उसके ऊपर एक वार प्रहार करै उससे मरने पर वा मृतप्राय होनेपर वह चोर शुद्ध

होता है, परन्तु ब्राह्मण केवल तप करके ही पाप से छूटजाता है।

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्॥ चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम्॥ १०२॥

सुवर्ण की चोरी के पापको तपस्या से दूर करने की इच्छा करने की इच्छाकरनेवाला ब्राह्मण, फटेवस्त्र पहिनकर वन में रहनाहुआ बारहवर्षपर्यन्त ब्रह्महत्या का व्रत करै॥१०२॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः॥ गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत्॥

द्विज, ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने के पाप को इन व्रतों से नष्ट करै और गुरुपत्नीगमन के पाप को तो इन आगे कहेहुए व्रतों से दूरकरै॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये॥ सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति॥ १०४॥

गुरुपत्नी (सौतेली माता) से गमन करने वाला अपना पाप कहकर उस पाप को नष्ट करने के लिये तपीहुई लोहे की शय्यापर सोवै, वा तपीहुई लोहे की मूर्त्ति से आलिंगन करै ऐसे मरण को प्राप्त होकर शुद्ध होता है॥ १०४॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ॥ नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः॥ १०५॥

अथवा वह गुरुपत्नीगामी अपने आप अपने लिङ्ग और अण्डकोशों को काटकर उन को हाथमें लियेहुए जबतक शरीर न गिरपड़ै तबतक सीधा सीधा नैर्ऋत दिशाकी ओर को चलाजाय।

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः॥ १०६॥

अपनी स्त्री के भ्रम से अनजान में गुरुपत्नी से गमन करलेय तो मनुष्य की खोपडियों की माला और फटेवस्त्र धारण करै डाढ़ी मूँछ बढाये निर्जन वन में सावधानी से एक वर्षतक कृच्छ्रप्राजापत्य व्रत करै॥ १०६॥

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः॥ हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये॥ १०७॥

गुरुस्त्रीगमन का पाप दूर करने के लिये जितेन्द्रिय होकर फलमूलादि हविष्य वा नीवार आदि की लहपसी खाकर तीन मासतक चान्द्रायण व्रत करै॥ १०७॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम्॥ उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः॥

इन व्रतों से महापातकी पुरुष अपने पाप को नष्ट करैं और उपपातकी तो इन आगेकहे अनेकों व्रतों से अपने पाप को दूर करैं॥१०८॥

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्॥ कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः॥ १०९॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्। गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः॥ ११०॥ दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्॥ शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत्॥ १११॥

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः॥ ११२॥ आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः॥ पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत्॥ ११३॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्॥

न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११४॥ आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ११५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥ स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ ११६ ॥

गोहत्यारा उपपातकी एक मासतक जौ की लहपसी पियै, शिर और डाढी मूछ मुँडाकर मरीहुई गौका चर्म शरीर पर लपेटकर गोठ में रहै, दूसरे महीने में गोमूत्रसे स्नान करै, जितेन्द्रिय होकर सायंकाल के समय बिना लवण और थोड़ासा हविष्यान्न खाय, तीसरे महीने उन गौओं के पीछे २ फिरै और खड़ा होकर गौओं के खुरों से उड़ी हुई धूलि को खाय, खुजलाने आदि से गौओं की सेवा करके प्रणाम करै और रात्रि के समय किसी वस्तुका आश्रय न करके वीरासनसे बैठे२ ही निद्रालेय, क्रोधरहित होकर सब गौओंके खड़ाहोने पर खड़ाहोय उठनेपर वन में फिरनेवाली गौओं के पीछे २ फिरै, सब गौओंके बैठनेपर बैठे, रोगयुक्तहुई सिंह चोर आदिसे घिरीहुई वा ऊँचे नीचे स्थानमें गिरीहुई और कीच में फँसीहुई गौओं को शक्तिके अनुसार छुटावै, सूर्य की अत्यन्ततेजी में वर्षा में और अत्यन्त शीत होनेपर तथा आँधी के समय गौओं की यथाशक्ति रक्षा बिना करे अपनी रक्षा न करै, अपने वा दूसरे के घरमें स्थित अथवा खेत वा पैर में अन्न खातीहुई गौको वा दूध पीतेहुए बछड़े को देखकर घर के स्वामी से न कहै; जो गोहत्यारा इस विधि से गोसेवा करता है वह तीन मास में गोहत्याके पाप को नष्ट करदेता है ॥१०९॥११०॥ ॥१११॥११२॥११३॥११४॥११५॥११६॥

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ११७ ॥

इसप्रकार विधि विधान से व्रत करनेवाला एक बैल और दशगोदान करै, इतना पास न होय तो वेदवेत्ता ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व अर्पण करदेय ॥ ११७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः॥ अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ ११८ ॥

अवकीर्णी को छोड़कर अन्य उपपातकी द्विज अपनी शुद्धि के लिये यह व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करै ॥ ११८ ॥

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११९ ॥

अवकीर्णी पापी तो काने गधे के द्वारा चौराहे में रात्रिके समय निर्ऋति देवता के उद्देश्य से पाकयज्ञ करै ॥ ११९ ॥

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥ १२० ॥

विधिवत् होमकरके पीछे से 'समासिञ्चन्तु मारुतः' इत्यादि ऋचासे मरुत्, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निको घीसे आहुति दे॥१२०॥

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ॥ अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ १२१ ॥

द्विज ब्रह्मचारी के इच्छासे वीर्य्य के स्खलित होनेरूप से व्रतभङ्ग को धर्मज्ञ ब्रह्मवादी

अवकीर्ण कहते हैं और ऐसा ब्रह्मचारी अवकीर्णी कहलाता है ॥ १११ ॥

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ॥ चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥ १२२ ॥

वेद पढ़नेके व्रती ब्रह्मचारी का जो तेज उत्पन्न होता है वह अवकीर्ण होनेपर मरुत्, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि इनचारको प्राप्त होता है अतः उसके दोषकी शान्ति के लिये इनचारों देवताओं का घृत से होमकरै॥१२२॥

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ १२३ ॥

इस अवकीर्णी दोष के प्राप्त होनेपर गदेह का चमड़ा ओढ़कर, अपना कर्म कहताहुआ सातघर से भीखमांगै ॥ १२३ ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्धचति ॥ १२४ ॥

सातघर से मांगीहुई भिक्षा के अन्न से एक समय भोजन करताहुआ सायं, प्रातः, मध्याह्न तीनोंसमय स्नान आचमन करताहुआ एकवर्ष में उस पापसे मुक्त होजाता है ॥१२४॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ १२५ ॥

जानकर कोई जातिसे पतित करनेवाला कर्म करके सान्तपन व्रतकरै और अनजान में करने पर प्राजापत्य व्रत करै ॥ १२५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ १२६ ॥

सङ्कर वा अपात्रकरण पातक करके एक मास चान्द्रायण व्रतकरै और मलनीकरण पातक करनेपर तीनदिनतक जौ के दलिये से तृप्तहोकर रहै ॥ १२६ ॥

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ॥ वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १२७ ॥

सदाचार क्षत्रिय का बध करने पर ब्रह्महत्या व्रत का चतुर्थांश (तीन वर्षका) व्रत करै, सदाचार वैश्य का बध होजाय तो अष्टमांश (डेढवर्ष) का और इसीप्रकार के शूद्र का बध होजाय तो सोलहवां भाग (नौमास का व्रत करै ॥ १२७ ॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥ वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ १२८ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण अनजान में क्षत्रिय का बध करके ठीक२व्रत करने के अनन्तर एकबैल और एकसहस्र गौदान करै ॥ १२८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२९ ॥

अथवा वह द्विजोत्तम ग्राम से दूर वृक्षकी जड़ में घर बनाकर जटाधारण करेहुए तीन वर्ष तक नियमसे ब्रह्महत्यारे के निमित्त कहा हुआ व्रत करै ॥ १२९ ॥

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः॥ प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ १३० ॥

अनजान में सदाचार वैश्य का बध करके द्विजोत्तम, प्रायश्चित्तके निमित्त एकवर्ष तक इस ही व्रत को करै और एक सौ गौओं का दान भी करै ॥ १३० ॥

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाञ्छूद्रहा च·

रेत् ॥ वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥ १३१ ॥

अनजान में शूद्रका वध करनेवाला इसीप्रकार छः मास तक पूर्ण व्रत करै और ब्राह्मण को श्वेतवर्ण की दश गौ और एक वृषभ दान करके देय ॥ १३१ ॥

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ॥ श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १३२ ॥

जानकर बिलाव, नौला, पपीहा, मेंढक, कुत्ता, छिपकली उल्लू और काक को मारकर शूद्रहत्या का व्रत करै ॥ १३२ ॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत् ॥ उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥ १३३ ॥

अनजान में मार्जार आदिका वध करके तीनदिन दूध पीकर रहै, ऐसा न करसकै तो तीनरात तक एक योजन मार्ग घूमनेको जाय ऐसा भी न करसकै तो तीनरात नदीमें स्नान करै, यह भी न करसके तो आपोहिष्ठेत्यादि मंत्रका जप करै ॥ १३३ ॥

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः॥ पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ १३४ ॥

सर्प की हत्या करके श्रेष्ठब्राह्मण तीखी अग्रभागवाला एक लोहेका दण्डादान करके देय और नपुंसक की हत्या करके एकभार पलाल और एकमासा सीसादान करकेदेय १३४

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरौ ॥ शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ॥ १३५ ॥

बराह को वध करने पर घीका भरा घड़ा, तीतर का बध करके एक द्रोण तिल, तोते की हत्या होजाय तो दो वर्षका बछड़ा और क्रौञ्चपक्षी की हत्या होजाय तो तीनवर्षका बछड़ा दान करके देय ॥ १३५ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ॥ वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥ १३६ ॥

हंस, बलाका, बगुला, मोर, बानर, बाज, और भासपक्षी की हत्या होजाय तो ब्राह्मण को एक गौ देय ॥ १३६ ॥

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्चनीलान्वृषान्गजम् ॥ अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ १३७ ॥

घोड़े का वध होजाय तो वस्त्र का दान करै, हाथी की हत्या होजाय तो पांच नीले बैलों का दान करै, बकरे वा मेढे की हत्या होजाय तो एक सांडका दान करै, और गधे की हत्या होजाय तो एक बर्ष का बछड़ा दान करै ॥ १३७ ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥ १३८ ॥

कच्चा मांस खानेवाले व्याघ्र आदिकी हत्या होजाय तो दूध देती हुई गौ का दान करै, मांस न खानेवाले हरिण आदि पशुकी हिंसा होजाय तो बछिया का दान करै, ऊँट की हत्या होजाय तो एक रत्ती सोने का दान करै ॥ १३८ ॥

जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥ १३९ ॥

चारोंवर्णों में की व्यभिचारिणीस्त्री की हत्या होने पर क्रमसे चर्मका पिटारा, धनुष बकरा और मेंढ का दान करै ॥ १३९ ॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नु-

वन् ॥ एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥ १४० ॥

१३४ से १३९ श्लोकपर्यन्त सर्पआदिवध के जो प्रायश्चित्त कहे हैं यदि उनको दान करनेकी शक्ति न होनेके कारण न करसके तो द्विज उस पाप को दूर करने के निमित्त एक२ कृच्छ्र व्रत करै ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १४१ ॥

घिरघट आदि हड्डीवाले सहस्र प्राणियों की हत्या होने पर और बिना हड्डी के एक गाड़ी भर खटमल आदि की हत्या होनेपर शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करै ॥ १४१ ॥

किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे॥ अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ १४२ ॥

घिरघट आदि हड्डीवाले प्राणियों में से एक दो आदि की हत्या होजाय तो कुछ थोडीसी वस्तु ब्राह्मणको दानकरके देदेय और बिना हड्डी के थोडे से खटमल आदिकों की हत्या होजाय तो प्राणायाम करने से ही शुद्धि होजातीहै ॥ १४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्॥ गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥ १४३ ॥

फल देनेवाले आम आदि के वृक्ष, गुल्म, गिलोय आदि बेल और फूलवाली लताओं को निष्कारण काटकर पाप की शान्ति के लिये सावित्री आदि सौ ऋचा का जप करै॥

अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ १४४ ॥

अन्नादि में उत्पन्न होनेवाले, गुड़ आदि रसों में उत्पन्न होनेवाले और फल पुष्पोंमें उत्पन्नहोनेवाले प्राणियों की हिंसा होनेपर घृतका आचमन ही शुद्ध करदेता है ॥१४४॥

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ॥ वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ १४५ ॥

हलजोतने से उत्पन्न हुई औषधि (फल पकतेही सूखनेवाले गेहूँ आदि के वृक्ष) और अपने आप वनमें उत्पन्नहुए नीवार आदि को निष्कारण काटकर एकदिन दूध पीकर रहै और गौ के पीछे फिरै ॥ १४५ ॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे॥

जानकर वा विनाजाने हिंसासे उत्पन्नहुए पाप को इन व्रतोंसे दूर करना चाहिये, अब अभक्ष्यभक्षण का पूर्ण प्रायश्चित्त सुनो १४६

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ॥ मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥ १४७ ॥

बिनाजाने वारुणी (गुड़ की वा महुएकी मदिरा) को पीकर ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करनेके अनन्तर फिर यज्ञोपवीत होनेसे शुद्ध होता है और जानकर पीने का प्रायश्चित्त नहीं कहा जासक्ता,किन्तु मरण ही प्रायश्चित्त है॥१४७॥

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ॥ पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीश्रितं पयः ॥ १४८ ॥

अनजान में सुरा वा मद्य के पात्र में स्थित जलको पीकर पांचरात्रि तक केवल शंखपुष्पी औषधि के काढ़े का जलही पीकर रहै॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च॥ शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशावारि पिबेत्त्र्यहम् ॥ १४९ ॥

मदिरा को स्पर्श करके, दान करके, विधिपूर्वक ग्रहण करके और शूद्र का जूठा जल पीकर उस दोष को दूर करनेके निमित्त तीन दिन तक केवल कुशों के काढ़ेका जल पीकर रहै ॥ १४९ ॥

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १५० ॥

सोमयाग करनेवाला ब्राह्मण मद्यपीनेवाले के मुखकी गन्धको सूँघकर जल में खड़ा होकर तीन प्राणायाम करने के अनन्तर घृतका आचमन करके शुद्ध होता है ॥१५०॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥ पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः ॥ १५१ ॥

अनजान में विष्ठामूत्र का भक्षण करके वा सुरा से छुएहुए अन्नको खाकर तीनों वर्ण द्विजाति फिर संस्कार के योग्य होते हैं॥

वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च ॥ निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ १५२ ॥

द्विजातियों के प्रायश्चित्त के निमित्त दूसरी बार संस्कार होने में मुंडन, मेखलाधारण, दण्डधारण, भिक्षा, और त्याज्य वस्तुओं के नियम निवृत्त होते हैं ॥ १५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ॥ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥१५३॥

पहिले जो अभोज्यवस्तु कही हैं उनका भोजन करके दोष दूरकरने को सातदिनतक केवल जौकी लहपसी पीकर रहै (चौथेअध्याय में इस विषय में कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है, उसके साथ इसका विकल्प जानै अर्थात् करनेवाला अपनीशक्ति के अनुसार दोनोंमें से एक करै) स्त्री और शूद्रकी जूठन खाकर तथा अभक्ष्यमांस भक्षण करके भी द्विज यही प्रायश्चित्त करै ॥ १५३ ॥

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वामेध्यान्यपि द्विजः ॥ तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥ १५४ ॥

शुक्त (स्वभाव से मीठी होकर कुछ समय रक्खेरहने से वा जल मिलने से जो खट्टा होजाय वह वस्तु) और निषिद्ध न होनेपर भी बहेड़े आदिका काढ़ा पीकर तबतक अशुद्ध रहेगा कि जबतक वह शौच होकर निकल न जाय ॥ १५४ ॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १५५ ॥

द्विजाति जंगलीसूकर, गधा, ऊँट, सियार, बानर, और काककी विष्ठा वा मूत्रका भक्षण करके चान्द्रायणव्रत करै ॥ १५५ ॥

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ १५६ ॥

सूखेमांस, भूमि वा वृक्षादि में उत्पन्न छत्रक, अज्ञातमांस और हिंसा होनेके स्थान से लायाहुआ मांस खाकर चान्द्रायणव्रत करै॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५७ ॥

कच्चामांस खानेवाले पशुपक्षी, ग्रामसूकर, ऊँट, मुरगा, मनुष्य, काक और गर्दभ का मांस खानेपर तप्तकृच्छ्र व्रतकरनेसे शुद्धिहोती है।

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको-

द्विजः ॥ स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥१९८॥

जो ब्रह्मचारी द्विज मासिक श्राद्धका अन्न-भोजन करे वह तीनदिन उपवास करे और एकदिन जल में वासकरे ॥ १९८ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५९ ॥

जो ब्रह्मचारी अनजान में वा आपत्ति में मधुमांस का भोजन करे वह प्राजापत्यव्रत करके शेषव्रत को समाप्त करे ॥ १५९ ॥

बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च ॥ केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १६० ॥

बिलाव, काक, चूहा, कुत्ता और नौलेका जूठा तथा बाल वा कीड़ेपड़ाअन्न भोजन करके ब्रह्मसुवर्चला नामक औषधिका काढ़ा पिये ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥१६१॥

अपनी शुद्धि चाहनेवाले को अभक्ष्यअन्न भक्षण न करना चाहिये, अनजान में खाकर वमन करदेना चाहिये, नहीं तो शीघ्रही पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों से शुद्धि करे ॥ १६१ ॥

एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥ १६२ ॥

यह अभक्ष्य भक्षण के प्रायश्चित्तों का अनेकों प्रकार का विधान कहा, अब चोरीके दोषको दूरकरनेवाले व्रतों का विधान सुनो ॥१६२॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥ १६३ ॥

द्विज अपनी जातिवाले के घरसे ही धान्य, अन्न और धनकी चोरी करके एक वर्ष प्राजापत्य व्रत करे तो शुद्ध होता है ॥ १६३ ॥

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १६४ ॥

पुरुष, स्त्री, खेत, घर, कूप और बावड़ी का जल चुरानेपर चान्द्रायण व्रतसे शुद्धि कही है ॥ १६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ १६५ ॥

दूसरे के घरसे थोड़े मूल्य के द्रव्यों की चोरी करके अपनी शुद्धि के लिये वह धन जिसका तिसे देदेय और सान्तपन व्रत करे ॥१६५॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ १६६ ॥

लड्डू आदि भक्ष्य और खीर आदि भोज्य की चोरी करने पर तथा सवारी, शय्या, आसन पुष्प, मूल और फलोंकी चोरी करनेपर पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है ॥ १६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥ चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ १६७ ॥

तृण, काठ, वृक्ष, सूखाअन्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा औरमांसकी चोरी करनेपर तीनरात उपवास करे ॥ १६७ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ॥ अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ॥ १६८ ॥

मणि, मोती, मूंगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, कांसी और पत्थरकी चोरी करके १२दिनरात्रि

के समय चावलोंके कणखाय ॥ १६८ ॥

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ १६९ ॥

कपास, रेशम और ऊनी वस्त्र, दोखुरके गौ आदि एकखुरके घोड़े आदि, तोते आदि पक्षी चन्दन आदि गन्ध, औषधी और रस्सी चुरानेपर तीन दिनतक केवल रात्रिके समय दूध पीकर रहै ॥ १६९ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥ अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् १७०

द्विज इनव्रतोंके द्वारा चोरीकरनेसे उत्पन्नहुए पापको दूरकरै और जिसने अगम्य स्त्रीसे समागम करा होय वह इन आगे कहे व्रतोंसे अपने पापको दूर करै ॥ १७० ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ॥ सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥ १७१ ॥

सगी बहिनें, मित्र और पुत्रकी स्त्रियें, कुमारी और चाण्डाली के साथ समागम करके गुरुपत्नी गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ १७१ ॥

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १७२ ॥

फुफेरी बहिन, मौसेरी बहिन और माता के भ्राता की पुत्रीसे समागम करके चान्द्रायण व्रतकरै ॥ १७२ ॥

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ॥ ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥ १७३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष इन तीनों कन्याओंको स्त्री रूप से ग्रहण न करै, बान्धभाव होने के कारण इनसे गमन करना उचित नहीं है, यदि समागम करै तो पतित होजाता है ॥ १७३ ॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ १७४ ॥

गौ के सिवाय और पशुओं में, रजस्वला स्त्री में, योनिके सिवाय स्त्री के अन्यस्थान में और जलमें वीर्यको स्खलित करके सान्तपन व्रत करै ॥ १७४ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ॥ गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १७५ ॥

द्विज, चाहे जिस देश में, पुरुष के साथ वा स्त्री के साथ मैथुन करके, बैलगाड़ी में, जलमें तथा दिनमें स्त्री के साथ मैथुन करके तत्काल सवस्त्र स्नान करै ॥ १७५ ॥

चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥ १७६ ॥

ब्राह्मण अनजान में चण्डाल म्लेच्छादि स्त्री के साथ समागम करके उसका अन्न खाकर वा उसका प्रतिग्रह लेकर पतित होता है और जानकर ऐसा करै तो उसकी समान ही होजाता है ॥ १७६ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेक वेश्मनि ॥ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ १७७ ॥

भर्ता व्यभिचारिणी स्त्री को एक घरमें बंद करदेय और परस्त्री गमन करनेवाले पुरुष के लिये जो व्रत लिखा है वह इससे करावै ॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ॥ कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः

पावनं स्मृतम् ॥ १७८ ॥

इसप्रकार प्रायश्चित्त करके वह स्त्री यदि फिर सजातीय पुरुषके प्रार्थना करने से उसके साथ व्यभिचार करै तो कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करना इसका पवित्र करनेवाला कहा है ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः॥ तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १७९ ॥

द्विज चण्डाली का एक रात्रि सेवनकरने से जो पाप इकट्ठाकरता है वह पाप तीन वर्षतक भिक्षा का अन्न खाकर गायत्री का जप करते रहने से नष्ट होता है ॥ १७९ ॥

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

हिंसा, अभक्ष्यभक्षण, चोरी और अगम्य गमन इन चार पापोंको करनेवालोंके प्रायश्चित्त की यह विधि कही, अब पतितों के साथ संसर्ग करनेवालों के प्रायश्चित्त सुनो ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्॥ याजनाध्यापनाद्यौनान्नतु यानासनाशनात् ॥ १८१ ॥

पतित के साथ एक वर्ष तक सवारी में गमन, एक आसन पर बैठना और एक पंक्ति में भोजन करनारूप संसर्ग करे तो पतित हो जाता है तथा पतित को यज्ञ कराने, पढ़ाने और उसके साथ विवाह सम्बन्ध करने से तो तत्कालही पतित होजाता है ।

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ॥ स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ १८२ ॥

जो पुरुष जिस पतित के साथ इन ऊपर कहे संसर्गोंमेंसे कोई संसर्ग करै वह उस संसर्ग के दोष से छूटने के लिये उसपापी के लिये कहाहुआ व्रत ही करै ॥ १८२ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ॥ निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ १८३ ॥

ब्रह्महत्यादि महापातकीके जीतेमें ही उसके सपिण्ड पुरुष, ग्राम से बाहर जाकर नवमीके दिन सायंकाल के समय ज्ञाति, पुरोहित और गुरुके समीपमें उसको जलदानदें ॥ १८३ ॥

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह॥

सपिण्ड पुरुषोंकी भेजीहुई दासी दक्षिणको मुखकरके जलके भरेहुए घटको चरण से ठुकरावै जबतक वहघट जल से खाली न होजाय ठुकराती रहै, घटके जलहीन होने पर सपिण्ड और समानोदक एकरात्रि अशौच का व्यवहार करैं ॥ १८४ ॥

निवर्त्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने॥ दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥ १८५ ॥

तब से सपिण्ड और समानोदक पुरुष इस पतित के साथ सम्भाषण, एक आसन पर बैठना, पितादि के धनका भाग देना और बुलाना आदि लौकिक व्यवहार त्यागदें॥१८५॥

ज्येष्ठता च निवर्त्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ १८६ ॥

वह पतित ज्येष्ठ होय तो उसका ज्येष्ठपना भी नहीं रहता है, और ज्येष्ठ को जो धन मिलता है वह उसके पाने का अधिकारी भी नहीं रहता है, उसके भ्राताओं में जो छोटा सब से अधिक गुणवान् होगा वह उस ज्येष्ठ भ्राताका भाग पावेगा ॥ १८६ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ १८७ ॥

और पतित यदि शास्त्र के अनुसार प्रायश्चित्त करलेय तो सपिण्ड और समानोदक पुरुष उसके साथ इकट्ठे होकर पवित्र जलाशय में स्नान करके उसी जलाशय में जलभरा नया घड़ा फेंकैं ॥ १८७ ॥

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ १८८ ॥

पतित पुरुष, प्रायश्चित्त करके और जलमें उस घड़े को फेंककर अपने घरमें जा पहिले की समान ज्ञाति के सकल कार्य करै॥१८८॥

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि । वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ १८९॥

पतित पुरुष का जैसा प्रायश्चित्त है, पतित स्त्रियों के विषयमें भी यही विधि करै, परन्तु पतित स्त्रीको वस्त्र, अन्न और जल देय तथा पतित स्त्रियें घरके समीप ही कुटी बनाकर रहैं॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् । कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १९० ॥

प्रायश्चित्त न करनेवाले पापियों के साथ कुछ भी व्यवहार न करै और जिन्होंने प्रायश्चित्त करलिया हो उनकी कभी निन्दा न करै॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः । शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ १९१ ॥

बालहत्यारे, कृतघ्नी, शरणागतों का वध करनेवाले और स्त्रीकी हत्या करनेवाले धर्मानुसार प्रायश्चित्त करलें तौभी इनके साथ कुछ व्यवहार न करै ॥ १९१ ॥

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि । तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणादि के यज्ञोपवीत का जो मुख्य और गौण समय कहा है उस समय में यदि यज्ञोपवीत न होय तो उस का दोषदूर करने के लिये तीन प्राजापत्य व्रत करके उपनयन करावै, जाति और शक्ति के अनुसार व्रात्यष्टोम प्रायश्चित्त का विकल्प जानना ॥ १९२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः । ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ १९३ ॥

जो ब्राह्मण आदि द्विज शूद्र सेवाआदि निषिद्ध कर्ममें स्थित हों और जो उपनयन होनेपरभी वेद न पढ़ते हों तथा प्रायश्चित्त करने की इच्छा करैं तो उनकोभी यही प्राजापत्य व्रतबतावै ॥ १९३ ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ १९४ ॥

यदि ब्राह्मण निन्दितकर्म से धनपैदाकरैं तो उस धनको त्यागकर जप और तपसे शुद्ध होते हैं ॥ १९४ ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ १९५ ॥

सावधानी से तीन सहस्र गायत्री का जप करके और एक मासतक केवल दूधपीतेहुए गोठ में रहकर असत्प्रतिग्रह के दोष से मुक्त होता है ॥ १९५ ॥

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् । प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं

सौम्येत्थ्सीति किम् ॥ १९६ ॥

एकमासतक अन्नभोजन न करके केवल दूध पीने से दुर्बलशरीर होकर गोठ से लौटकर आयेहुए उस अतिनम्र पुरुषसे जातिके पुरुष यह बूझैं कि-हेसौम्य! तू हमारी समान व्यवहार करना चाहता है, फिर तो खोटा काम नहीं करेगा? ॥ १९६ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम्। गोभिः प्रवर्त्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥ १९७ ॥

तब वह ज्ञानियों से ऐसा कहै कि-मैं सत्य कहता हूँ अब असत्कार्य नहीं करूँगा, तदनन्तर गौओं के आगे घासडालैं, जब गौएँ घास खाकर पवित्र करदे तो उसको व्यवहार में स्वीकार करैं ॥ १९७ ॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १९८ ॥

व्रात्यों को यज्ञकराकर तथा अपने पितागुरु आदिके सिवाय औरोंका प्रेतकर्म करके, निरपराधी को मारने के लिये अभिचार कर्म करके तथा अहीन नामक यज्ञ करके तीन प्राजापत्य करने पर निष्पाप होता है ॥१९८॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ॥ संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १९९ ॥

जो द्विज समर्थ होतेहुए शरणागत को त्यागता है, वेदाध्ययन के अयोग्य को वेद पढ़ाता है वह एकवर्षतक केवल जौका भोजन करै तो उस पाप को नष्ट करता है ॥ १९९ ॥

श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ॥ नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २०० ॥

कुत्ता, सियार, गधा, ग्रामके कच्चामांसखानेवाले पशु पक्षी, मनुष्य, घोड़ा, ऊँट और सूकर इनका काटाहुआ पुरुष प्राणायाम करने से शुद्ध होता है ॥ २०० ॥

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ॥ होमाश्च सकला नित्यमपङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥ २०१ ॥

चोर, पतित, नपुंसक आदि पंक्ति से बहिर्भूत और जिनका विशेषरूप से प्रायश्चित्त नहीं कहा है वह एक मास तक दो दिन भोजन न करके तीसरे दिन सायङ्काल के समय भोजन, वेद के संहिताभाग का पाठ और देवकृतस्यैनस इत्यादि आठ मंत्रों से आठ आहुति देकर हवन करने पर उस पाप से छूटते हैं ॥ २०१ ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २०२ ॥

इच्छा से ऊँट की सवारी पर वा गदेह की सवारी पै चढ़कर विप्र नङ्गा होकर स्नान करने के अनन्तर प्राणायाम करके शुद्ध होता है ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्त्तः शारीरं संनिवेश्य च ॥ सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥ २०३ ॥

जल से विना वा जल में घबड़ायाहुआ पुरुष मलमूत्र का त्याग करके उन वस्त्रों सहित ग्राम के बाहर नदी में स्नान करके गौ का स्पर्श करने पर शुद्ध होता है ॥ २०३ ॥

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ॥ स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ २०४ ॥

अग्निहोत्रादि वेद में कहेहुए नित्य कर्मों का उल्लंघन करने पर और स्नातक व्रतका

लोप होनेपर एक दिनरात भोजन न करना रूप प्रायश्चित्त करै ॥ २०४ ॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः॥ स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥२०५॥

ब्राह्मण से चुप हो इत्यादि हुङ्कार कहकर और बड़ों को तू शब्द कहकर उसका दोष दूरकरने के लिये स्नान करके और भोजन बिनाकरे सन्ध्या के समय जिसका पूर्वोक्त अपमान करा हो उसको चरण पकड़कर प्रसन्न करै ॥ २०५ ॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे बावध्य वाससा॥विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ २०६ ॥

ब्राह्मण को तृण से भी ताडना करै, गले में कपड़े से बांधै तथा बिवाद में जीते तो प्रणाम करके प्रसन्न करै ॥ २०६ ॥

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकंप्रतिपद्यते ॥ २०७ ॥

ब्राह्मण को मारने की इच्छासे दण्डा उठाकर सौवर्ष और दंडे का प्रहार करके सहस्र वर्ष तक नरक में पड़ता है । । २०७ ॥

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥ तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके बसेत् ॥ २०८ ॥

ताड़ित ब्राह्मण के शरीर से टपकाहुआ रुधिर धूलि के जितने कणों को भिगोता है उतनेही सहस्रवर्ष तक ताड़ना करनेवाला नरक में रहता है ॥ २०८ ॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ १०९ ॥

ब्राह्मण को मारने की इच्छा से दण्डा उठाकर प्राजापत्य व्रत करै, पीटकर गिरादेने पर अतिकृच्छ्र व्रत करै, और ब्राह्मण के रुधिर निकालकर कृच्छ्राति व्रत (छःगोदान) करै ॥ २०९ ॥

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये॥ शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है ऐसे पापों को दूर करने के लिये पातकी की शक्ति और पाप की छुटाई बड़ाई का बिचार करके प्रायश्चित्त की कल्पना करै ॥ २१० ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ २११ ॥

मनुष्य, जिन उपायों के द्वारा पापों से छूटता है, देवर्षिपितरों के सेवन करेहुए उन सब उपायों को तुम से कहूँगा ॥ २११ ॥

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥ २१२ ॥

प्राजापत्य व्रत को करताहुआ द्विज, तीन दिन तक केवल प्रातःकाल के समय तदनन्तर तीन दिन तक केवल सायंकाल के समय तदनन्तर तीन दिन तक बिनामांगे मिलाहुआ भोजन करै और फिर तीन दिन तक कुछ भी भोजन न करै (यह बारह दिन में प्राजापत्य व्रत होता है) ॥ २१२ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ २१३ ॥

प्रथम दिन गोमूत्र, गोबर, गौका दूध, दही घी और कुशों का जल मिलाकर पियै और कुछ न खाय तथा दूसरे दिन उपवास करै,

इसको सान्तपन व्रत कहा है ॥ २१३ ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥ त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥ २१४ ॥

अतिकृच्छ्र व्रत करताहुआ द्विज, पहिले तीन दिन तक प्रातःकाल एक ग्रास खाय, तदनंतर तीन दिन तक सायङ्काल के समय एक ग्रास खाय, फिर तीन दिन तक बिना मांगे मिलाहुआ एक ग्रास खाय और अन्त में तीन दिन तक उपवास करके रहै ।२१४॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ २१५ ॥

तप्तकृच्छ्र व्रत को करताहुआ द्विज, सावधानी के साथ पहिले तीन दिन तक एकबार स्नान करके केवल गरमजलही पीकर रहै, तदनन्तर तीन दिन गर्म दूध पीकर, फिर तीन दिन तक गर्म घी पीकर और पीछे से तीन दिन तक गरम पवन पीकर रहै ॥ २१५ ॥

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ २१६ ॥

सावधानी से इन्द्रियों को वश में करेहुए बारह दिन तक बिना भोजन रहना, यह सब पापों को दूर करनेवाला पराक नामक व्रत है॥

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २१७ ॥

तीनों सन्ध्या में स्नान करके पूर्णिमा के दिन १५ ग्रास भोजन करके कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से लेकर चौदहतिथि पर्यन्त क्रमसे एक २ ग्रास घटाकर भोजन करै और अमावस्या के दिन निराहार रहकर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से १५ तिथि तक क्रम से प्रतिदिन एक २ ग्रास बढ़ाकर भोजन करै, इसको चान्द्रायण व्रत कहा है ॥ २१७ ॥

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ २१८ ॥

इसीप्रकार ग्रास को घटाना बढ़ाना, तीनों समय स्नान और जितेन्द्रियपना यहही सब विधान मध्य चान्द्रायण में भी जानै, विशेषता यह है कि–शुक्लपक्ष की प्रतिपदासे एक २ ग्रासकी वृद्धि और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा से एक एक ग्रास को घटाना होता है ॥२१८॥

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ २१९ ॥

यति चान्द्रायण व्रतको करताहुआ पुरुष, जितेन्द्रिय होकर एक मास पर्यन्त शुक्लपक्ष वा कृष्णपक्ष के क्रमसे प्रतिदिन दुपहरके समय हविष्य के आठ २ ग्रास खाय ॥ २१९ ॥

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २२० ॥

ब्राह्मण सावधानी के साथ चार ग्रास प्रातःकाल और चार ग्रास सूर्य के अस्त होने पर खाय, इसको शिशुचान्द्रायण व्रत कहाहै॥२२०॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ॥ मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥ २२१ ॥

सावधानी के साथ एकमास में हविष्य के दो सौ चालीस ग्रासों को चाहे जितने चाहे जिस दिन खाकर पूर्ण करै परन्तु महीने भर के भोजन के सब ग्रास २४० से अधिक न हों तो चन्द्रमाके लोकको प्राप्त होता है ॥२२१॥

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२२ ॥

सकल पापों के दूर होने के लिये इस चान्द्रायण व्रत को महर्षियों सहित ग्यारह रुद्र तथा बारह आदित्य, आठ वसु और उनचास मरुतों ने करा है ॥ १२१ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम् ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥ २२१ ॥

प्रतिदिन अपने आप महाव्याहृतियों से होम करै, हिंसा न करै, सत्यबोले, क्रोध न करै और सरल रहै ॥ २२३ ॥

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २२४ ॥

चान्द्रायणव्रत करने के प्रथम तीनवार दिनमें और तीनवाररात्रि में स्नान करने को वस्त्र सहित जल में प्रवेश करै और व्रत की समाप्ति पर्यन्त स्त्री, शूद्र और पतितों के साथ कदापि संभाषण न करै ॥ १२४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २२९ ॥

दिन और रातको खडे रहकर वा बैठे २ ही बितादेय, सोवै नहीं; और यदि ऐसा करने की शक्ति न होय तो केवल भूमि पर ही सोरहै, स्त्री के समागम से रहित मेखला दण्डधारी ब्रह्मचारी होकर गुरु, देवता और ब्राह्मणों की पूजा में तत्पर होय ॥ २२५ ॥

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ सर्वेष्वेवं व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २२६ ॥

नित्य शक्तिके अनुसार सावित्री और अघमर्षणादि मंत्रों का जप करै, इस जप को सबही व्रतों में प्रायश्चित्त के निमित्त आदरके साथ करै ॥ २२६ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ॥ अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २२७ ॥

जिनके पापकर्म लोक में प्रकट हों तिन द्विजातियों को इन व्रतोंके द्वारा शुद्धकरै और गुप्तरूप से पाप करनेवालों को मन्त्रजप और हवनों के द्वारा शुद्धकरै ॥ १२७ ॥

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ॥ पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥

मैं अतिपामर अतिपापी हूं ऐसा लोक में प्रकाश करने से, पश्चात्ताप करने से, तपस्या से, और वेदाध्ययन से पापकरनेवाला पाप से छूटजाता है और और व्रतकरने को असमर्थ पुरुष दान से भी निष्पाप होजाता है ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ॥ तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२९ ॥

मनुष्य अधर्म करके जैसे २ अपने आपही उसको लोक में प्रसिद्ध करताहै तैसे २ सर्पके कैंचुली से छूटने की समान उस पापसे छूटता है ॥ २२९ ॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति ॥ तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २३० ॥

उस दुष्कर्म करनेवाले का मन जैसे२दुष्कर्म की निन्दा करता है तैसे २ उसका जीवात्मा अधर्म से मुक्त होता है २३० ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या

पूयते तु सः ॥ २३१ ॥

पाप करके सन्ताप करनेपर जिस पापसे छूटता है और अब फिर ऐसा नहीं करूंगा, इस प्रकार कहकर निवृत्त रहने से वह पवित्र हो-जाता है ॥ २३१ ॥

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम्॥ मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ २३२ ॥

इसप्रकार मरण के अनन्तर परलोक में कर्म के शुभ अशुभफल का मनसे विचार मन, वाणी, शरीरसे सदा शुभकर्महीं करै ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्मविगर्हितम्॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥ २३३ ॥

अनजान में वा जानकर निन्दितकर्म को करके उससे छूटनाचाहताहुआ दुसराकर ऐसा न करै २३३ ॥

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ॥ तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ २३४ ॥

यदि प्रायश्चित्तरूप कर्म के करनेसे इस पापकारी के मनको सन्तोष न हो तो जब तक मनको सन्तोष हो तबतक उस प्रायश्चित्तको बारम्बार करता रहै ॥ २३४ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं दैवं मानुषकं सुखम्॥ तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ २३५ ॥

यह देवता और मनुष्यों का सब सुख तप से उत्पन्न होता है, मध्य में तपसे स्थित रहता है और अन्त में तपसे ही इसकी अवधि नियत होती है ऐसा वेदवेत्ता विद्वानों ने कहा है ॥ २३५ ॥

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ २३६ ॥

ब्राह्मण का ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदान्तज्ञान ही तपस्या है, प्रजापालन क्षत्रिय का तप है, व्यापार वैश्य का तप है, और ब्राह्मणकी सेवा करनाही शूद्र का तप है । (तात्पर्य यह कि-- इसप्रकार अपने २ कर्मरूप तपस्या को करते हुए ब्राह्मणादि से कोई दोष हो भी जाय तो उसका पाप नहीं लगता है) ॥ २३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ॥ तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २३७ ॥

ऋषि शरीर, मन, वाणी को वश में रखकर फल मूल और वायु का भक्षण करते हुए तपस्या के द्वारा एकस्थान पर बैठेहुए ही सचराचर त्रिलोकी को देखते हैं ॥ २३७ ॥

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधास्थितिः ॥ तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ २३८ ॥

औषध, नीरोगता, ब्रह्मकर्मप्रकाशक वेदार्थज्ञान, नानाप्रकार की स्वर्गादि में स्थिति, यह सब तपसे ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि—उन सबों का साधन तप ही है ॥ २३८ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्॥ सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ २३९ ॥

जिसको तरना कठिन है, जिसको पाना कठिन है, जो दुर्गम है और जिस कार्यका करना कठिन है वह सब तपसे साध्य होजाता है, क्योंकि तपसे दुष्करकार्य सुकर हो जाता है ॥ २३९ ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ॥ तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते कि-

ल्बिषात्ततः ॥ २४० ॥

ब्रह्महत्यादि के महापातकी और उपपातक आदि अकार्य करनेवाले दृढ़ना के साथ करी-हुई तपस्या के द्वारा तिस पापसे छूटजाते हैं ॥

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ॥ स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ २४१ ॥

कीट, सर्प, पतंग, पशु, पक्षी और लता वृक्षादि स्थावर भी तपस्या से स्वर्ग को जाते हैं।

यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २४२ ॥

धनकी समान तपकी रक्षा करनेवाले पुरुष मन वाणी और शरीर से जो कुछ पाप करते हैं उन सबको तपस्या के द्वारा शीघ्र ही भस्म करडालते हैं ॥ २४२ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥ २४३ ॥

प्राजापत्यादि प्रायश्चित्तरूप तपस्याके द्वारा विशुद्ध हुए ब्राह्मण के यज्ञमें के हविको देवता ग्रहण करते हैं और उनकी कामनाओंको सिद्ध करते हैं ॥ २४३ ॥

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २४४ ॥

प्रभु प्रजापति ने तपस्या के द्वारा ही इस मानवशास्त्र को रचा था, तथा वशिष्ठादि ऋषियों ने मन्त्र ब्राह्मणरूप वेदको तपस्या करके ही पाया था ॥ २४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥ २४५ ॥

ब्रह्मादि स्थावर पर्यन्त जो जन्म जन्तु को दुर्लभ है वह तपस्या से मिलता है, ऐसा देखकर देवता इस स्थावर जङ्गम जगत् को तपोमूल है इत्यादि कथन के द्वारा तपस्या का माहात्म्य कहते हैं ॥ २४५ ॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ॥ नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ २४६ ॥

प्रतिदिन शक्ति के अनुसार वेद पढ़ना पञ्चयज्ञ करना और क्षमा यह महापातकों के पापों को भी शीघ्र ही नष्ट करदेते हैं ॥ २४६ ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥ २४७ ॥

जैसे अग्नि अपने तेजसे, समीप में आये हुए ईंधन को क्षणभर में भस्म करदेता है तैसे ही वेद का जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानाग्नि से सब पापको भस्म करदेता है ॥ २४७ ॥

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ २४८ ॥

यह प्रकाश पापों का प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा, अब आगे गुप्त पापों का प्रायश्चित्त सुनो॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ २४९ ॥

प्रतिदिन व्याहृति और प्रणवसहित करेहुए सोलह प्राणायाम एक मासमें भ्रूणहत्या के पाप को भी नष्ट करदेते हैं ॥ २४९ ॥

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ॥ माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥ २५० ॥

अपि नः शोशुचदघं इत्यादि कौत्स-ऋषि

का प्रचारित मंत्र, वशिष्ठ-ऋषिकी देखीहुई प्रतिस्तोमेति इत्यादि ऋचा, महित्रीणामवो-ऽस्त्विति इत्यादि माहित्र मंत्र और एतानिन्द्रं स्तवामह इत्यादि शुद्धवती तीन ऋचा एक मासतक सोलह बार पढ़ने से सुरापीनेवाला भी शुद्ध होजाता है ॥ २५० ॥

सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः॥

एकबार प्रतिदिन एक महीने तक 'अस्यवा-मीयमस्य वामस्य पलितस्य एतद्, इससूक्त का अथवा 'यज्जाग्रतो दूरं' इत्यादि शिव सङ्कल्प मन्त्र का पाठ करने से सुवर्ण चुराने वाला पाप से रहित होता है ॥ २५१ ॥

हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंहइतीति च॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुत-ल्पगः ॥ २५२ ॥

'हविष्पान्तं' अथवा 'नतमंहो' इत्यादि आठ ऋक् और 'सहस्रशीर्षापुरुषः' इत्यादि पुरुष सूक्तको एक महीने तक प्रतिदिन सोलह बार जपनेसे गुरुस्त्रीगामी पापसे छूटजाता है॥२५२॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नप-नोदनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चे-दमितीति वा ॥ २५३ ॥

बड़ेछोटे सबपापों को नष्ट करनेकी इच्छा-वाला पुरुष 'अवतिहेलोवरुणयोः' इस ऋक् का वा 'यत्किञ्चेदं वरुणदैव्येजन इति' इस सूक्त को एक वर्ष तक प्रतिदिन एकवार जपै॥२५३॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५४ ॥

न लेने योग्य वस्तुका दान लेकर अथवा निन्दित अन्न खाकर 'तरत्समन्दीधावती' इन चार ऋकों को तीन दिनं तक जपने से मनुष्य उसके पापसे छूटता है ॥ २५४ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुद्ध्यति ॥ स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णा-मिति च तृचम् ॥ २५५ ॥

नदीमें स्नान करताहुआ 'सोमारुद्रा' इस ऋक् और 'अर्यमणं वरुणं मित्रञ्चेति' इन ऋचाओं को एक महीने तक पाठ करने से बहुत से पाप करनेवाला भी शुद्ध होजाता है॥

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमा-सीत भैक्षभुक् ॥ २५६ ॥

'इन्द्रमित्रं वरुणादि' इन सात ऋकों को छः महीने तक जपनेसे पापी सब प्रकारके पापों से छूटजाता है । और जलमें मलमूत्र त्यागनेवाला एक महीनेतक भीख मांगकर खाने से पापरहित होता है ॥ २५६ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ॥ सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥ २५७ ॥

द्विज 'देवकृतस्यैनस' इत्यादि शाकल मन्त्रों से एक वर्ष तक घृतका होम करके अथवा 'नमः इन्द्रश्च' इत्यादि ऋक्मन्त्र जपने से एक वर्ष में महापाप को भी नष्ट करता है ॥ २५७ ॥

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समा-हितः ॥ अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षा-हारो विशुद्ध्यति ॥ २५८ ॥

महापातकी पुरुष एक वर्ष तक समाहित चित्त से गौ के पीछे २ चले और भीख मांग के खाय तथा 'पावमानी' ऋचा को जपै तो शुद्ध होता है ॥ २५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसं-हिताम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः

शोधितैस्त्रिभिः ॥ २५९ ॥

अथवा तीन बेर पराक व्रत से शुद्ध होकर जितेन्द्रिय रहकर वन में वेदकी किसी संहिता को तीन बार पाठ करने से पुरुष सब पापों से छूटता है ॥ २५९ ॥

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः। मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥ २६० ॥

त्रिरात्र उपवासी और संयतेन्द्रिय होके प्रातः मध्याह्न और सन्ध्या के समय प्रतिदिन स्नान कर अघमर्षणसूक्त को जपकर पुरुष सब पापों से छूटजाता है ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः। तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥ २६१ ॥

जिसप्रकार यज्ञों का राजा अश्वमेध सब पापों का नाश करनेवाला है, उसी भांति अघमर्षण सूक्त सब पापोंका नाशक है॥२६१॥

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः। ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचन ॥ २६२ ॥

इन तीनों लोकों को बध करके भी जहां तहां भोजन करताहुआ भी विप्र ऋग्वेद को धारण करताहुआ कुछ पाप नहीं पाता है ॥ २६२॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः। साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २६३ ॥

सावधानी से ऋक्, यजुः वा सामवेद की संहिताओं का उपनिषदों के सहित पाठ करने से ब्राह्मण सब पापों से छूटजाता है ॥२६३॥

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति। तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ २६४ ॥

जैसे महाह्रद में फेंकाहुआ मट्टी का ढेला शीघ्र अदृश्य होजाता है, तैसे ही सब पाप तीनोंवेद के पाठ में अदृश्य होजाते हैं॥२६४॥

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च। एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥ २६५ ॥

ऋक्, यजुः और विविध प्रकार के साम मंत्र यह त्रिवृत्वेद जानना, जो इन सब को जानता है, वही वेदवेत्ता है ॥ २६५ ॥

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता। स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २६६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां मेकादशोऽध्यायः ११

अकार, उकार और मकार यह तीन अक्षर तीन वेदस्वरूप प्रणवका गुह्यरूप है, इस को भी त्रिवृत् वेद कहते हैं। जो पुरुष भलीभांति इसको जानता है, वह वेदको जाननेवाला है ॥ २६६ ॥

इतिश्री मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां भाषानुवादसहित एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः।

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ। कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥

ऋषि बोले, कि-हे पापरहित ! आप ने ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के सकलधर्म तुमने कहे, अब जन्मान्तरार्जित शुभ अशुभ कर्मों का जो शुभअशुभफल मिलते हैं वह हम से विधिपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः। अस्य सर्वस्य शृणुत कर्म-

योगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

यह धर्मात्मा मनुपुत्र भृगु उन महर्षियों से बोले, कि-तुम इस सब कर्मयोग के निर्णय को हम से सुनो ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ॥ कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥ ३ ॥

शरीर, मन और वचन से जो शुभाशुभ कर्म कियेजाते हैं, उस कर्मकी गति के अनुसार ही लोकमें मनुष्योंकी उत्तम मध्यम तथा अधमगति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ॥ दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

तिस देहधारी जीवके मनको ही तन मन और वचनके आश्रित उत्तम मध्यम तथा अधम कर्मों का प्रवर्तक जानो-यह तीन प्रकारके कर्म नीचे लिखे दश लक्षणों से युक्त हैं ॥ ४ ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥

पराया धन अन्यायसे लेनेकी इच्छा, मनसे अनिष्ट चिन्ता, परलोक नहीं है यह शरीर ही आत्मा है, ऐसा मिथ्या अभिनिवेश यह तीन प्रकार का अशुभदायक मानसकर्म हैं ॥ ५ ॥

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

कठोर वचन; मिथ्या बोलना; परोक्ष में दूसरों का दोष कहना; राजा का, देश का वा पुरसम्बन्धी असम्बद्ध प्रलाप-यह चार वाणी के अशुभ कर्म हैं ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥

बिना दिये हुए धनोंका लेना, अवैध, हिंसा पराई स्त्री की सेवा,-ये तीन शरीर के अशुभ कर्म हैं ॥ ७ ॥

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥ वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥

मन से सुकर्म वा दुष्कर्म करने पर सुकर्म का फल सुख और दुष्कर्म का फल दुःख मन से ही भोगता है, ऐसी वाणी से करेहुए कर्म का फल वाणी से और शरीर से करेहुए कर्म का फल शरीर से भोगता है ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ९ ॥

यदि मनुष्य शरीर से अशुभकर्म अधिक और पुण्यकर्म थोडे करे तो स्थावर योनि पाता है, वाणी के अशुभकर्मों से पक्षी की योनि वा पशु की योनि पाता है और मन के अशुभकर्मों से चण्डालकी योनि पाता है॥९॥

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ॥ यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १० ॥

जिसकी बुद्धि में वाणी का दण्ड (निषिद्ध बातों का त्याग) मन का दण्ड (खोटे संकल्प का त्याग) और शरीर का दण्ड (खोटे कार्य करने का त्याग) स्थित है वही त्रिदण्डी कहाता है ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ॥ कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥

मनुष्य, सकल प्राणियों में इस निषिद्ध

वाणी आदि का दमन करै और इस दमन के निमित्त काम क्रोध को जीतै तौ मोक्षप्राप्तिरूप सिद्धि पाता है ॥ ११ ॥

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ॥ यः करोति तु कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

जो इस आत्मा के उपकारी शरीर को कर्मों में प्रवृत्त करता है उसको पण्डित क्षेत्रज्ञ कहते हैं और पृथिव्यादि पञ्चभूतमय शरीर अपने कर्म करता है तिस को भूतात्मा (देह) कहते हैं ॥ १२ ॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥

शरीर और क्षेत्रज्ञ के सिवाय जीव नामक और एक सकल देहधारियों के साथ उत्पन्न होनेवाला, महत्तत्त्व देह के भीतर रहनेवाला आत्मा है, जो अहङ्कार और इन्द्रियों का स्वरूप है, जिस के द्वारा क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्म में सुख और दुःख का अनुभव करता है ॥१३॥

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

पृथिव्यादि पंचभूत से मिलेहुए वह महत्तत्त्व और क्षेत्रज्ञ दोनों, उत्तम और अधम जीवों में समभाव से व्याप्त होकर रहनेवाले परमात्मा का आश्रय करते रहते हैं ॥ १४ ॥

असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ॥ उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥

तिस परमात्मा के शरीर से लिङ्गशरीरधारी जीव जिस को क्षेत्रज्ञ कहते हैं, अग्नि के पतङ्गों की समान असंख्यों निकलकर उत्तम अधम योनियों में स्थित करतहुए अनेकों देहों को अपने २ कर्म के अनुसार प्रेरणा करते हैं।

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पृथिव्यादि पंचमहाभूत के अंश से दुष्कर्मों की पीड़ा के अनुभव का कारण, जरायुज आदि चारों शरीरों से भिन्न सुख दुःख को सहनेवाला परलोक में एक स्वतन्त्र शरीर उत्पन्न होता है, जिसे लिङ्गशरीर कहते हैं॥१६॥

तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः ॥ तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥

सब जीव इस शरीर के द्वारा यम की दीहुई पीडाओं को भोगकर शेषरहेहुए दुष्कर्म से फिर इस शरीर की रचना के हेतु पंचभूत के अंश में लीन होकर स्थित होते हैं ॥ १७ ॥

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसंगजान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

वह शरीरी (लिङ्गशरीरधारी जीव), निषिद्ध विषयों के संग से उत्पन्नहुए दुःखों को यमलोक में भोगकर और तदनन्तर निष्पाप होकर तिन महापराक्रमी महत् और क्षेत्रज्ञ का आश्रय करता है ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥ १९ ॥

वह महत्तत्त्व और क्षेत्रज्ञ दोनों आलस्यरहित होकर इस लिङ्गशरीरधारी जीव के धर्म अधर्म का विचार करते हैं, जिन धर्म अधर्म से युक्त हुआ जीव इस लोक और परलोक में सुख दुःख का अनुभव करता है ॥ १९ ॥

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः। तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते॥ २०॥

यह जीव यदि मनुष्यशरीर में धर्म अधिक और अधर्म बहुत थोड़ा करे तो पृथिवी आदि पंचमहाभूतों के द्वारा स्थूल शरीरधारी होकर परलोक में अपवर्ग सुख का अनुभव करता है॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः। तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः॥ २१॥

और यदि मनुष्यशरीर में अधर्म अधिक तथा धर्म थोड़ाही करै तो पंचमहाभूतों (शरीर) से रहित (मृत) होकर, फिर उन महाभूतों के अंश से ही दुःखों को सहनेवाला एक विलक्षण कठिन शरीर पाकर यमराज की दीहुई पीड़ाओं को भोगता है॥ २१॥

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः। तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः॥ २२॥

वह जीव तिन यमराज की पीड़ाओं को पाकर निष्पाप ही अपने कर्मों के अनुसार फिर पृथिव्यादि पञ्चमहाभूतों का बनाहुआ मनुष्य आदि का शरीर पाता है॥ २२॥

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा। धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः॥ २३॥

धर्म से और अधर्म से जीव की इन स्वर्गनरकादि भोगने के योग्य इन उत्तम अधम शरीर की प्राप्तिरूप गतियों को अपने ही चित्त से विचारकर सदा धर्म में ही मन लगावै॥ २३॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्। यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः॥ २४॥

सत्त्व, रज और तम इन तीनको महत्तत्त्वरूप आत्मा के गुण जानै, जिन गुणों से व्याप्त हुआ महत्तत्त्व स्थावर जङ्गमरूप सकल पदार्थों को व्याप्त करके स्थित है॥ २४॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते। स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥ २५॥

यद्यपि सकल शरीरधारी इन तीनों गुणोंसे युक्त हैं तथापि इन तीनों गुणोंमें से शरीरमें जो गुण अधिकता से होता है वह गुण तिस शरीरधारी को तिस गुणकी अधिकताके लक्षणों से युक्त करता है॥ २५॥

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्। एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः॥ २६॥

यथार्थ ज्ञान सत्त्वगुण का लक्षण है, उसके विपरीत अज्ञान तमोगुणका लक्षण है, रागद्वेष रजोगुणका स्वरूप कहा है, इन सत्त्वादि गुणोंका यह ज्ञानादि लक्षण सकल प्राणियों में व्याप्त है॥ २६॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्॥ २७॥

आत्मामें प्रीतियुक्त, प्रकाशरूप जो कुछ विशुद्ध प्रकाशरूप अनुभव में आवै उसको सत्त्व जानै॥ २७॥

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः। तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्॥

और जो भाव, दुःख से युक्त आत्मा की प्रीति न करनेवाला और सदा शरीरधारियों को विषयभोग की इच्छा उत्पन्न करै वह प्राणियों का प्रत्यक्ष न होनेवाला रजोगुण है॥ २८॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तविषया-

त्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥

जो मोहयुक्त हो, जिसमें विषय का प्रकाश न हो अर्थात् देह इन्द्रियों की गुरुता से विषय भी न रुचै, जिस में तर्क और विज्ञान न हो उसको ही तम कहते हैं ॥ २९ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ॥ अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

इन तीनों गुणोंका जो उत्तम, मध्यम और अधम फल उत्पन्न होता है, उसको पृथक् २ कहते हैं ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥

वेद का अभ्यास, तप करना, शास्त्र के अर्थ का ज्ञान, मृत्तिका जल आदिसे शरीर की शुद्धि, इन्द्रियों का वशमें होना, धर्म कार्य और परमात्मा का चिन्तवन यह सत्वगुणसे उत्पन्न होनेके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥

आरम्भरुचिताधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ॥ विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥

फलकामना से कर्मानुष्ठान में रुचि होना, थोड़ी सी हानि में भी चित्त की विकलता, लोकशास्त्र विरुद्धकार्यों का आचरण, बारम्बार विषयों का सेवन इस को रजोगुण का कार्य जानै ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥

बहुत धन का लोभ, सोने का स्वभाव, थोडा धन होने पर विकलता, पीछेपराये दोष कहना, परलोक को न मानना, आचारभ्रष्टता या धर्म पर विश्वास न होना, याचना, धन होने पर भी धर्म-कर्म में असावधानी, यह सब तमोगुण के लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ॥ इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालमें रहने वाले इन तीनों ही गुणोंका यह आगे क्रम से कहाहुआ संक्षेपसे लक्षण जानना ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ॥ तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३५ ॥

जिस कर्म को करके, करतेहुए और आगे को करनेकी इच्छा होनेपर लज्जा आवै उस सबको विद्वान तमोगुण का लक्षण जानै ॥ ३५ ॥

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ॥ न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३६ ॥

जिस कर्म से इस लोकमें बहुत सी प्रसिद्धि चाहैं और उस कर्म के सिद्ध न होनेसे शोक न करै उसको रजोगुणी जानना ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥

सबप्रकार के यत्नसे जिस कर्मको करनेकी इच्छा करै और उसको करते हुए लज्जित न होय और जिस कर्म के करने से इस प्राणी के आत्मा को सन्तोष होय तिसको सत्त्वगुण का लक्षण जानै ॥ ३७ ॥

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ॥ सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

तमोगुणका लक्षण काम और रजोगुणका

लक्षण अर्थपरायणता है, धर्मपरायणता सत्वगुण का लक्षण है, इनमें पहिले२ की अपेक्षा अगला२ श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते॥ तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥

इन सत्वादि गुणों में से जिस गुण के द्वारा करेहुए अपने कर्म से जीव जिन गतियों को प्राप्त होता है, इस सब जगत् की तिन गतियों को क्रमशः संक्षेप से कहते हैं ॥ ३९ ॥

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ॥ तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥ ४० ॥

सत्वगुणी वृत्तिवाले देवभाव को, रजोगुणी वृत्तिवाले मनुष्यभाव को और तमोगुणी वृत्तिवाले पशुपक्षियोंकी योनि को प्राप्त होते हैं; यह तीनप्रकार की गति प्राणियों को सदा प्राप्त होती हैं ॥ ४० ॥

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ॥ अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥ ४१ ॥

सत्वगुणी आदि पुरुषों की यह तीन प्रकार की गति जन्मान्तर की प्राप्तिरूप के प्रकट होने पर फिर देश काल आदि के भेद से और संसार के हेतुभूतकर्मों के भेद से तथा ज्ञान के भेद से भी तीन प्रकार की होती है ॥ ४१ ॥

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः ॥ पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ ४२ ॥

वृक्षादि स्थावर, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प, कछुआ, पशु, मृग यह तमोगुणी नीच गति है॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ॥ सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥

हाथी, घोड़े, शूद्र, म्लेच्छ, सिंह, व्याघ्र, सूकर यह तमोगुणी निन्दित मध्यमगति है॥

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ॥ रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥ ४४ ॥

नट, पक्षी पाखण्डी पुरुष, राक्षस और पिशाच यह तमोगुणी उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ॥ द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥

झल्ल, मल्ल, नट, शस्त्र से जीविका करनेवाले और जुआ खेलने तथा मद्य पीने में आसक्त पुरुष, यह रजोगुणी नीचगति के पुरुष हैं ॥ ४५ ॥

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञांश्चैव पुरोहिताः ॥ वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

अभिषिक्त राजा, क्षत्रिय और राजाके पुरोहित शास्त्रार्थ में कलह करनेवाले और रणमें युद्ध करनेवाले यह रजोगुणी मध्यमगति है॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥

गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, जो देवताओं के अनुचर हैं और सकल अप्सरा, रजोगुणी गतियों में उत्तम गति है ॥ ४७ ॥

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ॥ नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः ॥ ४८ ॥

वानप्रस्थ, यति, ब्राह्मण, और जो विमानों में विचरनेवाले देवगण हैं वह नक्षत्र और दैत्य सत्वगुणी प्रथम गति है ॥ ४८ ॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ॥ पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः ॥ ४९ ॥

यज्ञ करनेवाले, देवता, वेदाभिमानी, मूर्तिमान् देवता, ध्रुव आदि ज्योति, वत्सर और सोम आदि पितर तथा साध्य नामक देवता यह सत्त्वगुणी दूसरी गति है ॥ ४९ ॥

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ॥ उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

ब्रह्मा, मरीचि आदि प्रजापति, धर्म का अधिष्ठात्रीदेवता, महान् और अव्यक्त का अधिष्ठात्रीदेवता इनको विद्वानों ने सत्त्वगुणी उत्तम गति कहा है ॥ ५० ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥

मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीन साधनोंके कारण तीनप्रकारके कर्मकी, सत्त्व, रज, तमोगुण के भेदसे तीनप्रकार की गति और उसके भी उत्तम, मध्यम, अधम तीन भेद यह सकल प्राणियों की सबगति कही ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ॥ पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होनेसे और प्रायश्चित्तादि धर्म के न करने से अज्ञानी तथा अधम पुरुष निन्दित गतियों को प्राप्त होते हैं॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ॥ क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥

यह जीव इस लोकमें जिस२ कर्म से जिस जिस योनिको क्रम से प्राप्त होता है, इसलोक की उन २ सब योनियों को सुनो ॥ ५३ ॥

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ॥ संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४ ॥

महापातकी पुरुष बहुत से वर्षों के समूहों तक घोरनरकों को पाकर उस भोगका क्षय होने पर इन गतियों को पाते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ ५५ ॥

ब्रह्महत्यारा, श्वान, सूकर, गधा, ऊँट, गौ, बकरी, भेड़, मृग, पक्षी, चण्डाल और पुक्कस योनिको पाता है ॥ ५५ ॥

कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् । हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ ५६ ॥

सुरा पीनेवाला ब्राह्मण, कृमि, कीट, पतङ्ग विष्ठाखाने वाले पक्षी और हिंसक जीवों की योनि पावेगा ॥ ५६ ॥

लूताहिसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥

और चोर ब्राह्मण सहस्रोंबार मकरी, सर्प, घिरघट जलचर पक्षी और नाके आदि हिंसक तथा पिशाचों की योनि में उत्पन्न होता है॥

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

गुरु की स्त्री से गमन करनेवाला, दूब आदि तृण, बिनागुदों के वृक्ष, गिलोय आदि लता, कच्चामांस खानेवाले गिद्ध आदि तथा

लम्बी २ दाढ़ोंवाले और क्रूरकर्म करनेवाले सिंहादि की योनियों में सैकड़ोंबार जन्म लेता है ॥ ५८ ॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥

हिंसक स्वभाववाले पुरुष जन्मान्तर में, कच्चामांस खानेवाले बिलाव आदि होते हैं, अभक्ष्य वस्तु भक्षण करनेवाले कीड़े होते हैं, चोरी करनेवाले परस्पर का मांसखाने वाले होकर उत्पन्न होते हैं और चण्डाल आदि नीच जातियों की स्त्री से गमन करनेवाले प्रेतनामक प्राणी होते हैं ॥ ५९ ॥

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषिताम् ॥ अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

पतितों से संयोग करके और पराई स्त्री से सम्भोग करके तथा ब्राह्मणका धनहरण करके ब्रह्मराक्षस होता है ॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥

मनुष्य लोभ से मणि, मोती, मूंगे और नानाप्रकार के रत्नों की चोरी करके सुनारकी वा हेमकार पक्षी की योनि में उत्पन्न होता है ॥

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ॥ मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

धान्यको चुराकर चूहा, कांसी को चुराकर हंस, जल चुराकर प्लवपक्षी, शहद चुराकर डांस, दूध चुराकर काक, ईख का रस चुराकर श्वान और घी चुराकर न्यौला होता है ॥

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ॥ चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥ ६३ ॥

मांस को चुराकर गिद्ध, चरबी को चुराकर पनडुब्बी पक्षी, तेल चुरानेपर तैलपायी पक्षी लवण को चुराकर चीरीवाक नामक ऊंचे स्वर वाला पक्षी, और दही को चुराकर बलाका नामक पक्षी होता है ॥ ६३ ॥

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ॥ कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

रेशमी वस्त्र को चुराकर तीतर, क्षौमवस्त्रको चुराकर मेंडक, कपास के तन्तुओं के वस्त्र को चुराकर क्रौञ्चपक्षी, गौ की चोरी करके गोह और गुडको चुराकर वाग्गुद नाम का पक्षी होता है ॥ ६४ ॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ॥ श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥ ६५ ॥

कपूर आदि श्रेष्ठ गन्धको चुराकर छछूंदर, पत्तों के शाक को चुराकर मोर, पके अन्नको चुराकर श्वाविध, और नानाप्रकारके बिनापके अन्नको चुराकर सेई नामक पक्षी होता है ६५ ॥

बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ॥ रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥

अग्नि को चुराकर भेड़िया, सूप मूसल आदि घरकी सामग्री को चुराकर मट्टी आदि से घर बनाने वाला परदार कीड़ा होताहै और रंगेहुए वस्त्रों को चुराकर चकोर पक्षी होता है ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ॥ स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥ ६७ ॥

मृग वा हाथी को चुराकर भेड़िया, घोड़े

को चुराकर व्याघ्र, फलमूल को चुराकर वानर, स्त्री को चुराकर रीछ, पीने के जल को चुराकर चातक, गाड़ी आदि सवारी को चुराकर ऊँट और कहे हुओं से अन्य पशुओं को चुराने से बकरा होता है ॥ ६७ ॥

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः॥ अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६८ ॥

मनुष्य बलात्कार से पराई जिस किसी प्रकार वस्तु का हरण करके और विना हवन कराहुआ हवि का पदार्थ खाकर अवश्यही तिर्यक् योनि को प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥

स्त्रियें भी इसी प्रकार उक्त चोरियोंके करने से इस कहे हुए दोष (योनियों) को प्राप्त होती हैं और वह इन प्राणियों की ही स्त्रीभाव को प्राप्त होती हैं ॥ ६९ ॥

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ॥ पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥ ७० ॥

ब्राह्मण आदि वर्ण यदि आपत्तिकाल के विना अपने २ पंचमहायज्ञादि कर्मों को न करें तो आगे कहीहुई निन्दित योनियों को पाने के अनन्तर शत्रुओं के दासपने को पाते हैं ॥७० ॥

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥

अपने धर्म से भ्रष्टहुआ ब्राह्मण, वमन खानेवाला उल्कामुख प्रेत होता है, क्षत्रिय अपने धर्म से भ्रष्ट होय तो मुर्दा और विष्ठा खानेवाला कटपूतन नामक प्रेत होता है॥७१॥

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ ७२ ॥

अपने कर्म से भ्रष्टहुआ वैश्य, पीव भक्षण करनेवाला मैत्राक्षज्योति नामक प्रेत होता है और अपने धर्म से भ्रष्टहुआ शूद्र चैलाशक नामवाला प्रेत होता है ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥

विषयों के लोभी पुरुष, जैसे २ शब्दादि विषयों का अत्यन्त भोग करते हैं तैसे २ उन विषयों में उनकी प्रवीणता होतीजाती है अर्थात् निषिद्ध भोग करनेवाला पुरुष जिस२ इन्द्रिय के द्वारा इस लोक में सुख भोगता है तिसी तिस इन्द्रिय के द्वारा परलोक में विशेष दुःखपाता है ॥ ७३ ॥

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ॥ संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥७४ ॥

यह अल्पबुद्धि पुरुष, तिन पापकर्मों के अभ्यास से इस लोक में तिन अनेकों प्रकार की योनियों में अनेकों दुःख पाते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥

तथा तामिस्र आदि भयानक नरकों में घूमते हैं और असिपत्रवन आदि बन्धन छेदन करनेवाले नरकों को पाते हैं ॥ ७५ ॥

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ॥ करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

नानाप्रकार की परमपीडाएं पाते हैं, तहां

काक उलूक आदि नोचकर खाते हैं जलती हुई बालुओं से भस्मीभूत होते हैं, और कुम्भीपाक आदि दारुण नरकों को पाते हैं ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः। शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥ ७७ ॥

जिनमें नित्य अत्यन्त दुःख भोगना पड़े तिर्यक् आदि योनियों में जन्म लेने पड़ते हैं, शीत धूप आदि की पीड़ा और नानाप्रकार के भय प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ॥ बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

बारम्बार गर्भवासों में दारुण जन्म, उत्पन्न होनेपर शृंखला आदि से बन्धन होकर कष्ट पाना और फिर शत्रुओं के दासभाव की प्राप्ति ॥ ७८ ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥ ७९ ॥

बन्धु और प्रिय पुरुषों का वियोग, दुष्टों के साथ संवास द्रव्य को पैदा करने का क्लेश फिर उसके नष्ट होजाने का क्लेश, और फिर अनेकों शत्रु मित्रों की प्राप्ति में क्लेश होता है ॥ ७९ ॥

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

जो हट नहीं सकती ऐसी वृद्धावस्था, अनेकों रोगों से पीड़ा, भूख प्यास आदि के कारण नानाप्रकार के क्लेश और अन्त में दुर्निवार मृत्यु की प्राप्ति होकर क्लेश होता है॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते। तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ८१ ॥

जैसे २ भावयुक्त अन्तःकरण से जिस २ स्नान दान यज्ञादि कर्म का सेवन करता है उसही भाव के अनुसार सत्त्वादि गुणयुक्त शरीर को धारण करके उन कर्मों के फलको भोगता है ॥ ८१ ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ॥ नैःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८२ ॥

यह सब विहित निषिद्ध कर्मों के फलका उदय तुम से कहा, अब यह विप्रों को मोक्ष देनेवाला कर्म सुनो ॥ ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसा गुरुसेवा च नैःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥

वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियों को वशमें करना, हिंसा न करना, और गुरु की सेवा करना यह सब परम कल्याण (मोक्ष) करनेवाले हैं ॥ ८३ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

ऋषियों ने कहा कि–यह जो वेदाभ्यास आदि मोक्ष के साधनरूप कर्म कहे इन सब शुभ कर्मों में कोई कर्म पुरुष के लिये सब की अपेक्षा मोक्ष का अतिशय साधन भी है॥

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥

भृगुजी ने कहा कि–वेदका अभ्यास आदि इन सब कर्मों में आत्मज्ञान को परम साधन कहा है क्योंकि वह सब विद्याओं में प्रधान है और इससे निःसन्देह मोक्ष मिलता है॥ ८५ ॥

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

इन सब छहों कर्मों में वैदिक कर्मरूप परमात्मज्ञान इसलोक और परलोकमें सर्वदा परम कल्याणरूप मोक्ष का साधन है ऐसा जानना ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥

वेद में कहेहुए कर्मयोग के मध्यकी तिन क्रियाओं की विधिरूप परमात्मा की उपासना में वेद का अभ्यास आदि सकल कर्म क्रमसे अन्तर्गत होजाते हैं (क्योंकि वेदाभ्यासादि आत्मज्ञान के अंग हैं) ॥ ८७ ॥

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेवं च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

ज्योतिष्टोमयज्ञादि वैदिक कर्म और प्रतीकोपासना, स्वर्गादि सुखकी प्राप्ति करानेवाले होने से प्रवृत्ति के हेतु हैं इसकारण यह कर्म प्रवृत्त कहाते हैं; और मोक्षका साधन जो कर्म वह संसार से निवृत्ति होने का हेतु है अतः उसको निवृत्तकर्म कहते हैं, इसप्रकार वैदिककर्म दो प्रकार का है ॥ ८८ ॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥

इसलोक में इच्छितफल का साधन, जैसे वर्षा के लिये कारीरीयाग और परलोक में स्वर्गादि इच्छितफलका साधन ज्योतिष्टोम आदि कामना से कियाजाता है और संसार में प्रवृत्ति होनेका हेतु है इसकारण यह काम्य कर्म कहाता है और इसलोकमें के देखेहुए तथा परलोकमें के न देखेहुए फलोंकी इच्छा से रहित ब्रह्मज्ञान के अभ्यासपूर्वक जो कर्म होता है वह संसार की निवृत्तिका हेतु है इसकारण वह निवृत्त कर्म कहाता है ॥ ८९ ॥

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पंच वै ॥ ९० ॥

प्रवृत्तकर्म के अभ्यास से देवताओं की समान गति मिलती है और निवृत्त कर्मों को सेवन करताहुआ पुरुष पञ्चभूतों को उल्लंघन करता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्तहोता है ९०

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥

स्थावर जंगम सकलभूतों में परमात्मस्वरूप मैं ही हूँ और सकलभूत मेरे आत्मा में स्थित हैं ऐसी दृष्टि रखकर आत्मयज्ञरूप ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करनेवाला ब्रह्मभाव (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ ९२ ॥

श्रेष्ठद्विज, शास्त्रोक्त अग्निहोत्रादि कर्मों को त्यागकर भी, ब्रह्म का ध्यान, जितेन्द्रियपना और प्रणव तथा उपनिषदादिरूप वेदाभ्यास में विशेषयत्न करै (यह मोक्षका अन्तरंग उपाय दिखाने के लिये कहा है,अग्निहोत्रादि के त्यागने को नहीं) ॥ ९२ ॥

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ९३ ॥

यही जो आत्मज्ञान और वेदाभ्यासआदि

कहा यह द्विजाति के और विशेषकरके ब्राह्मण के जन्म की सफलता करनेवाला है द्विज इस को पाकर भी कृतकृत्य होता है, अन्यकार्य की आवश्यकता नहीं होती है ॥ ९३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ ९४ ॥

देवता, पितर, मनुष्योंको हव्य, कव्य, अन्न देने में वेदही सनातन नेत्रकी समान है अर्थात् देवता, पितर, मनुष्यों को हव्य कव्य अन्न देनेसे जो फल मिलता है उसका प्रमाण वेदही है, उसवेदको कोई रचनहीं सक्ता इस कारण वेदअपौरुषेय है और मीमांसा, न्याय आदि शास्त्रों की सहायता के बिना वेदरूपी शास्त्रका अप्रमेयभाग बुद्धिस्थ नहीं होता यह मर्यादा है ॥ ९४ ॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ॥ सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ ९५ ॥

जो स्मृतियें वेदसे बहिर्भूत (वेदके प्रतिकूल हैं और केवल लोकदृष्ट चैत्यवन्दनादिका वर्णन करती हैं और जो स्मृतियें असत् तर्कयुक्त हैं अर्थात् देवता नहीं हैं, परलोक नहीं है इत्यादि चार्वाकादिकी समान उपदेश करती हैं वहसब तमोगुण से उत्पन्न हैं, परलोक में फल देनेवाली नहीं हैं, किन्तु उलटी नरकगति देने वाली हैं ॥ ९५ ॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ॥ तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

और जो शास्त्र वेदानुकूल नहीं हैं अन्य पुरुषों के स्वतन्त्र कहेहुए हैं ऐसे शास्त्र उत्पन्न होते हैं और नष्ट होजाते हैं, वह सब थोडेकाल के रचित होनेके कारण निष्फल और मिथ्या समझे जाते हैं ॥ ९६ ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ ९७ ॥

ब्राह्मणादि चारों वर्ण, स्वर्गादि तीनों लोक, ब्रह्मचर्यादि चारों भिन्न २ आश्रम तथा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल में होनेवाला कार्यसमूह वेद से ही प्रसिद्ध होता है ॥ ९७ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ॥ वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

इस लोक और परलोक में जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच विषय हैं उनको उत्पन्न करनेवाले जो सत्त्व, रज, तमोगुण उनके अनुसार वेदोक्तकर्मका अनुष्ठान होता है, उस का कारण वेद है इसकारण शब्दादि विषय भी वेदसे ही उत्पन्न होते हैं यह कथन उचित है॥

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥

सनातन वेदही सकलभूतों को धारण करता है, अग्नि में आहुति डालने से सूर्यकी उपासना होती है, फिर सूर्य वर्षा करता है, वर्षा से अन्न होता है उस से सकल प्राणी प्राण धारण करते हैं अतः वेद ही वैदिक कर्मों के अधिकारी सकल पुरुषों के पुरुषार्थ का परम साधन है ॥ ९९ ॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १०० ॥

सेनापतिपना, राज्य, दण्ड देने की शक्ति और सकल भूमि का आधिपत्य पाने के योग्य

वेदशास्त्र का जाननेवाला ही है ॥ १०० ॥

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ॥ तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १०१ ॥

जैसे जोर पकडनेवाला अग्नि, गीले वृक्षों को भी भस्म करडालता है तैसे ही वेद को जाननेवाला ब्राह्मण अशुभकर्मों से उत्पन्न होने वाले अपने दोष को नष्ट करता है ॥ १०१ ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १०२ ॥

जो पुरुष, यथार्थरीति से वेदशास्त्र और उसके अर्थ कर्म ब्रह्म को जानता है वह नित्यनैमित्तिक कर्मोंके साथ प्राप्त करेहुए ब्रह्मज्ञान के द्वारा ब्रह्मचर्यादि चाहे जिस आश्रम में बसकर इस जन्म में भी ब्रह्मत्व के योग्य होता है ॥ १०२ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ॥ धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥ १०३ ॥

जिन्होंने कुछ थोडासा पढा है उनकी अपेक्षा पूर्ण ग्रन्थ पढनेवाले श्रेष्ठ हैं, ग्रन्थ पढनेवालों की अपेक्षा पढेहुए को विस्मरण न करनेवाले श्रेष्ठ हैं, स्मरण रखनेवालों की अपेक्षा ग्रन्थ का अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और वेद में कहेहुए कर्म का अनुष्ठान करनेवाले उनसे भी श्रेष्ठ हैं॥

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ॥ तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १०४ ॥

तप (अपने कर्म का अनुष्ठान) और विद्या (आत्मज्ञान) यह ब्राह्मण को परमकल्याण (मोक्ष) देनेवाले हैं, क्योंकि–ब्राह्मण तप से पापों का नाश करता है और ब्रह्मविद्या से मोक्ष पाता है ॥ १०४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ॥ त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ १०५ ॥

धर्म का तत्त्व जाननेकी इच्छा करनेवाला पुरुष, प्रत्यक्ष और अनुमान तथा धर्म के साधन द्रव्य, गुण और जाति का तत्त्व जानने के लिये वेदानुकूल अनेकों स्मृति आदि शास्त्र, इन तीन प्रमाणों को पूर्णरीति से बुद्धिस्थ करलेना चाहिये ॥ १०५ ॥

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ॥ यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ १०६ ॥

जो पुरुष, आर्ष अर्थात् वेद और मन्वादि धर्मशास्त्र के उपदेश को, वेदशास्त्रमें परस्पर विरोध न आवै ऐसे मीमांसा आदि तर्क के द्वारा विचारता है वही धर्म को जानता है अन्य नहीं ॥ १०६ ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ॥ मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते॥

यह मोक्षदायक सम्पूर्ण कर्म यथावत् कहा, अब इस मानवशास्त्रका रहस्य कहते हैं॥१०७॥

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्॥ यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ १०८ ॥

जो सामान्य बिधि से प्राप्त हैं परन्तु बिशेष रूप से नहीं कहे हैं उनके विषय में क्या करना चाहिये, ऐसा सन्देह होय तो, शिष्ट ब्राह्मण जो कुछ बतावें उसको निःसन्देहरूपसे धर्म जानै ॥ १०८ ॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०९ ॥

ब्रह्मचर्यादियुक्त धर्म के द्वारा जिन्होंने मीमांसा धर्मशास्त्र पुराणादिके विषय कही हुई व्याख्या से युक्त वेद प्राप्त करा हो और जो वेदके प्रत्यक्ष प्रमाणवचन दिखाउस्के हों उन ब्राह्मणों को शिष्ट जानना ॥ १०९ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ॥ त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ११० ॥

यदि बहुत से पुरुष न मिलें तो दश से कमभी न हों और इतने भी न मिलें तो तीन से कम न हों ऐसे इकट्ठेहुए विद्वान् सदाचारी धर्मज्ञों को परिषत् कहते हैं, वह परिषत् जिस धर्म का निश्चय करै उसको स्वीकार करै त्यागै नहीं ॥ ११० ॥

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ १११ ॥

तीनों वेदों के पढेहुए, सत् अनुमान के जाननेवाले, मीमांसा वाक्यों के अर्थ के अनुसार तर्क करना जाननेवाले, निरुक्त के अनुसार वेदार्थ करने में चतुर, धर्मविषयक स्मृति, पुराण इतिहासादिकों को पढ़ने पढ़ानेवाले पहिले तीन आश्रमी अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ ऐसे कमसे कम दश पुरुषों की परिषत् होती है ॥ १११ ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ॥ त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ११२ ॥

ऋग्वेद को जाननेवाले, यजुर्वेद को जाननेवाला और सामवेद को जाननेवाला ऐसे कम से कम तीन पुरुषों की परिषत् जाननी और यह धर्मविषयक सन्देह का निर्णय करने में योग्य होती है ॥ ११२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥ स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ११३ ॥

तीनों वेदों का जाननेवाला एक भी श्रेष्ठ ब्राह्मण, जिस धर्म का निश्चय करै उसको परम धर्म जानै और वेदके न जाननेवाले दशसहस्र भी जिसको कहैं वह धर्म नहीं है ॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ११४ ॥

ब्रह्मचर्यादि व्रत से हीन, वेद मंत्रों को न जाननेवाले और ब्राह्मणजातिमात्र धारण करनेवाले सहस्रों इकट्ठे होजावें तो भी उनकी धर्मोपदेश करनेवाली परिषत् नहीं होसक्ती ॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ ११५ ॥

विपरीत बुद्धिवाले और धर्म को न जाननेवाले मूर्ख जिस धर्म का उपदेश करते हैं वह सौ गुणा पाप होकर कहने वालों के पीछे लगता है ॥ ११५ ॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ११६ ॥

परम कल्याण (मोक्ष) का करनेवाला यह सब गुप्त धर्म तुम से कहा, इस धर्माचरण से न डिगनेवाला विप्र परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकानां हितकाम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥ ११७ ॥

इसप्रकार उन ऐश्वर्यवान् भगवान् मनुजीने यह सब धर्म का परम रहस्य मुझसे कहा ॥ ११७ ॥

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ ११८ ॥

सावधान होकर आत्मज्ञान के द्वारा सकल सत् (कारणरूप) और असत् (कार्यरूप) वा जंगम स्थावरस्वरूप जगत् को ब्रह्मस्वरूप से अपने आत्मा में उपस्थित देखे, क्योंकि सब को आत्मस्वरूप से देखताहुआ पुरुष रागद्वेष न होने से अपना मन अधर्म में नहीं लगाता है ॥ ११८ ॥

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥ आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ ११९ ॥

इन्द्रादि सब देवता परमात्मा के सर्वात्मा होने से आत्मस्वरूप ही हैं,सब जगत् आत्मा में स्थित है, क्योंकि--परमात्मा के वश में है और आत्मा ही इन सब शरीरधारियों के कर्मयोग(कर्त्तापने)को उत्पन्न करता है॥११९॥

खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहेऽपो गां च मूर्त्तिषु ॥ १२० ॥

बाहर के आकाश को अपने शरीरके छिद्रों में एकता को प्राप्तहुआ भावना करै, बाहर के वायु को अपने चेष्टा करानेवाले और स्पर्श के हेतुभूत वायुमें एकताको प्राप्त हुआ समझै बाहरी तेज को उदर में पकानेवाले और नेत्रों में प्रकाश करनेवाले तेज में एकता को प्राप्त हुआ भावना करै, बाहर के जलों को शरीर में के जलीय भागों में एकता को प्राप्त हुआ भावना करै तथा पृथ्वी को शरीरमें के कठिन अवयवों में एकता को प्राप्त हुई भावना करै ॥ १२० ॥

मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् ॥ वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥ १२१ ॥

मनमें चन्द्रमा को, कर्णों में दिशाओं को, चरणों की चलनशक्तिरूप इन्द्रिय में विष्णु को, बलप्रधान भुजारूप इन्द्रिय में शिवको, वाणी में अग्नि को, गुदा इन्द्रिय में मित्र देवता को और उपस्थेन्द्रिय में उसके देवता प्रजापतिको एकता को प्राप्त हुआ भावना करै॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥ रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ १२२ ॥

इसप्रकार मनके एकाग्र करने पर ध्यान करने योग्य पुरुष का वर्णन करते हैं कि--ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, शुद्ध सुवर्ण के सी कान्ति वाले और स्वप्न की बुद्धिकी समान ज्ञान से गम्य अर्थात् जैसे स्वप्न की बुद्धि चक्षु आदि बाहरी इन्द्रियोंके उपराम को प्राप्त होनेपर केवल मनसे ही उत्पन्न होती है ऐसे ही केवल सात्विक मनसे ग्रहण करने योग्य ऐसे तत्त्व को परम पुरुष जानै ॥ १२२ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥

इस परमात्मा को कोई अग्निरूप से कहते हैं कोई मनु नामक प्रजापति मानकर उपासना करते हैं, कोई इन्द्ररूप, कोई प्राणरूप और कोई सच्चिदानन्द सनातनब्रह्मस्वरूप मानकर उपासना करते हैं ॥ १२३ ॥

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्त्तिभिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥

यह परमात्मा, पृथिवी आदि पांच मूर्त्तियों

के द्वारा सकल प्राणियों को व्याप्त करके, पूर्व जन्मों में करेहुए कर्मोंका फल भोगने के लिये जन्म-स्थिति-नाशके द्वारा रथ आदि के पहिये की समान सकल जीवों को संसार की योनियों में घुमाते हैं ॥ १२४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ १२५ ॥

इसप्रकार जो सकल प्राणियों में स्थित परमात्मा को अपने आत्मस्वरूप से देखता है वह सब की समता को पाकर ब्रह्म का साक्षात्कार करने के अनन्तर परमपद ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १२५ ॥

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ॥ भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ १२६ ॥

इति श्रीमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार भृगुजी के कहेहुए इस मानवशास्त्र को पढ़नेवाला द्विज सदा विहितकार्य करना और निषिद्ध कार्योंको त्यागनारूप आचारवान् होकर इच्छानुकूल स्वर्गापवर्गरूप गति को पाता है ॥ १२६ ॥

इतिश्रीमद्भारद्वाजगोत्रगौडवंश्यपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थमहामहोपाध्यायसत्सम्प्रदायाचार्यपण्डित स्वामिराममिश्रशास्त्रिणां शिष्येण मुरादाबादप्रवासि रामपुरराज्यनिवासि प० रामस्वरूपशर्मणा विरचितेन मेधातिथ्यादिभाष्यानुगेन सान्वयेन भाषानुवादेन सहितो मानवधर्मशास्त्रस्य द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥